भूमिका

ओह ! भयंकर पतन, इतनी अधोगती, सर्वनाश, इस बीसवीं शताब्दी के विषम वातावरण ने विश्वगुरु वृद्ध भारत की नींव हिला दी, धार्मिक तथा नैतिक शिक्षाहीन देश ने अविद्या के कारण पूर्वजों की पवित्र-प्रणाली को ठुकरा दिया, आचारहीन समाज ने पुनीत सिद्धान्तों से मुख मोड़ लिया तथा आत्मज्ञानियों की आत्माओं ने अपने को उन सिद्धियों से पृथक् कर दिया । शोक !

इस भयंकर पतन का आदि कारण क्या है? एकमात्र वीर्यनाश ! ब्रह्मचर्य का परित्याग ! पवित्र धर्म का ह्रास !

प्रस्तुत पुस्तक इसी विषय पर लिखी गई है, हमने अपने १८ वर्ष के अनुसंधान से यह अनुभव किया है कि ब्रह्मचर्य ही सर्वस्व है । वीर्य-रक्षा के विना संसार व्यर्थ है ।

"मरणं विन्दुपातेन, जीवनं विन्दुधारणात् ।
तस्मादतिप्रयत्नेन, कुरुते विन्दुधारणा ॥"

प्रस्तुत पुस्तक 'ब्रह्मचर्य-विवेक' में हमने अपने अनुभवों का वर्णन किया है । पुस्तक तीन खंडों में लिखी गई है-प्रथम खण्ड में ब्रह्मचर्य की विस्तृत व्याख्या है, द्वितीय खंड में ब्रह्मचर्य का वर्तमानस्वरूप तथा तृतीय

खंड में उन अमूल्य प्राकृतिक और भौगोलिक उन सुगम साधनों का वर्णन है—जिनके द्वारा कामान्ध नर-पशु भी काम पर विजय पा सकता है। जिनको अपना कर संसार आशातीत लाभ उठा सकता है, इस तृतीय खण्ड में ब्रह्मचर्य से सम्बन्ध रखने वाले कुछ आसनों का चित्र सहित वर्णन है, जिनकी कृपा से जीर्ण काया का भी काया-कल्प हो सकता है, भयानक से भयानक एवं असाध्य से असाध्य रोग दूर हटाये जा सकते हैं।

पुस्तक अनुभूत प्रयोगों की पिटारी है, हमने एक २ साधन की सहस्रों बार परीक्षा की है, देश के कोने २ में सैकड़ों व्याधिग्रस्तों पर प्रयोग कर सुन्दर लाभ उठाया है।

ब्रह्मचर्य-विवेक १८ वर्ष के परिश्रम और साधन का फल है, इसके द्वारा आबाल-वृद्ध सभी लाभ उठा सकते हैं। मेरा सादर अनुरोध है कि लोग इसे अपनावें और इसके साधनों पर चलकर लाभ उठावें। पुस्तक के विषय में और क्या कहा जा सकता है—ब्रह्मचर्य की कीर्ति अनन्त और कथा अवर्णनीय है।

काशी
गंगा दशहरा १९९४ वि०

निवेदक—
स्वामी विश्वनाथ।

समर्पण

विश्वाधार विश्वेश !

दुर्वृत्त कुलांगारों के हृदय में अमर-ज्योति जगा दें।

पतित समाज में पवित्रता का प्रचार कर दें।

बच्चे २ में ब्रह्मचर्य का पुनीत भाव भर दें।

भगवन् ! इस व्यभिचारग्रस्त विश्व में एक बार पुनः पूर्वीय ब्रह्मचर्य का प्रकाश फैला दें।

समर्पकः—

लेखकः—

ब्रह्मचर्य-विवेक

ब्रह्मचर्यं परं ज्ञानं, ब्रह्मचर्यं परं बलम् ।
ब्रह्मचर्यमयो ह्यात्मा, ब्रह्मचर्यैव तिष्ठति ॥

—भगवान् धन्वन्तरि

प्रथम खण्ड ।

द्वितीय खण्ड ।

तृतीय खण्ड

१ शरीर ज्ञान और ब्रह्मचर्य-साधन

२ आयुर्वेद और ब्रह्मचर्य-साधन

२ प्राकृतिक प्रयोग और ब्रह्मचर्य-साधन

४ योग और ब्रह्मचर्य-साधन

५ दाम्पत्य-जीवन और ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य विवेक

प्रथम खण्ड

यद् ब्रह्मचर्यं सुखभाजनं परम्

तत्सेवनीयं पुरुषेण यत्नतः ।

न तद्विना स्वोन्नतिमिच्छता परम्

नरेण किञ्चित्किल कर्त्तुमीक्ष्यते ॥

—सुभाषित

"हे जीव ! ब्रह्मचर्यरूपी सुधानिधि तेरे पास है, उसकी प्रतिष्ठा से अमर बन ! निराश मत हो। ब्रह्मचर्य व्रत के पालन से मनुष्यता को सार्थक बनाने का उद्योग करो।"

—श्रुति

ब्रह्मचर्य का प्राचीन गौरव

'देवता, मनुष्य और राक्षस सब के लिये ब्रह्मचर्य अमृतरुप है, मनुष्य की मनोभिलाषाएँ ब्रह्मचर्य की निष्ठा से ही पूर्ण हो सकती हैं।'

—भगवान् वेधस

ब्रह्मचर्य कितना हृदयाकर्षक वीरत्व-पूर्ण गम्भीर शब्द है, जिसके केवल एक बार उच्चारण करने से ही हृदय गद्गद हो उठता है। विषाक्त अन्तःकरण में श्रेष्ठ भावों का संचार होने लगता है, शरीरस्थ दुर्बल नसों में बहनेवाला निस्तेज रक्त भी एक बार शक्तिमान् होकर मुझे वास्तविक मार्ग पर चलने के लिये बाध्य करता है। हमारी कुप्रवृत्तियां उस मधुर शब्द को सुनते ही भयभीत हो उठती हैं, मेरे सुन्दर शरीर का नाश करनेवाला बलवान् शत्रु 'काम' भाग खड़ा होता है, विषयों का प्रबल समुदाय सिहर उठता है तथा सर्व प्रकार के दुर्गुणों का जन्मदाता कुटिल मन अन्तःकरण के एक अज्ञात कोने में जा छिपता है।

यह वही ब्रह्मचर्य है, जिसकी प्रशंसा स्वयं भगवान् विधातृ ने ओजस्वी शब्दों में किया है, जिसकी महत्ता मृत्युलोक में ही नहीं त्रैलोक्य में व्याप्त है। भूलोक के प्राणियों ने जिसे साक्षात

ब्रह्म माना है, ऋषि मुनिओं ने जिसकी बहुविधि वन्दना की है, सिद्ध योगियों ने जिसे धारण कर अद्भुत शक्तियों के द्वारा संसार को चकित किया है, बलवानों ने जिसकी कृपा से बल प्राप्त कर भूमंडल को भयभीत किया है, विद्वानों ने जिसकी दया से विद्या-वैभव प्राप्त कर अक्षय यश फैलाया है, विज्ञान-वेत्ताओं ने जिसके प्रसाद से अकथनीय एवं अवर्णनीय साधन प्राप्त कर अनन्त कीर्त्ति का विस्तार किया है, विज्ञ पूर्वजों ने जिसकी विधिवत् पूजा की है, अलकावासी श्री-सम्पन्न यक्षों ने जिसकी गुणावली गायी है तथा पातालवासी दानवों ने पूर्वकाल में महान् सेवा के द्वारा जिसे अपनाया है। यह वही स्वर्गीय देवरूप अमूल्य वरदाता है, जिसकी असीम कृपा से अमरों ने मृत्यु पर विजय प्राप्त की है।

भारत इस पृथ्वी पर सब से पुराना देश है। संसार इसे वृद्ध भारत के नाम से पुकारता है। भूमण्डल के प्रायः सभी देशों ने इसे अपना गुरु माना है। सबों ने इसकी शिक्षा, सभ्यता तथा ज्ञान-विज्ञान से लाभ उठाया है। विश्व के सभी देश इसी आचार्य्य के तपोवन में ठोक पीट कर सुधारे गये हैं।

इंगलैंड की जंगली और असभ्य जातियां किसके द्वारा सुधरी ? पशुओं के समान नंगे और वृक्षों के नीचे वास करने-वाली योरप की अशिक्षित जातियों को किसने वस्त्र पहनना

सिखाया ? ग्रीस, इटली और यूनान का भाग्यविधाता कौन था ? मिश्र की उन्नति में किसकी शिक्षा का प्रभाव था, चीन जापान, लंका, श्याम नहीं-नहीं ! सम्पूर्ण विश्व का आचार्य्य कौन था ? इतिहासों को देखो ! पांच सहस्र वर्ष पूर्व जब योरपादि देश जंगली जन्तुओं की तरह ज्ञान-शून्य जीवन व्यतीत कर रहे थे—भारत उस समय उन्नति की चरम सीमा पर आरुढ़ था। यह शक्ति, विद्या, बुद्धि, ज्ञान, विज्ञान तथा कला-कौशलादि में उन्नति के शिखर पर विद्यमान था।

भारतीयों ! ब्रह्मचर्य के प्राचीन गौरव को देखो। आत्मिक उन्नति म यहां के ऋषि-मुनियों ने जो सफलता प्राप्त की है जो सिद्धान्त स्थिर किया है, उसे देखकर देवत्व-शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। पाश्चात्य विद्वानों ने इस विषय में जहां अपने अन्वेषण और ज्ञान की इति श्री मान ली है, वहां से उन ब्रह्मचर्य-व्रत-धारी विज्ञ-महर्षियों ने विचार आरम्भ किया है।

वह स्वेच्छाचारी पुष्पकविमान, अग्नि और जल की वृष्टि करनेवाले शरों का रहस्य, नारायणास्त्र तथा पाशुपतास्त्र का अलौकिक तेज, प्रवनास्त्रका प्रचण्ड वेग, मय दानव की कृति, योगियों की सद्वृत्ति, विद्या और बुद्धि की श्रेष्ठता, बल की गंभीरता, तथा विश्व-गुरुता की योग्यता तुम्हें प्राचीन गौरव की स्मृति दिला रहे हैं। यह तुम्हारे लिये अत्यन्त गौरव की वस्तु है।

भारत के ब्रह्मचर्य की उन्नत-अतीतावस्था के ज्वलन्त उदाहरणों को देख तुम्हें आनन्द के समुद्र में केवल डूबही नहीं जाना चाहिये, बल्कि वर्तमान भारत को पूर्वीय भारत बनाने का सततोद्योग करना चाहिये। ऐ महर्षियों की सन्तान ! पूर्वगौरव स शिक्षा प्राप्त करो और रणांगण में आगे बढ़कर अपने पूर्वजों की भांति विश्वगुरु बनकर संसार को शांति का पाठ पढ़ाओ।

ब्रह्मचर्य-सन्देश।

मुझे ब्रह्मचर्य-धर्म सब से अधिक प्रिय है। जो मनुष्य इसका पालन करता है, वह निश्चय ही मुझको प्राप्त होता है। यही कारण है कि महात्मा लोग ब्रह्मचर्य-सिद्धि के अतिरिक्त कुछ भी नहीं करते। जीवों ! तुम्हारे लिये ब्रह्मचर्य से बढ़कर दूसरा धर्म नहीं।

—भगवान् विष्णु

ब्रह्मचर्य-सन्देश ईश्वरीय सन्देश है। यह तुम्हें वीर्यवान् बनने को कहता है, सदाचार का उपदेश देता है, शान्ति का पाठ पढ़ाता है, बार २ तुम्हें पराक्रमी, ओजस्वी, तेजस्वी, गति-

मान, धीमान, शक्तिमान तथा बलवान बनने के लिये उत्तेजित करता रहता है तथा न मालूम क्यों निरन्तर तुम्हें उन्नति के मार्ग की ओर खैंचता है।

यही तुम्हें कुप्रवृत्तियों से हटाता है, यही हृदय की भय भीतता को दूर करता है, यही अपकर्मों के करने के पूर्ण घृणा उत्पन्न करता है, यही अनर्थों से हटाता तथा धर्म-मार्ग में लगाता है, यही विषयों के चक्र से बाहर करता तथा योगमार्ग में आगे बढ़ाता है, तथा यही बुरे साथियों के संसर्ग से हटाकर सज्जनों की शरण में डालता है।

सृष्टिकाल में ईश्वरीय-सन्देश, महर्षियों के हृदय में उदय हुआ। जीवों! तुम्हारे लिये ब्रह्मचर्य से बढ़कर दूसरा धर्म नहीं। तुम लोग इसी को अपनाओ, इसी के द्वारा ज्ञान-विज्ञान भी उन्नति करो। इसी को धारण कर तुम मानव-जीवन को सार्थक बनाओ और इसी तरणी पर बैठकर तुम अगम भव-निधि को पार करो!

ब्रह्मचर्य सांसारिक प्राणियों को उपदेश एवं, आध्यात्मिक सन्देश देता है। प्राणियों! वीर्यरक्षा करो। विद्याएँ एवं कला-कौशलों के प्रेमी बनो, कर्त्तव्यशील रहो, दृढ़ संकल्प धारण करो, सततोद्योगी बनो, पुरुषार्थ करो, धर्मी बनो, निर्भयी रहो, सद्गुणी होओ, दुर्गुणों, विषयों एवं कुसंगति से दूर रहो तथा आत्मचिंतन में लवलीन रहो।

संसार अत्यंत दुर्गम है । काल सामने खड़ा है। शरीर क्षणभंगुर है । काम-क्रोधादि शत्रु आक्रमण कर रहे हैं। राग-मोहादिरूपी विपत्तियां सामने घिरी हैं । कर्म नीचे ऊपर चक्र चला रहा है। दिशायें भयभीत कर रही हैं। कैसे जीवन संग्राम में सफल हों। सर्वत्र विनाश के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं, कहीं कर्म के दण्ड से छुटकारा नहीं, अभिमानी मानवों! पिस जाओगे इस मायावी दुर्गम संसार में, सम्हलो! सावधान! नहीं तो विनाश हो जायगा।

ब्रह्मचर्य को अपनाओ, उसके पुनीत सन्देश को एकबार पढ़ो! अक्षरशः उसका पालन करो, उसके अनुयायी बनो, उसकी सेवा करो, उसके मंत्रों को मानो! फिर संसार की कौनसी शक्ति तुम्हें रोक सकती है? यह दुर्गम संसार तो अत्यंत तुच्छ है। तुम महारौरव को भी पार कर सकते हो। एक काल क्या सहस्र काल भी तुम्हारे आगे नहीं ठहर सकते।

ब्रह्मचर्य की झलक

ब्रह्मचर्य ही संसार में प्रधान वस्तु है। इसी के द्वारा सांसारिक प्राणी मुझको पाते हैं, जीवों! जो कुछ तुम देखते हो,–सबों में उसी की झलक है।

—भगवान व्योमकेश

परिवर्त्तनशील संसार में सर्वत्र ब्रह्मचर्य की सत्ता विद्यमान है। विश्व का सार–प्रकृति की मर्य्यादा तथा जगदुन्नति का मूल कारण यही है। अखिल लोक की उत्पत्ति पालन एवं प्रलय का रहस्य इसी के अन्तर्गत व्याप्त है। यही विश्व का रचयिता विधाता, पालक उपेन्द्र तथा संहारक शंकर है। यही निराकार साकार ब्रह्म का द्विविध रूप है। इसी के धारण से त्रैलोक्य की मायाविनी लीलाएं हो रही हैं। सूर्य्य, चन्द्रादि तेजवान पदार्थ इसी के तैजस-स्वरूप से आलोकित हो रहे हैं। भूमंडल इसी के बल से घूम रहा है। लोकों, भुवनों एवं दिगंतों की यही आकर्षण शक्ति है। इसी की छत्र-छाया में सृष्टियाँ उत्पन्न होती हैं। यही प्रजापतिस्वरूप होकर प्रजाओं की वृद्धि करता है और इसी के न रहने पर कल्पांत हो जाता है।

सूर्य का तेज, चन्द्रमा की कांति, नखतों का प्रकाश, तत्त्वों का विकास, संसार का रूप, प्राणियों का प्राण, ज्ञानियों

का ज्ञान, ध्यानिओं का ध्यान, विद्वानों की विद्या, विज्ञानिओं का विज्ञान, समीक्षकों की समीक्षा, बुद्धिमानों की बुद्धि, चतुरों की चतुरता तथा बलवानों का बल यही है। जितने सुंदर मनोहर और आकर्षण करनेवाले पदार्थ संसार में हैं—सब में ब्रह्मचर्य की ही झलक है। सर्वत्र इसी का चमत्कार दिखाई पड़ता है।

सर्वत्र इसी का साम्राज्य है। जंगलों में यही मंगल मचाता है। सुगंधित पुष्पों की सुगंध यही है। प्राकृतिक-सौंदर्य्य इसी का रूप है। पिक और कोकिल के मधुर गान में यही है। कामिनियों के सुन्दर शरीर में वही छिपा है। समस्त प्रकाशित वस्तुओं का प्रकाश वही है। व्योम में उसी की शक्ति काम कर रही है। मेघ के प्रचण्ड गर्जन में उसीका गम्भीर नाद व्याप्त है। विद्युत् उसी का तेज है। नदियों का वेग वही है। अगम सिन्धु के अशान्त तरंगों में उसी की शक्ति विद्यमान है। वायु में उसी का उद्वेग है, अग्नि में उसी का रूप है, जल में उसी का रसत्व है, पृथ्वी में तरलत्व तथा गंध वही है एवं वृक्षों की चेतनता, वनस्पतियों का गुण तथा लताओं की सुन्दरता वही है। यही मर्मज्ञों की मर्मज्ञता है, कवियों के काव्य का यही स्वामी है, यही समस्त तंत्रों का साधन है, यही महामन्त्रों का उत्पादक है। यही मोहन का प्रबल अस्त्र है, यही वशीकरण का विकट बंधन है, दिव्याकर्षण का यही कारण है, एवं मारण, मोहन

तथा विद्वेपणादि प्रलयंकर कुकृत्यों से बचानेवाला सच्चा सहायक यही है। वक्ता की वाणी में इसी का प्रभाव है, लेखकों की लेखनी में इसी का महत्त्व है एवं शिल्पी की शिल्पकला का यही प्रधान आविष्कर्त्ता है। परोपकारी का परोपकार, न्यायाधीश का न्याय, धर्मधारी का धर्म, बड़ों की मर्यादा, लघुजनों की नम्रता, योगियों का योग, कर्मवीरों का कर्म, तपस्वियों का तप, महीपों का दण्ड, योद्धाओं का वीरत्व तथा मरणासन्न व्यक्तियों में आत्मबल यही है।

संसार का सुख, आरोग्यता, बल, तेज, सामर्थ्य, विद्या, बुद्धि, ज्ञान, ध्यान एवं सम्पूर्ण स्वर्गीय भाव इसी ब्रह्मचर्य के ऊपर निर्भरित हैं। ब्रह्मचर्य ही आरोग्यता की कुंजी है, यही संसार का सार तथा एकमात्र आधारस्तम्भ है। यह सत्य है।

आहारशयन ब्रह्मचर्य्यैर्युक्त्या प्रयोजितैः शरीरं धार्य्यते नित्यमागारमिव धारणैः।

— अष्टाङ्गहृदय सूत्रस्थान

आहार, निद्रा के सहित ब्रह्मचर्य ही शरीर का आधार है जैसे गृह के आधार स्तम्भ होते हैं। आधारस्तम्भ के नष्ट हो जाने पर कुछ शेप नहीं रह जाता। जिस प्रकार आधार बिना गृह नष्ट हो जाता है, ठीक उसी प्रकार ब्रह्मचर्य के न रहने पर शरीररूपी मंदिर भी छिन्न-भिन्न हो जाता है।

वाचकवरो ! ज्यों २ ब्रह्मचर्य की उन्नति होती है त्यों २ संसार उन्नतावस्था में रहता है। यही अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारों फलों का देनेवाला सर्वश्रेष्ठ देवता है। यही कैवल्य-दायी सम्पूर्ण विद्या वैभव तथा सौभाग्यादि का कारण है। संसार में अपनी श्रेष्ठता, स्वतंत्रता, तथा सम्पूर्ण उन्नति का कारण इसे ही जानो ! इसी को धारण कर तुम वास्तविक मनुष्य बन सकते हो !

ब्रह्मचर्य-विवेक

सब जीवों के प्राणों की रक्षा करनेवाला मुख्य ब्रह्मचर्य व्रत है। इसी से विवेक की प्रवृत्ति तथा दुःखों की निवृत्ति होती है।

—अथर्व वेद।

विवेक यह अद्वितीय आलोक है, जिसके द्वारा मनुष्य अविद्या के अंधकार का नाश करता है। संसार उसी के सहारे दुर्भेद्यतम पर विजय प्राप्त कर अपने निर्दिष्ट स्थान का वास्तविक मार्ग पाता है। विषयांधकार में भूला हुआ जीव अपने आपको इसीके द्वारा पहचानता है।

विश्व मानो एक आशारूपी नदी है। मनोरथरूपी जल उसमें कलकल शब्द करते हुये बह रहा है। उस गंभीर जल-प्रवाह में तृष्णारूपी लहरें हिलोरें मार रही हैं, चिंतारूपी ऊँचे २ करारे खड़े हैं, मोह ही इस नदी की अगमता है। वासनारूपी वायु बह रही है। विषय ही इस नदी के कच्छ, मच्छादिक हैं। लोभरूपी भंवर चक्र काट रहा है। तथा रागादिरूपी पशु-पक्षी उसके उपकूलों पर विचर रहे हैं।

संसार में जन्म ले, मनोरथ के जाल में जकड़ा हुआ जीव इस अगम जल-प्रवाह में बहा जा रहा है। बहती हुई धार में उसे तृष्णारूपी लहरें दिखाई देती हैं। नदी के ऊँचे २ करारों को देख अपने मुक्ति की इसे चिंता होती है। नदी की अगमता को देख अपने शरीर का उसे मोह प्राप्त होता है। इस प्रकार वासनाओं के चक्र में फंसकर प्राणी अपना अमूल्य जीवन नष्ट कर देता है।

यह विश्वरूपी विशाल नद अथाह है, अगम है, और अनन्त है। इसके कराल भवरों में माया का च तथा पाप की वासना है। कामना की तृष्णा तथा भोग की लिप्सा है। इसकी दुर्द्धर लहरों में बन्धन है। यह नारकीय दुःखों का प्रत्यक्ष कारागार है। ओह! रौरव का यही अथाह कुण्ड है। यहां महायंत्रणायें और अत्यन्त कष्ट है। इस मायानद से कौन पार

हो सकता है ? किसकी शक्ति इस से उद्धार होने में समर्थ हो सकती है ! कौन इसकी तृष्णा-रूपी हिलोरें और लोभरूपी भंवरों पर विजय पा सकता है ? कौन इसकी वासनारूपी वायु को वशीभूत कर सकता है ? तथा किसके द्वारा इसकी तृष्णारूपी करारें नष्ट हो सकती हैं ? पाठकों ! क्या आपने कभी सोचा है कि वह क्या है ? सुनिये !

वह प्रिय वस्तुविवेक है। उसी के बल से तुम मायानद को तर सकते हो। बिना विवेक के मानव-हृदय शून्य है। उसी के द्वारा तुम सत्य वस्तु को प्राप्त कर मानव जीवन सार्थक कर सकते हो। तुम्हारी वासनाओं को वही दूर कर सकता है, तुम्हारे मोह का उसी के द्वारा नाश होगा। तुम्हारी चिंतायें उसी के द्वारा मिटेंगी। तुम्हारी तृष्णायें उसीको पाकर शांत होंगी और पापरूपी ईंधन उसी के प्रज्वलित ज्वाला में भस्मी भूत होगा।

विवेक ही बुद्धि का द्वार है, बुद्धि के कार्य्य, 'अकार्य्य भय, अभय, प्रवृत्ति, निवृत्ति, और बंध-मोक्ष विवेकानुसार होते हैं। विवेक ज्ञान का उन्नत स्वरूप है। उसी के द्वारा मानव शरीर में ज्ञान का प्रकाश फैलता है। यही तुम्हें बुद्धिमान बनाता है, तुम आत्मा हो, परमात्मा के अंश हो, स्वच्छ चिद्रूप हो, इत्यादि विषया का ज्ञान यही देनेवाला है। जिस भांति जल क्षार से

छिपा है, अग्नि धूम्र से आच्छादित है और सूर्य मेघों से ढँका है, वैसेही विवेक न रहने पर वासनाओं के द्वारा स्वच्छ चिद्रूप ढँका है। विवेक के प्रगट होते ही वासनाओं का आवरण हट जाता है और उस अलभ्य वस्तु को तुम पा सकते हो।

संसार के सब प्रकार के विवेकों का जन्मदाता ब्रह्मचर्य है। यही वास्तविकविवेक का अंकुर तुम्हारे हृदय में उदय करता है, जिसके द्वारा सब भूतों में वही अव्यय ब्रह्म दिखाई देता है। इसी के द्वारा पृथक् २ वस्तुओं में तुम एक अखण्डित ब्रह्म को देखते हो। इसी के ज्ञान से समस्त भूतों का पृथक् २ भाव तथा कारण के सहित कार्य्य का सुन्दर स्वरूप अन्तर्दृष्टि के द्वारा देख पाते हो।

ब्रह्मचर्य–विवेक ही कर्म में अकर्म और अकर्म में कर्म का भाव जागृत करता है। उस ज्ञान के धारण करने पर तुम्हारी कामना संकल्प से रहित तथा विवेकाग्नि से दग्ध हो जाती है। इसी के उपदेशामृत पान करने पर संसार विषयों से छूटता है। यही संसार की वासनाओं का नाश करता है। ऋषियों ने कहा है जिस प्रकार अग्नि के द्वारा काष्ठ भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार ब्रह्मचर्य–विवेक के द्वारा सब कर्मों का नाश हो जाता है।

विवेक प्राप्त करने के लिये सांसारिक प्राणिया को ज्ञान-यज्ञ

का आश्रय लेना चाहिये। संसार के सभी कर्मों की परिसमाप्ति ज्ञान में ही होती है। इसके धारण करने के लिये १ दैवी-सम्पत्ति की आवश्यकता है। २ आसुरी सम्पत्ति का भाव हृदय में उदय होने पर ज्ञान का नाश हो जायगा और तुम अपने अभीष्ट से पतित हो जाओग।

विवेक प्राप्त करने के लिये तुमको निम्नलिखित लक्षणों पर चलने के लिये बाध्य होना पड़ेगा। अन्यथा तुम विवेक संग्राम में असफल होगे—इसके साधन के लिये मनुष्यों में विनय अदम्भता, अहिंसा, क्षान्ति, आर्जव, आचार्य्योपासन, शौच, स्थैर्य, आत्मनिग्रह, इन्द्रियों के विजय से वैराग्य, अहंकार का अभाव, जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि आदि दुःखों के जानने की शक्ति, इन्द्रिय-विषयों में अनासक्ति, पुत्र, स्त्री, गृह, इनमें मग्न नहीं हो जाना, आपत्ति तथा इष्ट-अनिष्ट वस्तुओं में समचित्तता, ईश्वर म

१—अभय, सत्त्व, संशुद्धि, ज्ञानयोग, व्यवस्थिति, दान, दम, यज्ञ स्वाध्याय, तप आर्जव, अहिंसा सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, अपैशुन, जीवों में दया, लोभ का अभाव, मृदुता, विनय, चपलता का अभाव, तेज, क्षमा, धृति, शौच, द्रोह का अभाव, अतिमानता का अभाव—ये सभी दैवी सम्पत्ति हैं। येही मोक्ष के कारण हैं।

२—दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, पौरुष्य और अज्ञान यही आसुरी सम्पत्ति हैं, जिनके द्वारा बन्ध प्राप्त होता है। मनुष्य इन्हीं में फंसकर अपना मनुष्यत्व खो बैठता है।

अनन्य भक्ति, एकान्त देश में वास, जनसमूह से विरक्ति, अध्यात्मज्ञान में स्थिरता, तथा तत्त्वज्ञान के अर्थ को समझना आदि शुभगुणों को धारण करने की आवश्यकता है।

इस संसार में विवेक के समान प्रिय वस्तु और कोई नहीं। जिसने इसे प्राप्त कर लिया, उसके लिये संसार में कुछ शेष नहीं। भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है कि—जिसकी वासना जाती रही है जिसका चित्त विवेकावस्था में मग्न है, जिसके सब काम, कामनालेश से शून्य हैं, जिसके सब कर्म ज्ञानाग्नि द्वारा दग्ध हो गये हैं—निसन्देह वह विवेकवान पुरुष है। वह सब पापियों से बढ़कर पापी क्यों न हो ? परन्तु विवेकवल्ली के द्वारा सब पापों के सागर से पार उतर जायगा।

ब्रह्मचर्य-विज्ञान।

ब्रह्मचर्य ही परम ज्ञान तथा श्रेष्ठ बल है। इसीके बल से मनुष्य संसार से उत्तीर्ण हो ऋषिलोक में प्रवेश करता है।

—महर्षि कपिल

इस अशान्त संसारक्षेत्र में मानवीय जिज्ञासायें ही विशिष्ट ज्ञान की उपलब्धि के मूल कारण हैं। अनेक प्रकार का ज्ञान

जो मनुष्य के हृदय में उदय होता है, उसके प्रत्येक विभागों को सांसारिक प्राणी विज्ञान के नाम से पुकारते हैं। वास्तव में ज्ञान-युत नियमित क्रमबद्ध विचारों को तुम विज्ञान कहते हो। इसके दो मुख्य विभाग हैं। पहला भौतिक विज्ञान (Matarial Sciences) और दूसरा मानसिक विज्ञान (Mental Sciences) है।

विज्ञान दो भागों में विभक्त है। इन दोनों विभागों के कार्य्यक्रम भी दो प्रकार के हैं। भौतिक विज्ञान जहां बाह्य जगत् की आलोचना करता है, वहीं मानसिक विज्ञान हमारे आन्तरिक जगत् का विवेचन करता है। जब तक हम दोनों लोकों का यथोचित ज्ञान प्राप्त न करें तब तक अपने जीवन का पूरा विकास नहीं कर सकते। जीवन-संग्राम में सफल होने के लिये दोनों प्रकार के साधनों में प्रवीण होना अनिवार्य्य है।

संसार की सारी क्रिया, विस्तृत विश्व का विकास आत्मज्ञान का साधक, ब्रह्मात्मैक्य विचारों का प्रादुर्भावक तथा आतम अनातम-योग का उत्पादक-यही विज्ञान है। समस्त उन्नति एवं अभ्युदय का यही सर्वश्रेष्ठ हेतु है। यही आत्मा की बहुविधि शक्तियां तथा उसके गूढ़ व्यापारों का विवेचक अर्थात् विवेचन करनेवाला है। यही समस्त १ विद्या बुद्धि एवं २ कला कौशलादि

(१) आचार्य्यों ने चौदह प्रकार की विद्याओं का वर्णन किया है।

का हेतु तथा निराधार भवार्णव का सेतु है । विज्ञ वेदान्तियों ने उत्थान की चरम सीमा का उन्नत केतु इसे ही माना है। विश्व में भौतिक विज्ञान ही सम्पूर्ण जगत का वाह्य–ज्ञान प्रदाता तथा शिक्षक है । इसी के द्वारा समस्त चराचर सृष्टि का यथार्थ ज्ञान तुम्हें प्राप्त होता है। अनन्त प्रकृति का अद्भुद रहस्य इसी के अध्ययन करने पर तुम्हें प्राप्त होता है । इसी को प्राप्त कर तुम

यथा–१ विज्ञान २ रसायन ३ इतिहास ४ वैद्यक ५ ज्योतिष ६ व्याकरण ७ धनुर्धरत्त्व ८ जलतरत्व ९ संगीत १० नाटक ११ अश्वारोहण १२ कोक १३ चोरी १४ चतुरता।

(२) चौंसठ कलाएं हैं। गीत, वाद्य, नृत्य, चित्रकारी, विशेस-कच्छेद्य, तंदुल कुसुम बलि विकार, पुष्प शैय्या अर्चन, शरीर रंगना, मणि रंगना, जलतरंग बजाना, चित्रयोग, माला रचना, मुकुट रचना नैपथ्य योग, कर्णपत्रभंग, सुगन्धि योग, भूषण योजना, इन्द्रजाल, कौचुमार योग, हाथ की सफाई, चित्रशाक आसव क्रिया, सिलाई सूत्रकारी, वाद्य रचना, पहेली ज्ञान, नकल, दुर्वाचक, पुस्तक पढ़ना, नाटक दर्शन समस्यापूर्त्ति, पत्रिकाविकल्प, तर्क, बढ़ई का काम, गृहनिर्माण, धातु परीक्षा, नकली रत्न बनाना, उद्यान ज्ञान, खानों का ज्ञान, वनस्पति ज्ञान, पक्षी–युद्ध, पक्षी पढ़ाना, उत्साहन, केशमार्जन, अक्षर मुष्टिका कथन कुतर्क विकल्प, भाषा ज्ञान, पुष्प रचना, यंत्रनिर्माण, संवाच्य मानसी काव्य क्रिया, कोष रचना, पिंगलज्ञान, छलयोग, वस्त्रगोपन, द्यूत, खींचना, बाल क्रीडन, विनयिकों की विद्या, वैजयिकों की विद्या, वैतालिकों की विद्या, चर्म कारी और वेश्यासंग करना ।

अपने आपको जानते हो। विश्वोत्पत्ति, पालन एवं प्रलय का विचित्र भेद इसी के सहयोग से तुम्हें बोध होता है। संसार का समस्त अनुभव, वाह्य जगत का पूर्ण विवरण इसी की पाठशाला में प्रवेश करने पर तुम्हें मिल सकता है, अन्यथा नहीं !

भौतिक विज्ञान के द्वारा तुम भौतिकी विद्या Physics. रसायन विद्या chemistry, भूगर्भ विद्या Geology, वनस्पति विद्या Botany, जीवन विद्या Biology तथा प्राणिविद्या Zeology का अनुभव करते हो। यह तो वाह्य ज्ञान का विकास हुआ, भौतिक विज्ञान ही इस ज्ञान का एकमात्र उपादेय है। इसके विपरीत मानसिक विज्ञान अन्तर जगत के समस्त ज्ञानों का मूल कारण है। यही मानवों के लिये श्रेष्ठ उपादेय तथा अनिवार्य्य ग्रहणीय है।

मानसिक विज्ञान:—मनोविज्ञान Psychology का कारण है। इसी के द्वारा हृदय में मनोबल की जागृति होती है, जिस से तुम वास्तविक मनुष्य कहलाने के योग्य होते हो। इसी के द्वारा तर्क शास्त्र Logic का प्रचुर ज्ञान उदय होता है। यही सौंदर्य्य शास्त्र Aesthetics, आचार शास्त्र Ethics, तथा धर्म शास्त्र Religion का जन्मदाता ह। सारांश—इसी के द्वारा अन्तर जगत के समस्त भेदों का ज्ञान तुम्हें उपलब्ध होता है।

दोनों का साधन उपयोगी है, परन्तु इनका वास्तविक ज्ञान

प्राप्त करना साधारण नहीं, अत्यन्त कठिन है। उग्र ब्रह्मचर्य के धारण करने पर ही तुम इनका यथावत पालन कर सकते हो। यह सत्य है कि ब्रह्मचर्य-भ्रष्ट होने पर तुम इस अलभ्य वस्तु से वंचित रह जाओगे। ब्रह्मचर्य से विज्ञान का विशिष्ट सम्बन्ध है। ब्रह्मचर्य ही समस्त लोकों का यथावत ज्ञान उत्पन्न करता है। यही समस्त विद्याओं का दाता है, इसी के द्वारा विज्ञान क्षेत्र में तुम प्रवेश करते हो। इसी की अनन्य कृपा से सहज में ही विजय लाभ करते हो। इस से विदित होता है कि स्वयं ब्रह्मचर्य ही विज्ञानरूप है। इसी के द्वारा द्विविध विज्ञानों का विकास हुआ है तथा इसी दयालु देव की कृपा से विश्व में विज्ञानों की वृद्धि हुई।

ब्रह्मचर्य-समीक्षा।

अग्नि, विद्युत, जठराग्नि तथा वड़वानल और प्राण, इन्द्रिय, गो आदि पशु जिस प्रकार जगत की पुष्टि करते हैं, तद्वत् मनुष्यों को ब्रह्मचर्य द्वारा अपना तथा दूसरों का बल बढ़ाना चाहिये।

—यजुर्वेद

समीक्षा समालोचना रूप है। किसी वस्तु की अच्छी प्रकार की गई विवेचना ही समीक्षा का अभिप्राय है। अच्छाई, बुराई,

उचित, अनुचित, उत्तम, निकृष्ट, योग्य, अयोग्य, स्वाभाविक, अस्वाभाविक, प्राकृतिक, अप्राकृतिक एवं अनुकूल प्रतिकूल का यथोचित ज्ञान सांसारिक प्राणियों को समीक्षा के द्वारा प्राप्त होता है। समालोचना करनेवाले व्यक्तियों को महर्षियों ने समीक्षक तथा समालोचक के नाम से पुकारा है।

निखिल लोक का समीक्षक वीर्य-धारी देवाधिपति परम देव ब्रह्मचर्य है। यही समुचित समालोचना करनेवाला निष्पक्ष न्याय-कर्ता है। यही तुम में सत्यासत्य का ज्ञान भरता है। यही अपने बलशाली अद्भुद् गुणों से तुम्हारे अशान्त हृदय में धर्माधर्म का पुनीत भाव जागृत करता है। यही अत्यन्त दुर्गम संसार की समरस्थली में पाप एवं पुण्य के रहस्यपूर्ण भेदों का बोध देता है। यही सर्वस्व है। यही सत्य समीक्षा, सच्चा समीक्षक तथा निष्पक्ष समालोचक है।

समालोचक एवं समीक्षक संसार के गुण अवगुणों को बता सकता है। अपने हृदय एवं ज्ञानानुसार उत्तम, अधम का न्याय कर सकता है, विशिष्ट तथा निकृष्ट बता सकता है, क्लिष्ट अथवा अक्लिष्ट का बोध करा सकता है, और इसके अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकता। इससे अधिक समालोचकों में शक्ति नहीं, बल नहीं और बुद्धि नहीं।

समीक्षकों में समीक्षा की शक्ति, समालोचकों में समालोचना

का भाव कहाँ से उदय होता है ? किस अद्वैत शक्ति के द्वारा उन्हें यह ज्ञान प्राप्त होता है ? कौन उनके शरीर में प्रविष्ट होकर उन्हें भले और बुरे का ज्ञान देता है ? सत्या-सत्य के निर्णय करने में विश्व की कौनसी शक्ति उनके अन्तरात्मा में काम करती है ? सोचो ! एकबार सोचो ! वाचकों ! विचारो ! ढूंढो ! ढूंढो ! किसे पाते हो । न मिलने पर मुझ से सुनो । तुम्हारे तत्त्वज्ञ पूर्वजों का कथन है ।

"यह महान शक्ति ब्रह्मचर्य की है। समीक्षा का मूल कारण तथा उसके सारगर्भित भाव ब्रह्मचर्य में ओतप्रोत हैं । ब्रह्मचर्य ही विश्व के द्विविध विज्ञानों का सर्व श्रेष्ठ समीक्षक तथा पथ-प्रदर्शक है । इसीके द्वारा तुम सत्यासत्य तथा धर्माधर्म का निर्णय करने में समर्थ होते हो ।"

यह पूर्व ही लिख आये हैं कि समीक्षक किसी वस्तु के गुण दोष को ही बता सकता है । उसकी त्रुटियों को भली भाँति सुधार नहीं सकता । जीर्ण एवं भग्न अवस्था को सांगोपांग पूर्ण नहीं कर सकता । नष्टप्राय लक्षों में पुनर्जीवन प्रदान नहीं कर सकता । सारांश यह है कि समीक्षा संसार का प्रत्येक व्यक्ति कर सकता ह, परन्तु उसे पूर्ण नहीं कर सकता। यह केवल ब्रह्मचर्य का ही काम है, उसी की अनन्त शक्ति इस अद्भुत कर्म के करने में समर्थ होती है । वही पूर्ण समर्थ तथा सच्चा समीक्षक है ।

ब्रह्मचर्य केवल लेखों और पद्यों का समीक्षक नहीं, गल्प और कहानियों का आलोचक नहीं, काव्यों के सत्यासत्य का निर्णायक नहीं, शृंगार के विशेषता का समालोचक नहीं, वीरता के महत्त्व का दिग्दर्शक नहीं, भक्ति-ज्ञान एवं वैराग्य के सत्यासत्य का पथ-प्रदर्शक नहीं, बल्कि समस्त भूमण्डल का एकमात्र श्रेष्ठ समीक्षक है, जिसकी हिन्दी संसार ही नहीं, अपितु विश्व-विद्वान प्रार्थना करते हैं। जिसकी धाक साहित्यकों में ही नहीं, वरन त्रैलोक्य में व्याप्त है।

वाचकवरों! आओ! अपने स्वयं समालोचक-प्रवर ब्रह्मचर्य की समीक्षा करो। यह क्या है? इसकी उत्पत्ति का क्या कारण है? इसका उद्भवकर्त्ता कौन है? यह कैसा है? क्या कर्म करता है? इसके आचार विचार कैसे हैं? कहाँ रहता है, क्या खाता है, क्या पीता है तथा कहाँ सोता है? कहाँ इसका कार्य्यक्षेत्र है? कौन इसका सहयोगी है? किसका मित्र तथा किसका शत्रु है? कौन सब से उसे प्यारा है? भूतकाल के विशाल काल में क्या कर चुका है? वर्त्तमान संसार में क्या कर रहा है, और भविष्य-अज्ञात-गर्भ में उसका क्या करने का विचार है?

भौतिक तथा मानसिक विद्याओं पर विचार करने से, संसार के अतीत काल के इतिहास को देखने-सुनने एवं अनुभव

करने से तथा उसके गूढ़ भावों का अनुसन्धान करने के पश्चात् उपरोक्त भावों का स्पष्टीकरण होता है:—

जाके बल सब सिद्ध हों, कर्म उपासन योग।
ताको सुर नर कहत हैं, ब्रह्मचर्य उपयोग॥

विश्व निर्माण ही इसका कारण है। यह स्वयं अजन्मा ब्रह्मय है। अमृतरूप है। उत्थान एवं अभ्युदय ही इसका कर्म है। सर्वोत्कृष्ट सदाचारयुत इसकी मनोवृत्ति है। ब्रह्माण्ड ही क्रीडोद्यान है। काम क्रोधादि शरीरस्थ शत्रुओं को खाता है। अभिमानादि दुर्गुणों के अशान्त सागर का शोषण करता है। प्रलय काल में अगम प्रलयाब्धि के गह्वर गर्भ में सोता है। त्रैलोक्य इसका कार्यक्षेत्र है। ब्रह्म ही सहयोगी है। ब्रह्मचारियों का मित्र तथा दुराचारियों का शत्रु है। सदाचार ही उसे सब से प्रिय है। भूतकाल में विश्व को उन्नत के शिखर पर पहुँचा चुका है। साधारण जीवों को ब्रह्मरूप बना चुका है, अपने भक्तों के द्वारा देवता क्या स्वयं त्रिदेवों को थर्रा चुका है। पृथ्वी क्या त्रैलोक्य का अधिपति बना चुका है। साध्य, प्राप्य तथा सम्भव को ही नहीं असाध्य अप्राप्य तथा असम्भव को अनुकूल करके उसके वक्षस्थल पर शासन कर चुका है। वर्त्तमान काल में रुष्ट हो जन-पद-ध्वंस कर रहा है और अभी भविष्य का कार्यक्रम अज्ञात है।

मानवों ! समालोचकों ! समीक्षकों ! आओ ! आगे बढ़ो ! ब्रह्मचर्य की समीक्षा करो। उसके गुण और दोषों को देखो, उसके कर्म और अकर्म को ढूँढो। उसके आन्तरिक रहस्यों पर विचार करो, उसके सत्यासत्य पर दृष्टिपात करो, न्यायपूर्वक त्रुटियों को खोजो, अनुसन्धान करो, देखो कैसा है! उसका विस्तृत वर्णन तो नहीं परन्तु दिव्य विभूतियों का उल्लेख किया जा चुका है।

समालोचकों ! तुम्हारे मस्तिष्क में कोई विचार उदय होता है ? इसकी पूर्णता अपूर्णता, सम्पन्नता विपन्नता का भाव जागृत होता है ? बोलो ! एक बार ब्रह्मचर्य की समालोचना करो। सत्यता को अपनाओ, यहाँ आत्मीयता का पक्षपात तथा कपट छल न चलेगा, इसके सामने तुम्हारी घूसखोरी का भण्डाफोर होगा। यह साहित्यिक समालोचना नहीं है, जिसमें तुम अपने पक्षपाती इष्ट-मित्रों सहयोगियों, पृष्ठपोषकों तथा शिष्यों की भर-पेट प्रशंसा करो, उनकी रद्दी रचनाओं पर वाहवाही का पुल बांधो। विपक्षियों के सर्वोत्तम रचना पर मुँह सिकोड़ो, आँखें भौं चढाओ। यहाँ माया ग्रसित मूढ़ को मछीन्द्र नहीं बना सकते, यहाँ विज्ञवर ब्रह्मचर्य की आँख में धूल नहीं झोंक सकते। पक्षपातियों समालोचना शब्द को कलंकित करनेवाले कुलांगार समीक्षकों ! यहाँ तुम्हारी दाल नहीं गल सकती। जानते हो ! तुम किसके सामने हो ?

समालोचना करना ब्रह्मचर्य से सीखो, तभी तुम वास्तविक समालोचक बनोगे। अन्यथा तुम्हारी समीक्षा वर्तमान् इन्द्रजाल के समान ढोंग है। पहले अधिकारी बन लो पश्चात् किसी वस्तु की चेष्टा करो। ब्रह्मचर्य की कोई भी क्या समीक्षा करेगा, वह स्वयं समीक्षाचार्य्यों का जन्मदाता है। जब समीक्षा शब्द की विश्व में उत्पत्ति भी नहीं हुई थी, उस समय यह अनादिदेव अपनी शक्ति से संसार को प्रगट कर रहा था।
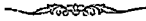
ब्रह्मचर्य—प्रताप।

ब्रह्मचर्यस्य सुगुणं शृणुश्व सुधया धिया।
आजन्ममरणाद्यस्तु ब्रह्मचारी भवेदिह॥

—भीष्म पितामह

हे अजातशत्रु!

मैं ब्रह्मचर्य का गुण (प्रताप) बतलाता हूँ, तुम स्थिर बुद्धि से सुनो। जो मनुष्य जन्मभर ब्रह्मचारी रहता है। उसे इस संसार में कुछ भी दुःख नहीं होता।

इस परिवर्त्तनशील असार संसार में जो कुछ तैजस तथा दिव्य विभूतियाँ दिखाई देती हैं, उनका एकमात्र कारण ब्रह्मचर्य

है। वास्तविक बल, तेज, सामर्थ्य, सौन्दर्य्य, आनन्द, उत्साह, आकर्षण, असमानता, श्रेष्ठता तथा ऐश्वर्य्यादि उच्च गुणों का समावेश इसीके द्वारा होता है।

बड़े २ दुर्द्धर कार्य्यों को कौन करता है? अगम, विकट, सघन, कंटकित वनों को कौन पार करता है? दुर्भेद्य दुर्गों पर किसके बल से मनुष्य अधिकार प्राप्त करता है? विश्व विजयिनी प्रबल शत्रुवाहिनी पर किसकी असीम शक्ति के द्वारा विजय प्राप्त किया जा सकता है? द्वन्द्वयुद्ध में प्रतिद्वन्दी को कौन हराता है। पढ़ने-लिखने एवं खेलने-कूदने में, प्रतिज्ञापूर्ति में तथा लोगों को वशीभूत करने में किसका प्रताप है? दिग्विजय का महामंत्र, आरोग्यता की महौषधि, दुःखितों का त्राण, पीड़ितों का प्राण, शोकविनाशक तंत्र, वृद्धों का रसायन, क्लीबों का वाजीकरण, मरणासन्न व्यक्तियों के लिये संजीवनी जड़ी, निःशक्तों का कायाकल्प, भवसागर में बहते हुये निर्जीवतुल्य प्राणियों के लिये एकमात्र तरणि, योग का मूल तथा तपश्चर्य्या का श्रेष्ठ साधन कौन है?

निर्भयता, साहस, शील, श्रद्धा, भक्ति का श्रोत, अनुभूत प्रयोग, उपकारी युक्तियाँ तथा दृढ़ संकल्प धारण करने की शक्ति प्रदान करनेवाला कौन है? सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर स्पष्ट प्रकट होता है कि यह सब ब्रह्मचर्य का ही प्रताप है, संसार

में सर्वश्रेष्ठ शक्तिसम्पन्न कर्त्ता एकमात्र ब्रह्मचर्य ही है।

ब्रह्मचर्य-व्रतधारी पुरुष ही सर्वत्र विजयी होते हैं। वे कभी अपने संकल्प से विचलित नहीं होते, पराजय किसे कहते हैं—वे जानते ही नहीं। भय एवं भीरुता उनके पास नहीं रहती। वे कभी भी धैर्य्यहीन नहीं होते। अविराम अपने कर्त्तव्य-पथ पर डँटे दिखाई देते हैं। जीवन-संग्राम में विघ्न-बाधाओं को देख अपने पुनीत इष्ट-पथ से नहीं हटते। काम, क्रोध आदि आपत्ति-जनक शत्रुओं को देख विमुख नहीं होते। सुख और दुःख की उन्हें चिन्ता नहीं रहती। हानि-लाभ, जीवन-मरण तथा मानापमान को वे समान समझते हैं। उनकी विज्ञता निरर्थक नहीं जाती। उनकी अन्तःकरणवासिनी पंच वृत्तियाँ विपर्यय-पथ का अनुगमन नहीं करतीं। वे निरन्तर अभ्यास के द्वारा उन पर विजय प्राप्त करते हैं।

समस्त इन्द्रियाँ उनके अनुकूल रहती हैं। चंचल मन वशीभूत रहता है। बुद्धि स्थिर रहती है। चित्त शुद्ध और पवित्र रहता है। सत्यानाशी गर्व नष्ट हो जाता है।

ब्रह्मचारी न काञ्चनार्त्तिमार्च्छति।

—शतपथ

ब्रह्मचारी कभी भी दुखी, दीन, मलीन एवं हीन नहीं होता। सभी प्रकार के पुण्य तथा शरीरारोग्यतादि का कारण ब्रह्मचर्य ही है।

जो ब्रह्मचर्यरूपी तप का तपस्वी है, जिसने उसके सुन्दर गुणों से अपने को अलंकृत कर लिया है, जिसने उसके पुनीत आचरणों के द्वारा अपने को पवित्र बना लिया है, जिसने ब्रह्मचर्यरूपी प्रचंड अग्नि के द्वारा दुर्वासनारूपी तृण को जला दिया है। ब्रह्मचर्य के वैदिक ज्ञानों के द्वारा अपनी वाणी को शुद्ध कर लिया है, वह निसन्देह इस संसार में कठिन से कठिन कार्य्यों को भली भाँति कर सकता है। उसके सन्मुख असम्भव कुछ भी नहीं है। यह दुस्तर संसार-सागर भी उसके लिये तुच्छ विषय है। भगवान् शंकर का वचन है।

सिद्धे बिन्दौ महायत्ने किं न सिद्धयति भूतले।
यस्य प्रसादान्महिमा, ममाप्येतादृशो भवेत्॥

अत्यन्त परिश्रम अर्थात् अभ्यासपूर्वक वीर्य को साधनेवाले व्यक्ति के लिये भूतल में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो सिद्ध न हो सके। ब्रह्मचर्य के प्रभाव से तो मनुष्य मेरे ही तुल्य बन जाता है। अखंड ब्रह्मचारी के लिये कुछ भी अप्राप्य तथा असाध्य नहीं है ब्रह्मचर्य के तैजस प्रताप से पुरुष वास्तविक में विशिष्टता प्राप्त कर सर्वत्र वन्दनीय एवं पूजनीय बन जाता है।

यह निर्विवाद सत्य है कि यश, कीर्त्ति, मान, प्रतिष्ठा एवं अपार ऐश्वर्य्य ब्रह्मचर्य के द्वारा ही मनुष्य प्राप्त कर सकता है।

ब्रह्मचारियों को कभी अपमान तथा अपयश प्राप्त नहीं होता। जो वीर्य को नष्ट करता है, जो इसके विश्वव्यापी प्रताप को नहीं जानता, जो इसकी महिमा से वंचित है—समझ लो उसका अवश्यम्भावी नाश होगा। दानवों का पराजय क्यों हुआ? लंका के बलवान् राक्षसों को भालुओं और बन्दरों ने क्यों जीता? इन्द्र का पतन, अभिमन्यु की मृत्यु, पृथ्वीराज का पराजय, भारत के शासक म्लेच्छों की अवनति तथा मुगल-साम्राज्य के नाश का क्या कारण है? सर्वदा वीर्य धारण करने-वाला व्यक्ति ही जयश्री तथा यश का भागी होता है, सच्चा ब्रह्मचारी एक मनुष्य क्या? अक्षौहिणी पर विजय प्राप्त कर सकता है। एक देश क्या? विश्वविजयी हो सकता है। मनुष्य की कौन कहे, देवताओं को भी जीत सकता है। शत्रु क्या? स्वयं काल भी उसके आगे कान्तिहीन हो जाता है।

भारतीयों! आँखें खोलो! ब्रह्मचर्य के ही प्रताप से योगिराज भगवान् शंकर सर्वश्रेष्ठ हुये। इसीके बल से महा-प्रतापी वीराग्रगण्य परशुधर भृगुराम से भीष्म पितामह ने विजय प्राप्त की थी, इसी अनन्त बलदाता के निरन्तर अभ्यास का फल था कि महाभारत के विकट सग्राम में भीष्म के सन्मुख प्रायः समस्त विपक्षियों को पीठ दिखलानी पड़ी। इसी ब्रह्मचर्य के प्रताप से उन्होंने महाबली प्रतापी पांडवों को विदलित कर

दिया। गांडीवधर का गांडीव, उसका अक्षय तूण, अमोघ अस्त्र, भीम की वज्र गदा, युधिष्ठिर नकुल सहदेव, सात्यकि आदि अग्रगण्य महारथियों का रण-कौशल कुछ न कर सका। इतना ही नहीं, स्वयं कृष्ण भगवान् को भी विवश हो अपनी प्रतिज्ञा छोड़नी पड़ी।

वज्रांग ने दिशाओं को विदलित कर दिया, पृथ्वी थर्रा उठी, गगन सिहर उठा, मेरू, विन्ध्य तथा दुर्द्धर भूधरादि दहल उठे, महाप्रतापी लंकेश जिसने बाहुबल से कैलाश को उठा दिया था, ब्रह्मचर्य-शक्ति के आगे नतमस्तक हो गया। वज्रांग ने एक ही मुष्टिकाघात में ब्रह्मचर्य के ही प्रताप से इतने बड़े वीर को मूर्छित कर दिया।

गर्विष्ठ दुराचारी राक्षसों को किसकी शक्ति न नष्ट-भ्रष्ट किया? दानवों के दुदर्प दर्प को विनष्ट कर देना किसका काम था? समुद्र को एक ही उड़ान में लाँघना, विकट द्रोणाचल पर्वत उठा लाना, आकाश मार्ग से गमन करना, दावाग्नि तथा वडवानल पर विजय पाना, ब्रह्मास्त्र, पवनास्त्र, अनलास्त्र, वरुणास्त्रादि भयंकर विद्युत् तुल्य अस्त्रों एवं प्रचण्ड शक्तियों को बात की बात में छिन्न-भिन्न कर देना तथा अत्यन्त उग्र एवं अमोघ पाशुपतास्त्र तथा चक्र सुदर्शन की शक्ति को विफल कर देना किसकी शक्ति का काम है? इन्द्रजीत पर विजय, कर्म पर अधिकार, विश्व पर

शासन करना तथा किसी अलभ्य वस्तु की प्राप्ति किस शक्ति के द्वारा हुई ? सन्मुख समर में काल को भी दण्ड देना किसका काम है ? यह सब अखंड ब्रह्मचर्य का ही प्रताप है । भारतीयों ! अपने पूर्वजों के ब्रह्मचर्य-व्रत का आदर्श देखो ।

ब्रह्मचर्य ही जीवन है ।

मरणं विन्दुपातेन, जीवनं विन्दुधारणात् ।
तस्मादतिप्रयत्नेन, कुरुते विन्दुधारणम् ॥

—योगशास्त्र

अर्थात् वीर्यपात मृत्यु और वीर्य धारण करना ही जीवन है अतः सब प्रकार से वीर्य–रक्षण का प्रयत्न करना चाहिये ।

ब्रह्मचर्य ही जीवन है, इसी से सभी लोग इसे श्रेष्ठ मान कर इसकी प्रतिष्ठा करते हैं । शरीर, ज्ञान प्राप्त करने पर विदित होता है कि इसीके द्वारा मानव दीर्घायु प्राप्त कर सकता है । इसीके द्वारा बलवान होकर अपनी दुर्बलता का नाश कर सकता है । इस असार संसार में इसीके तेज से अकेले ही कराल काल को द्वन्द–युद्ध के लिये ललकार सकता है तथा दुर्द्धर्ष शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ हो सकता है ।

यही अकाल मृत्यु को जीतना है। इसी के प्रवल प्रताप से मैथुनी–सृष्टि का एक तुच्छ जीव भी देवरूप वन जाता है। यही शरीर का सर्वोत्तम तप है। यही त्रैलोक्य में सर्व प्रकार के सुखों का देनेवाला परम प्रिय दाता है। यही वन्धु रूप होकर तुम्हारे अनेक दुःखों में सहायक होता है, यही सखा रूप हो तुम्हें विपत्तियों से बचाता है। कहां तक कहें;–यही प्राण-प्रिय देवता अपनी अपरम्पार महिमा के द्वारा मानव जीवन सार्थक करता है।

इसीका नाम अमृत है। यही संजीवनी विद्या है। यही पूर्ण आयु तथा कल्याण दाता, मंगलकारी, निरोगता प्रदान करने- वाला, मन को प्रफुल्लित रखनेवाला और सर्वथा सुख सौख्य देनेवाला है। यही शांति, सुन्दरता, स्मृति ज्ञान तथा उत्तम सन्तति का कारण है। आयु, तेज, वल, वुद्धि, श्री, धनादि का कारण है। वास्तविक में ब्रह्मचर्य ही हमारा जीवन है।

जायते म्रियते लोको, विन्दुना नात्र संशयः।
एतद्ज्ञात्वा सदा योगी, विन्दुधारणमाचरेत्॥

अर्थात् वीर्य से ही जीवन की उत्पत्ति और उसका विनाश है। इस में संशय नहीं। इस लिये योगियों को अत्यन्त यत्न-पूर्वक उसका अनुष्ठान करना चाहिये। सांसारिक और पार मार्थिक उन्नति की जड़ ब्रह्मचर्य ही है। जो कुछ इस विश्व में

चर अथवा अचर तुम देखते तथा जिनका अनुभव करते हो, सबों के पालन के परमाणु ब्रह्मचर्य में विद्यमान हैं।

विश्वरूपी वृक्ष ब्रह्मचर्य ही है। उसका प्राणधारी मूल यही है, उस विशाल वृक्ष की धड़ तथा प्रकाण्ड शाखायें इसीके द्वारा विकसित होती है। उनकी छोटी २ टहनियां तथा पत्तियां ब्रह्मचर्य के सामर्थ्य से ही प्रगट होती हैं। उस अद्वैत वृक्ष के फल फूल ब्रह्मचर्य के प्रताप से ही समय समय पर लगते रहते हैं। उसका सृष्टिकारक बीज इसी ब्रह्मचर्य में छिपा है। विश्व-तरु अपने अनन्त मूलों से ब्रह्मचर्यरूपी रस को खींच कर अपनी क्षुधाग्नि एवं पिपासाग्नि बुझाता है। ब्रह्मचर्य ही प्रचंड जठराग्नि का रूप धारण कर उसके आहार को पकाता है। उसी सर्वोत्कृष्ट रस से इस दुर्द्धर्ष अधोमुखी वृक्ष का पालन होता है। वृक्ष की पत्तियां ब्रह्मचर्यरूपी वायु का श्वांस लेतीं हैं। स्वयं ब्रह्मचर्य रस रूप होकर आत्मा के समान विराजमान है जिससे वह सदैव सजीव रहता है।

यह अधोमुखी वृक्ष संसार है। इसका आद्यंत ब्रह्मचर्य में व्याप्त है। इसकी धड़् एवं शाखायें ही मेरु तथा देश देशान्तर हैं। पत्तियां ही सृष्टियां हैं। समस्त चराचर जगत् उसीमें लीन है। इस विश्व-वृक्ष की प्रजाओं का प्रजेश ब्रह्मचर्य ही है। यही उस वृक्ष का सर्व श्रेष्ठ आधार तथा प्राण है। ब्रह्मचर्य के

न रहने पर यह वृक्ष निर्जीव हो जायगा। अतएव यह निर्वि-वाद सिद्ध है कि ब्रह्मचर्य ही समस्त लोक दिगंत एवं भुवनों का एकमात्र जीवनाधार है।

वाचकों! क्या तुम इस संसार में जीवित रहना चाहते हो? वास्तविक मनुष्य बन कर सांसारिक उपभोगों को पार करते हुये सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहते हो? अथवा जीवन रणांगन के प्रबल शत्रुओं को पराजय करना चाहते हो, या सदाचार के साम्राज्य का एक छत्र सम्राट् बनना चाहते हो? क्या तुम्हें निर्बल नसों के निस्तेज रक्त को एक बार पुनः गतिवान बनाने की इच्छा है। क्या इस जीर्ण शरीर के कायाकल्प का विचार है? या मृत तुल्य हीन काया को संजीवनी बूटी के द्वारा पूर्व चैतन्य करने का अभीष्ट है? यदि हां! तो आओ! और ब्रह्मचर्य ही जीवन है—इस पाठ का अध्ययन करो!

यदि तुम सचमुच इस नश्वर संसार में कुछ काम करना चाहते हो! अपने पूर्वजों के कीर्ति की रक्षा करना चाहते हो! गौरव को नष्ट होने से रोकना चाहते हो, इस दीन-हीन पतितावस्था से उद्धार पाने का ध्यान है—और सृष्टि में मनुष्यता प्राप्त करने का ज्ञान है तो तुम्हें अवश्य वीर्य-नाश से बचना चाहिये। तुम्हें ब्रह्मचर्य-व्रत-धारी विज्ञ पूर्वजों के नियमों का अनुकरण करना चाहिये!

यह निर्विवाद सिद्ध है कि वीर्य-धारण ही जीवन है । इसके विपरीत वीर्य नाश ही मृत्यु है । जो जितना वीर्य नाश करता है, समझलो कि वह उतनाही काल के कराल मुख की ओर बढ़ा जा रहा है । और जो जितना अधिक वीर्य-धारण का अभ्यासी है;—वह उतनाही अधिक आयु, आरोग्यता, सुख एवं शान्ति का अधिकारी बन रहा है । भगवान शंकर का कथन है—

जीवों ! सदा वीर्य को यत्न पूर्वक धारण करो, यही समस्त सिद्धियों का देनेवाला शरीर का प्राण है । योगीजन इसीको धारण कर मुझे पाते हैं । इसी भांति भृगु, अंगिरा, अत्रि, वशिष्ठ, कश्यप, अगस्त्य, पुलस्त्य, वामदेव, असित, गौतम, जाबालि आदि महर्षियों से इन्द्र ने भी कहा है—

हे तपोधन ऋषियों ! सब मनुष्यों के लिये सब पुण्यों से उत्तम पुण्य ब्रह्मचर्य ही है । यही पूर्ण आयु देनेवाला, शीघ्र, वृद्धावस्था को न आने देनेवाला, रोगों का नाश करनेवाला, तेज का बढ़ानेवाला मृत्यु से बचानेवाला, कल्याण का करने वाला, शरीरादि की रक्षा करनेवाला तथा मन को सर्वदा आनन्द पूर्वक रखनेवाला है । हे विज्ञों ! इसे धारण करो, इस सनातन ब्रह्मचर्य को विश्व के कल्याण के लिये जनता में प्रचार करो । दुराचारियों, पापियों अज्ञान-निद्रा में सोये हुये ज्ञानान्धो को

जगाओ! उन्हें वीर्य-रक्षा का उपदेश दो, सर्वत्र सदाचार का साम्राज्य स्थापित करो! केवल संसार को इतना पढ़ा दो कि 'मरणं बिन्दुपातेन, जीवनं बिन्दुधारणात्,।

ब्रह्मचर्य की महिमा।

ब्रह्मचर्य ही बल युक्त करता है। मनुष्य विना ब्रह्मचर्य धारण किये कभी भी पूर्ण आयुवाला नहीं हो सकता।

—ऋग्वेद

ब्रह्मचर्य की महिमा अकथनीय एवं अवर्णनीय है। सारा संसार इसीके पवित्र गर्भ में व्याप्त है। विश्व के सारे सद्गुण इसीके विशाल उदर में अठखेलियां कर रहे हैं। जिस प्रकार पक्षी वृक्ष का आश्रय लेते हैं, नदियां समुद्र का आश्रय लेती हैं, स्त्रियां पति का आश्रय लेती हैं, उसी प्रकार संसार के सभी उत्तमोत्तम गुण ब्रह्मचर्य रूपी सर्व श्रेष्ठ धन के आश्रय हैं। वास्तव में यदि देखा जाय तो स्पष्ट विदित होता है कि संसार में जितने बड़े-बड़े कार्य्य हुये हैं। सब ब्रह्मचर्य के ही अनन्त बल से, उसी के दुर्द्धर्ष प्रताप से, इस प्राण-प्रिय देवता की महिमा वही पुरुष जान सकता है, जो इसे प्रेम-पूर्वक धारण करता हो।

इसकी महिमा को स्वयं भगवान भूतभावन शंकर ने जाना था, इसकी सत्ता ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, यम, वरुण, कुबेरादि श्रेष्ठ अमरों ने पाया था, इसके विकट रहस्यों को दानवाचार्य्य शुक्र ने उद्घाटित किया था, इसकी असीम उग्र शक्ति को पवनात्मज महावीर हनूमान ने धारण किया था, इसके जटिल नियमों को इन्द्रजीत-संहारी वीर रामानुज लक्ष्मणजी ने निभाया था। इसके प्रबल पराक्रम को व्रतधारी भीष्मपितामह देवव्रतने गहा था। इसके अमोघ शस्त्रों को ब्रह्मचारी जामदग्नि परशुराम ने धारा था। तथा इसके अलौकिक तेजों को रामकृष्णादि वीरों ने पूर्ण रूप से अपनाया था।

ब्रह्मचर्य के शान्त भावों को तपोवनवासी महर्षियों ने कठिन तपश्चर्य्या के द्वारा खोजा था, इसके प्रमुख ज्ञान को शुक ने विपिन में बैठे २ सहस्रों वर्ष अविराम अध्ययन करने के पश्चात् प्राप्त किया था। इस विद्या के वास्तविक रहस्य को शुक्राचार्य के प्रिय शिष्य कच ने अनेकों विपत्तियों को सह कर सीखा था। महर्षि नारद ने निरन्तर त्रैलोक्य भ्रमण करते हुये, सत्संग के द्वारा इसके गूढ़ महत्त्व को पाया था। बालक ध्रुव ने इसीके ज्ञान से दिव्य दर्शन पाया था, महाराजा मोरध्वज, राजर्षि जनक तथा परम भक्त प्रह्लाद का यही शिक्षक तथा पथ-प्रदर्शक था, जिसके द्वारा संसार में वे सर्व श्रेष्ठ हुये।

ब्रह्मचर्य्याश्रम-वासी बटुकों का यही प्राण था, महर्षि गौतम, कणाद तथा पातंजलि का यही योग था। वशिष्ठ, पाराशर तथा व्यास का यही तप था। जाबालि, जैमिनी तथा पैलादि ऋषियों का यही सर्वस्व-धर्म एवं धन था। अष्टावक्र तथा दत्तात्रेय का यही विराग था। शृंगी, भृंगी तथा भृगु का यही क्रिया-योग था। भीष्मादि वीरों का स्वाध्याय तथा धन्वन्तरि, चरक, सुश्रुतादि आयुर्वेद के अनुसंधान करनेवाले महापुरुषों की जीवन-संजीवनी बूटी का रहस्य यही ब्रह्मचर्य था।

इसकी महिमा कोई शब्दों में वर्णन नहीं कर सकता। इसे स्वयं अभ्यासी ही जान सकता है, परन्तु वह भी व्यक्त नहीं कर सकता। संसार में जहां देखो। वहीं इसे पाओगे। कोई ऐसा स्थान नहीं, जहां ब्रह्मचर्य की झलक न हो सम्पूर्ण लोक, भुवन एवं दिग्दिगन्तों में इसी का साम्राज्य फैला है। समस्त विश्व का प्रजापति यही है। यही त्रैलोक्य का एक मात्र बलिष्ट शासक है। इसके आगे बड़े २ देवता यक्ष, किन्नर तथा नागों को नतमस्तक होना पड़ता है। बड़े २ महीपों के रत्न जटित मुकुट इसके पद-पीठ पर स्पर्श करते हैं। सार्व भौम शासकों की दृष्टि बराबर इसके चरण कमलों की ओर आकर्षित रहती है।

इसी के बलसे देवेन्द्र, देवताओं पर शासन करता है।

इसी के ज्वलित ज्वाल से वामदेव ने कामदेव को भष्म किया। इसी की महिमा से विष्णु विश्वका पालन करते हैं। इसी के गंभीर भावों को लेकर कमलासन ब्रह्माजी सृष्टि की रचना करते हैं। कहां तक कहें–यह समस्त संसार इसकी महिमा से ओत–प्रोत है। यह वास्तविक में अनन्त है।
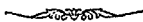
ब्रह्मचर्य और शक्ति।

बलेन वै पृथ्वी तिष्ठति, बले नान्तरिक्षम्।
वीर्य मेव बलम्, बल मेव वीर्यम्॥

—महर्षि वायु

शक्ति से ही पृथ्वी ठहरती है और शक्ति से ही यह व्योम ठहरा हुआ है। वीर्य ही शक्ति है और शक्ति का नाम ही वीर्य है।

यह नाशवान अखिल संसार शक्ति का विस्तृत साम्राज्य है। जिसकी छत्र–छाया सघन एवं सुखदायी है। प्रत्येक काल में इसी का आश्रय लेकर संसार को आगे बढ़ना पड़ता है। जीवन-संग्राम में विजय पाने के लिये तुम्हें पद–पद में इसी की आवश्यकता पड़ती है।

त्रैलोक्य शक्ति का उपासक है। ईश्वर, शक्ति का ही स्वरूप है। संसार का अलभ्य पदार्थ तथा अर्थ-धर्म-काम, मोक्षादि इसी के उपार्जन द्वारा प्राप्त होते हैं। सत्य का विकास और धर्म की जड़ यही है। प्रेम का मूल तत्त्व इसी सारगर्भित वस्तु के अन्तर्गत व्याप्त है। भक्ति का श्रोत, अहिंसा का रहस्य तथा सर्वज्ञता का प्रभाव इसी के द्वारा उत्पन्न होता है। मन की गति, बुद्धि की प्रखरता तथा चित्त की विमलता में इसी का प्रवेश है। समस्त सभ्यता, विज्ञान, ज्ञान, विद्या, कला, कौशल, राष्ट्रोन्नति एवं महासमरों का एकमात्र आधार शक्ति यही है।

शक्ति से ही देवताओं ने देवासुर-संग्राम में दुर्द्धर्ष दानवों को परास्त किया था, शक्ति ने ही नष्ट होते हुये स्वर्ग की रक्षा की थी, इसी ने प्रतापी महाभिमानी लाखों अत्याचारियों से पृथ्वी को उबारा था। इसी ने प्रबल महिषासुर का नाश किया, शक्ति ने ही शुंभ, निशुंभ, धूम्राक्ष, चंड-मुंड तथा रक्तबीजादि प्रचण्ड धुरन्धरों द्वारा किये हुये अनर्थों से विश्व को बचा लिया। यह शक्ति का ही प्रताप है, जिससे इस विश्व को आज हम अपने नेत्रों से हरा-भरा एवं फला-फूला देखते हैं।

यह हम पूर्व ही कह आये हैं कि सारा संसार शक्ति का उपासक है। पशु, पक्षी, मनुष्य, देव, दानव, सभी शक्ति के दास हैं। बिना शक्ति हम संसार में कुछ नहीं कर सकते।

देखो ! आँखें खोलो । आज जितने शक्तिशाली राष्ट्र हैं, उनकी कैसी स्थिति है ? और यह एक निःशक्त पददलित राष्ट्र जिसमें तुम रहते हो, जिसे भारत कहते हैं—शक्ति-हीन होने के कारण किस अधोगति में पड़ा है ?

शक्तिवानों की पूजा संसार करता है। दुर्बल, दीन, हीन, रुग्ण एवं निरुपाय की पूजा कौन करता है ? जिसके पास बल का आधार है, असीम शक्ति का आगार है । अटूट धैर्य्य का भंडार है वही विश्व-विजयी है। संसार उसी का है। समस्त धनों का वही अधिपति है। विश्व का ऐश्वर्य्य उसी के पास है। जो शक्ति की उपासना करता है। भक्ति करता है। उसकी पूजा करता है। वही संसार के सभी गुणों का स्वामी है।

आज देश के कोने कोने में विजया की पूजा क्यों होती है ? धुरंधर अनर्थकारी दानवों पर विजय पाने से । अधर्म अत्याचार एवं अनाति को मिटा कर वास्तविक धर्म फैलाने से । इसी भाँति विष्णु की पूजा खर, मुरादि असुरों पर विजय पाने से। त्र्यम्बक की पूजा अंधक त्रिपुरादि दैत्यों के बधने पर, अजय मदन को पराजित कर देने पर, परशुराम की पूजा, पृथ्वी के समस्त अन्यायी महीपों के नाश करने पर, राम की पूजा खर, विराध, कवंध, रावण, कुंभकर्णादि भयंकर राक्षसों के मारने पर, लक्ष्मण की पूजा महावली मेघनाद के वध करने पर । महावी.

हनूमान की पूजा दुर्दंड दानवों के दलन करने पर। योगिराज कृष्ण की पूजा पूतना, बकासुर, अघासुर, कंस, शिशुपालादि अभिमानियों के नष्ट-भ्रष्ट कर देने पर, महाभारत के संग्राम में अमूल्य ज्ञानोपदेश गीता के कथन करने पर। भीष्म की पूजा अखण्ड शक्ति के द्वारा विकट विक्रम प्रकट करने पर। गुरु गोविन्द सिंह की पूजा वीर धर्म प्रसरण एवं अपने आत्मजों के आहुति देने पर। शिवाजी की पूजा देश की रक्षा करने एवं दुराचारी म्लेच्छों के नाश करने पर। महाराणा प्रताप की पूजा म्लेच्छ रुधिर प्यासी वसुंधरा की प्यास बुझाने पर। विक्रमादित्य की पूजा अन्यायी शकों के नाश करने पर। इसी प्रकार भगवान् बुद्ध तथा महावीर की पूजा अहिंसा का राज्य स्थापित करने पर तथा जगद्गुरु स्वामी शंकर की पूजा अद्वैत वैदिक धर्म का प्रचार करने पर हुई।

संसार में शक्ति ही सर्वोपरि वस्तु है। यही समस्त कार्य्यों की उपादेय कर्त्री है। यही सिद्धिदात्री, धात्री एवं भर्त्री है। इससे पृथक् होते ही सशक्त संसार सारहीन निर्जीव हो जायगा।

वाचकों! शक्ति का आदि कारण क्या है। सोचो! अरे सोचो! अब भी चेतो! उठो, ब्रह्मचर्य को धारण करो! सभी शक्तियों का जन्मदाता महात्मा ब्रह्मचर्य ही है। इसी से संसार

टिका है। निर्जीव भारत की संतानों ! शक्तिहीनों ! मुँह मत छिपाओ आओ आगे बढ़ो। समय बहुत हो गया। देर मत करो। शीघ्र इस अमूल्य धन को अपना कर भविष्य संग्राम के लिये शक्तिवान् हो जाओ।

वीर्य ही साहस और शक्ति का भंडार है। यही शत्रुओं को अभिभूत करता है, यही भयंकर से भयंकर शक्ति को रौंदने का साहस रखता है। भारतियों ! लज्जा करो ! इस अपूर्व धन को मत जाने दो, धारण करो और शक्तिवान् हो अपने पूर्वजों के पुनीत कीर्तियों को कलंकित होने से बचाओ ! गौरव की रक्षा करो।

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं है पशु निरा है और मृतक समान है॥

ब्रह्मचर्य और ब्रह्मांड ।

हे निष्पाप ! ब्रह्मचर्य से ही ब्रह्मांड की विद्यमानता है । मूल आधार के नाश होने पर ही वस्तु का विनाश होता है; अन्यथा नहीं ।

—महर्षि वशिष्ठ

ब्रह्मांड ब्रह्मचर्य का रूप है । विश्व का अणु २ इसी के द्वारा स्थित है । इसकी दिव्य विभूतियों का विकास ब्रह्मचर्य के अनन्त गर्भ में व्याप्त है । यही जगत् का कर्ता, धर्ता, भर्त्ता एवं हर्ता है । यही सबकी यथावत रक्षा करता, सर्वत्र आकाश के सदृश व्यापक रहता तथा सबों से श्रेष्ठ है । इसी लिये ब्रह्मर्षियों ने इसे 'ब्रह्म' माना है ।

यही सबका शिक्षक, सबके हृदय का प्रकाशक एवं तीक्ष्ण बुद्धि, प्रतापादि प्रदाता है । इस हेतु योगियों ने इसे ही सर्व-श्रेष्ठ देवता समझा है । इसे ही विद्वानों ने विज्ञानस्वरूप होने से मनु, सबका पालन करने और परम ऐश्वर्य्यवान् एवं बलवान होने से इन्द्र, समस्त चराचर भूतों का एकमात्र जीवन मूल होने से प्राण तथा त्रिलोक में निरन्तर व्यापक होने के कारण सर्वज्ञ कहा है ।

समस्त स्थावर-जंगम चराचर सृष्टि के रचने के कारण

विज्ञानियों ने इसे ब्रह्मा कहा है। सर्व लोका में सर्वत्र व्यापक होने एवं पालन करने के कारण यही विष्णुरूप माना गया है। यही दुष्टों को दण्ड दे देकर रुलाता है, इसी लिये विज्ञ वेदान्तियों ने इसे रुद्र कहकर पुकारा है। यही मंगल-मय सब का कल्याणकर्त्ता, सुख एवं आरोग्य देनेवाला है। इसी हेतु आत्मज्ञानियों ने इसे 'शिव' के नाम से विभूषित किया है।

यही सर्वत्र व्याप्त है, अविनाशी है। स्वयं प्रकाशमान है। यही संग से विमुख होने पर प्रलयकारी काल का भी काल हो जाता है। इसी लिये बुध जनों ने इसे कल्पान्तक कहा है। प्रकृत्यादि दिव्य पदार्थों में इसी का स्वरूप है, यही उत्तम पोषक तथा श्रेष्ठ कर्म करानेवाला है। अतः सिद्धों ने इसे मातरिश्वा कहा है। यह बहुत प्रकार के जगत् को प्रकाशित कर रहा है इसी लिये इसे विराट् कहते हैं। यही महान आत्मबल देनेवाला है। यही ज्ञानस्वरूप, सर्वज्ञ, धारण करने योग्य, जानने योग्य तथा पूजन करने योग्य है। अतः इसे देवोत्तम कहते हैं। यही सूर्य्यादि तैजस पदार्थों का आधार है, इसी के गर्भ में सारी सृष्टियां होती हैं। अतः मुनियों ने ब्रह्मचर्य को ही हिरण्यगर्भ कहा है।

समस्त आकाशादि पंच भूत इसी में प्रवेश कर रहे हैं। इस लिये यही विश्वरूप भी है, यही सब ओर से जगत का प्रकाशक है। अतः ज्ञानियों ने इसे आकाश के समान माना

है। यही चराचर जगत को धारण किये है, इसी के न रहने पर प्रलय हो जाता है। यही सम्पूर्ण बलों का दाता है। इसी हेतु शास्त्रज्ञों ने इसे वायु कहा है। स्वयं प्रकाश रूप होने से तत्वज्ञों ने इसे अग्नि कहा है। यही परमाणुओं का अन्योऽन्य संयोग वा वियोग करता है, इस लिये ब्रह्मचर्य ही जल रूप है, यही विस्तृत जगत का विस्तार करनेवाला होने के कारण पृथ्वी स्वरूप है।

यह स्वयं तेजवान तथा दूसरों को तेज प्रदान करता है, इस लिये ब्रह्मचर्य ही तैजस स्वरूप है। यह सत्य है। इसमें सत्य ज्ञान, सत्य विचार तथा अनन्त ऐश्वर्य्य है। इस लिये यही ईश्वर रूप है। इसका अन्त कभी नहीं होता, यह अविनाशी है, इसी कारण से आचार्य्यों ने इसे आदित्य कहा है। यह आनन्द रूप है, अमृत स्वरूप है, सबों को अमृत देता है अतः सिद्धों ने इसे अमीकर कहा है। ब्रह्मचर्य आप मंगल रूप है, संसार को मंगल देनेवाला है। इस हेतु यही मंगल है, यह स्वयं बोध रूप है तथा संसार के बोध का कारण होने से यही बुध है। यही बड़ों से भी बड़ा, आकाशादि ब्रह्मांडों का पोषक है इस लिये इसे वृहस्पति कहा है। यह अत्यन्त पवित्र है तथा अपने संसर्ग से संसार को पवित्र बना देता है एतदर्थ इसे शुक्राचार्य्यों ने शुक्र कहा है, जो सब में सहज से

प्राप्त तथा धैर्य्यवान है, उस ब्रह्मचर्य को शान्ति प्रिय सज्जनों ने शनि के नाम से विख्यात किया है। यही एकान्त स्वरूप है, यही दुष्टों को छोड़ने और अन्य को छुड़ानेवाला है इस लिये ब्रह्मचर्य ही राहुरूप है। यही सब जगत का निवास स्थान, सब रोगों से रहित तथा मुमुक्षुओं को मुक्ति के समय सब रोगों से छुड़ाता है। इस हेतु इसे केतु रूप कहा है।

यह निर्भ्रान्त है, सम्पूर्ण ज्ञान युक्त है, चराचर जगत के व्यवहार को यथावत धारण कर रहा है। इससे यही प्राज्ञ है। यह सब से श्रेष्ठ है, इस लिये इसे वरुण कहा है। यही श्रेष्ठ न्यायकारी तथा धर्म रक्षक है, इस हेतु इसे धर्मराज के नाम से पुकारते हैं। यथावत न्याय करनेवाले व्यक्तियों में मान्य तथा सत्य नियम कर्त्ता होने के कारण इस ब्रह्मचर्य को अर्यमा कहते हैं। वही समस्त जीवों का एकमात्र आधार आत्म स्वरूप है, इसी लिये आत्मज्ञानियों ने इसे परमात्म स्वरूप माना है। सर्व जगत की उत्पत्ति करने के कारण यही सविता रूप है। यही अपने व्याप्ति से समस्त भूतल को आच्छादित करता है, इस लिये सुहृदों ने कुबेर स्वरूप कहा है। इसी में आकाशादि भूत वसते हैं, अतः यही वसुरूप है, क्योंकि वह सब में वास कर रहा है।

यही सब जगत के पदार्थों को संयुत करता है—इस लिये

देवर्षियों ने इसे यज्ञ कहा है। यही सब जीवों को देने योग्य पदार्थों का दाता और ग्रहण करने योग्यों का ग्राहक है, अतः मर्मज्ञों ने इसे होता कहा है। यह सहोदर के समान सहायक है; अतः इसे वन्धु कहते हैं। यही सब का स्नेही एवं प्रीति करने योग्य है, इस हेतु इसे मित्र कहते हैं। यह सबों का उन्नति चाहनेवाला तथा रक्षक है, अतः पिता स्वरूप है। यही सत्य आचारण का ग्रहण करानेवाला है। अतः इसे आचार्य्य जानो। यही आदि, अनादि, आनन्द, सत्, ज्ञान, अन्तर्यामी तथा स्वयम्भू स्वरूप है। यह अनन्त है। कहां तक वर्णन करें, ब्रह्माण्ड ब्रह्मचर्य स्वरूप है। वेदों का वचन है।

आचार्यस्ततक्ष नभसी उभे इमे उर्वी गंभीरे पृथिवी दिवंच।
ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तस्मिन्देवा संमनसो भवन्ति॥

—अथर्व वेद

अर्थात् ये बड़े गंभीर दोनों लोक पृथ्वी एवं द्युलोक आचार्य्य ने निर्माण किया है। वही अपने तप से दोनों लोकों की रक्षा करता है, इस हेतु उस ब्रह्मचारी के अन्तर्गत सभी देवता अनुकूल मनसे रहते हैं। वेदों ने तो यहां तक कह दिया है कि मनुष्य क्या? ब्रह्माण्ड का एक २ जीव, एक एक अंश ब्रह्मचर्य धारण करता है, बिना ब्रह्मचर्य के कोई सृष्टि ही नहीं हो सकती, ब्रह्मचर्य से शून्य एकमात्र विनाश है।

औपधयो भूत भव्य महोरात्रे वनस्पतिः ।
सम्वत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥
पार्थिवा दिव्या पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये ।
अपक्षा पक्षिणाश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥

अर्थात् औपधियां, जड़ी बूटियां, वनस्पतियां, ऋतुओं के साथ गमन करनेवाला सम्वत्सर, अहोरात्र, भूत और भविष्य ये सब ब्रह्मचारी हो गये हैं, पृथ्वी पर उत्पन्न होनेवाले, पक्ष हीन पशु आदि तथा आकाश में गमन करनेवाले पक्षी आदि सभी ब्रह्मचारी हैं। ब्रह्मचर्य के बिना किसी का निर्वाह होना अत्यन्त कठिन ही नहीं, वरण् पूर्ण असम्भव है। अतः यह निर्विवाद सिद्ध है कि सारा ब्रह्माण्ड ब्रह्मचर्य से ओत प्रोत है।

ब्रह्मचर्य और ब्रह्म।

अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षेत ब्रह्मचर्य्यमेव, तद् ब्रह्मचर्येण ह्येव यो ज्ञाता तं विन्दतेऽथ यदिष्टमित्याचक्षते ब्रह्मचर्य्यमेव तद् ब्रह्मचर्य्येण ह्येवेष्ट वात्मानमनु विन्दते।

— छान्दग्योपनिषद्

ब्रह्मकी चर्या का नाम ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य में सफल हो जाने पर अभ्यासी स्वयं ब्रह्मरूप हो जाता है। उसके स्वासोच्छ्वास

का एक-एक स्वास 'अहं ब्रह्माऽस्मि' कहता हुआ शरीर में प्रविष्ट करता है तथा 'सोऽहं' कहता हुआ शरीर से बाहर होता है। वस्तुतः यह ब्रह्मरूप है। ब्रह्म शक्तिवान है, धीमान है, श्रीमान है, वीर्यवान है, तैजस है, हिरण्यगर्भ है तथा चेतन और अनादि है—ये सभी गुण ब्रह्मचर्य में व्याप्त हैं। जो इसको जानता है, वही वास्तविक में मनुष्य है—

एको वशी सर्व भूतान्तरात्मा, एकं रूपं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतन्नेतरेषाम्॥

—कठोपनिषद्

अर्थात् अद्वितीय, सर्व जगत को अपने आधीन रखनेवाला सम्पूर्ण प्राणीमात्र में स्थित अर्थात् परमात्मा एक शुद्ध चित स्वरूप को, अनेक प्रकार का बनाता है। इस प्रकार जो पुरुष उसको अभ्यास रूप से हृदय में स्थित जानते हैं। उन्हीं पुरुषों को अनन्त सुख मिलता है, औरों को नहीं।

ब्रह्मचर्य ही विश्व का कर्त्ता है, संसार का जाननेवाला है, जीवात्मा के कारण का ज्ञापक, काल का अधिपति तथा गुण संयुक्त है। सृष्टि का सब कुछ ज्ञाता है। प्रकृति तथा चेतन का स्वामी है। गुणों का ईश है। मोक्ष, स्थिति और कैवल्य-इन सबों का एकमात्र कारण है। इसी के द्वारा सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। यही माया के प्रबल बन्धन से पार

करनेवाला एकमात्र साधन है। यही परमानन्द का देनेवाला, अहं ब्रह्मास्मि का ज्ञान करानेवाला विभु का दिव्य बल है। परमात्मा की दिव्य विभूतियों में यही रम रहा है।

इसी के साधन से वाल्मीकि ब्रह्म के समाने हुय, इसी को अपनाने से भृगु ने विष्णु के हृदय में लात मारी, इसी के स्वाध्याय से मार्कण्डेय काल से बच गये। इसी के निरन्तर अभ्यास से त्रिशिरा ने इन्द्र को थर्रा दिया। इसके सन्मुख इन्द्र क्या? ब्रह्मा क्या? विष्णु क्या? शंकर क्या? यम क्या? कुवेर क्या? वरुण क्या? और साक्षात् ब्रह्म क्या? कोई पदार्थ नहीं था।

ब्रह्मा इसी के बल से सृष्टि की उत्पत्ति करता है। विष्णु इसी के बल से लोकों का पालन करता है। शंकर इसी के प्रभाव से संसार का संहार करने में समर्थ होता है। यम इसी की प्रखर बुद्धि से प्रजाओं का न्याय करता है तथा स्वयं ब्रह्म इसी ब्रह्मचर्य के द्वारा समग्र ब्रह्माण्ड में व्याप्त रहता तथा प्रत्येक प्राणी की देह में स्थिर रहता है। इसी के द्वारा उसे अविद्यादि क्लेशदायक कर्म स्पर्श नहीं करते, वासना उसे छू नहीं पाती, जन्म, मरणादि दुःखों को नहीं भोगता, इसी अलभ्य शक्ति के द्वारा विशिष्ट अर्थात् सर्व श्रेष्ठ पुरुष कहलाता है। इस लिये स्वयं ब्रह्मचर्य ब्रह्म का भी ब्रह्म है। इसके बिना ब्रह्म की सत्ता विश्व में स्थापित नहीं रह सकती।

ब्रह्मचर्य निरन्तर सत्य, अव्यय, अखण्ड एवं समस्त सृष्टि का मूलाधार है। इस ब्रह्मरूप देवता के विषय में नेति २ के अतिरिक्त और कुछ नहीं कह सकते। यही अक्षर है, अजर है, अमर है, अभय है और अनन्त रुप है। जिस प्रकार जलती हुई अग्नि से एक समय में एक रूप के सहस्रों स्फुलिङ्ग निकलते हैं, वैसे ही इस विशिष्ट ब्रह्मचर्य से अनेक प्रकार के जीव उत्पन्न होते हैं और अन्त में उसी ब्रह्मचर्य में लीन हो जाते हैं।
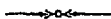
ब्रह्मचर्य और प्रकृति।

मनुष्य ब्रह्मचर्य औषधि पथ्य और सुन्दर नियमों के द्वारा शरीर रूपी प्रकृति की रक्षा करे। जिस प्रकार शरीरों का पृथ्वी आदि घर है, उसी प्रकार शरीर भी जीव का घर है। अतः ब्रह्मचर्य द्वारा प्रकृति की रक्षा करे।

—यजुर्वेद

संसार प्रकृति के द्वारा उत्पन्न हुआ है। प्रकृति ब्रह्म की योग-माया तथा विश्व-उत्पन्न की सामग्री है। प्रकृति अनादि है, इसमें सत्व, रज और तम तीन गुण हैं, संसार इन्हीं गुणों से ओत-प्रोत है। इन्हीं गुणों के द्वारा सृष्टि का कार्य क्रम आरम्भ होता है। बुद्धि से लेकर सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणुओं तक समस्त वस्तुएँ इन्हीं तीनों गुणों से बनी हैं।

निर्मलता, प्रकाश, आरोग्य और सुख–ये सतोगुण के लक्षण हैं। इसी के कारण ज्ञान के साथ जीव का सम्बन्ध होता है। रजोगुण राग, विषय, वासना एवं तृष्णा को उत्पन्न करता है। जिसके द्वारा जीव कर्म बंधन में बँधता है। तमोगुण अज्ञान से उत्पन्न होता है। यही सब जीवों को मोह करानेवाला है, सर्वदा प्रमाद, आलस्य तथा ज्ञान हीन बना कर्म बंधन में बांधता है।

जब देह के सब द्वारों से ज्ञान का आलोक प्रकट होने लगे, तभी सत्त्वगुण का प्रादुर्भाव होता है। जब शरीर में लोभ प्रवृति कर्मों का आरम्भ, अशान्ति और राजसिक इच्छायें उत्पन्न हों, तब रजोगुण की वृद्धि जानो। जब शरीरान्तर्गत अप्रकाश, अप्रवृति, प्रमाद और मोह उत्पन्न हों, तब तमोगुण का विकाश समझना चाहिये। जितनी संसार की वस्तुयें, अथवा मानसिक भाव हैं, उन सब में–ये तीनों गुण अवश्य हैं।

विश्व इन्हीं गुणों का कार्य्य क्षेत्र है। पंचभूतों का विकाश, शरीरस्थ इन्द्रियां, मन बुद्धि, चित और अहंकार इन्हीं गुणों के द्वारा उत्पन्न हुये हैं। प्रकृति गुणमयी है। इसके गुण अनादि है, कल्पारम्भ से लेकर कल्पांत तक विद्यमान रहेंगे।

त्रिगुणी प्रकृति दो प्रकार की है–भगवान कृष्ण का कथन है—

भूमिरापोऽनलो वायुः, खं मनोबुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे, भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥

अपरेयमित स्त्वन्यां, प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीव भूतां महाबाहो, ययेदं धार्यते जगत् ॥
एतद्योनीनि भूतानि, सर्वाणीत्युपधारय ।
अहं कृत्स्नस्य जगतः, प्रभवः प्रलयस्तथा ॥

अर्थात् प्रकृति दो प्रकार की है, परा और अपरा। आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, मन, बुद्धि और अहंकार ये सब अपरा प्रकृति हैं । क्षेत्र और उसके विकार अर्थात् पंच महाभूत, अहंकार, बुद्धि, अव्यक्त, ज्ञानेन्द्रियां, कर्मेन्द्रियां, मन, इन्द्रियार्थ-इच्छा, द्वेष, सुख दुःख, संयोग, ज्ञान और धृति-ये सब अपरा प्रकृति में हैं। परा प्रकृति सब भूतों की योनि है। यही समस्त जीवों की उद्भव कर्तृ है। इसी के द्वारा विश्वका विकाश होता है। हमारे पंच भौतिक शरीर का कारण यही है। समस्त भूतों की एकमात्र योनि यही है। ब्रह्म इसी में ब्रह्मचर्य रूपी गर्भ-बीज प्रदान कर अखिल लोक का विस्तार करता है।

प्रकृति रूपी गर्भाशय में ब्रह्मने ब्रह्मचर्य रूपी वीर्य प्रदान किया, समय पर संसार रूपी बालक उत्पन हुआ। गुण, कर्म विभाग से, वह दो प्रकार का हुआ। अर्थात् संसार में दो प्रकार की गुण-वृत्ति पुरुषों में उदय हुई। एक दैवी प्रकृति दूसरी आसुरी प्रकृति। यथा—

अपैशून्यं दयाऽक्रोधश्चापल्यं धृति रार्जवम् ।
तेजोऽभयमहिंसा च, क्षमा शौच ममानिता ॥

अर्थात् निर्लोभता, दया, अक्रोध, धृति, आर्जव, तेज निर्भयता, अहिंसा, क्षमा, शौच, मानशून्यता-ये लक्षण दैवी प्रकृति के हैं ।

अतिवादोऽभिमानश्च दर्पोऽज्ञानं सकोपता ।
निष्ठुरत्वं मदो मोहोऽहंकारो गर्व एव च ॥
द्वेषो हिंसाऽदया क्रोध औद्धत्यं दुर्विनीतता ।

अर्थात् जल्पना, दर्प, अभिमान, अज्ञान, निष्ठुरता, मद, मोह, अहंकार, गर्व, द्वेष, हिंसा, अदया, क्रोध उद्दंडता, और अविनय ।

आभिचारिक कर्तृत्वं, क्रूर कर्म रतिस्तथा ।
अविश्वासः सतां वाक्येऽशुचित्वं कर्म हीनता ॥

आचार रहित कर्म, क्रूर कर्म में रति, महात्माओं के वाक्यों में अविश्वास, अशोच, कर्म हीनता ।

निन्दकत्वं च वेदानां, भक्ता नाम सुरद्विषाम् ।
मुनि श्रोत्रिय विप्राणां, तथा स्मृति पुराणयोः ॥

वेदों की निन्दा, भक्तों से शत्रुता, अथवा ऋषि, मुनि, विप्र स्मृति, पुराण आदि की निन्दा ।

पाखण्ड वाक्ये विश्वासः, संगतिर्मलिनात्मनाम् ।
सदम्भ कर्म कर्तृत्वं, स्पृहा च परवस्तुषु ॥

पाखण्ड बातों में विश्वास, बुरी संगति में प्रीति, अभिमान से कर्म करना, दूसरों की वस्तु लेने की इच्छा।

अनेक कामनावत्वं सर्वदाऽनृत भाषणम्।
परोत्कर्षा सहिष्णुत्वं परकृत्यं पराहति ॥

अनेक कामनायें करना, सर्वदा असत्य भाषण, दूसरों की उन्नति देखकर जलना दूसरों का कीर्ति को घटाना, इत्यादि आसुरी अर्थात् राक्षसी प्रकृति हैं।

ब्रह्मचर्य को अपनाने के लिये दैवी प्रकृति एवं दैवी संपति का अधिकारी होना चाहिये। इसके बिना प्रकृति क्षेत्र में विजय पाना कठिन ही नहीं पूर्ण असम्भव है। प्रकृति के उपासकों! ब्रह्मचर्य को धारण करो, तभी तुम्हारी प्रकृति निश्चल एवं अनुकूल रह सकेगी अन्यथा विनाश है।

ब्रह्मचर्य और जीवात्मा।

अथ यत्सत्रायणा मित्या चक्षते, ब्रह्मचर्य्यमेव तद् ब्रह्मचर्येण ह्येव सत आत्मनस्त्राणं विन्दतेऽथ यन्मौन मित्या चक्षते ब्रह्मचर्य्यमेव तद् ब्रह्मचर्य्येण ह्येवात्मान मनु विद्य मनुते।

—छान्दग्योपनिष

योग–युक्त वीर्य मय जीव ईश्वर का अंश है। ब्रह्मचर्य ही आत्मा है। इसे हम सब विधि अनादि एवं अनन्त देखते हैं। यही प्रकृति में स्थित हो सम्पूर्ण ज्ञान कर्मेंद्रिय तथा विषाक्त मन का आकर्षण करता है। यही शरीर को हृष्ट–पुष्ट बलिष्ठ बना कर शान्ति मय जीवन् यात्रा सम्पूर्ण करता है। यही निरन्तर शरीर को धारण करता तथा कालानुसार उससे पृथक हो जाया करता है।

ब्रह्मचर्यं परं ज्ञानं, ब्रह्मचर्यं परं बलं।
ब्रह्मचर्य मयोह्यात्मा, ब्रह्मचर्यैव तिष्ठति॥

यही ब्रह्मचर्य सबों के हृदय मन्दिरका प्रकाशक है। यही शरीर रूपी पुष्प की सुगंध है। यही शरीरस्थ भूतों का अग्रज एवं इन्द्रियों का एक छत्र शासक है। यही मन, बुद्धि, चित, अहंकार तथा समस्त इन्द्रियों से परे है। न कभी इसका जन्म हुआ है और न कभी इसका मृत्यु! यही शरीर में रह कर कोमार, यौवन और जरा अवस्थाओं को भोगता है तथा क्षण भंगुर काया के नष्ट हो जाने पर यही दूसरे शरीर में प्रवेश करता है।

ब्रह्मचर्य वास्तव में अविनाशी नित्य तथा अप्रमेय है यह न जन्म लेता है और न मरता है; यह अजन्मा तथा सनातन है। संसार का नाश होने पर भी इसका नाश नहीं होता। न इसे

शस्त्र काट सकते हैं, न अग्नि जला सकती है, न जल भिगो सकता है, और न वायु सुखा सकती है। यह अछेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है। ब्रह्मचर्य सर्व गामी और अबाध्य है। सब के हृदय में स्थित है, ज्ञान ज्ञाता ज्ञेय सब वही है।

यह पूर्व ही कह आये हैं कि आत्मा ब्रह्म का अंश है। संसार में आत्म ज्ञान से बढ़ कर कोई दूसरा पदार्थ नहीं। परम पद की प्राप्ति इसी के द्वारा होती है। इसी को जान कर अव्यय और शाश्वत शान्ति तथा ब्रह्म के निरन्तर अमृत रुपी धर्म और सुख के स्थान को पाते हैं। प्राणी जन्म–मृत्यु–जरा–दुःख-पाप–कर्म–बन्धन और उसके अच्छे–बुरे फलों से इसी के द्वारा छुटकारा पाता है।

सुख साध्य चिन्तन आत्म का,
सनकादि मुनि का इष्ट है।
तजि आत्म जो विषयन भजे,
वह दुष्ट पाता कष्ट है॥

आत्मज्ञानियों की सन्तान! चेतो! इस अमूल्य आत्म धन को अपनाओ। इसका अभ्यास करो, इसे धारण करो। इस आत्मा रुपी ब्रह्मचर्य के न जानने से तुम परमात्म–ज्ञान से वंचित रह जाओगे। जिसने ब्रह्मचर्य को नही जाना, वह संसार को क्या जान सकता है, जिसने ब्रह्मचर्या नहीं की वह मन को

कैसे शोध सकता है। जिसने ब्रह्मचर्य को नही धारा, वह विद्या बुद्धि को कैसे धारण कर सकता है ? जिसने ब्रह्मचर्य को नहीं अपनाया, वह आत्मा को कैसे अपना सकता है।

संसार में कुछ भी नहीं। ऋषियों ने इसे मिथ्या प्रपंच माना है। सारा संसार नाशवान है। प्रकृति परिवर्तनशील है। दिव्य विभूतियां भी कल्पांत मे मग्न होती रहती हैं। यह जन्म-मरण का धाम है, इसके सार में संशय हैं। वास्तव में यह निःसार है। यदि कोई वस्तु है तो वह ब्रह्मचर्य है। इस अनन्त मायारूपी लोक में कोई सहायक है तो ब्रह्मचर्य, इस अनन्त भवनिधि में कोई तरणि है तो एक मात्र ब्रह्मचर्य, उसीके सहारे तुम इस अशांत अगम महासागर को पारकर सकोगे।

ब्रह्मचर्य और त्रिगुण।

सत्त्वंरजस्तमश्चैव, त्रीन्विद्यादात्मनो गुणान्।
यैर्व्याप्येमान्स्थितो भावान्महान्सर्वान शेषतः॥

— महर्षि मनु

अर्थात् सत, रज और तम यह तीनों प्रकृति के गुण, उसके कार्य महत्त्व मन में रहते हैं। यही तीनों गुण सारे संसार में व्याप्त हो रहे हैं।

प्रकृति गुणमयी है, उसके अणु २ में कोई न कोई गुण अवश्य है, उसका एक एक कण गुण से ओत प्रोत है, प्रकृति का एक त्रशरेणु भी गुण विहीन नहीं इसके किसी अंश को हम निरर्थक नहीं पाते, उसके उत्पन्न करने का कुछ न कुछ अर्थ अवश्य है, सर्वत्र देखने पर मुझे प्रकृति में त्रिविध गुण दृष्टि गोचर होते हैं।

मानव शरीर की रचना भी विद्वानों ने त्रिगुण के द्वारा ही माना है, तेज तथा तन्मात्रायें जिनके द्वारा स्थूल विश्व का विकाश हुआ है इन्हीं गुणों के द्वारा उत्पन्न हुये हैं, तमोगुण द्वारा पंचभूत, रजोगुण द्वारा इन्द्रियां तथा सतोगुण के अंश से अंतः करण का प्रादुर्भाव हुआ। त्रिविध सृष्टि के विकाश का एक मात्र श्रेय इन्हीं तीनों गुणों पर निर्भरित है।

प्रकृति भेद के कारण गुण सर्वथा एक से नहीं रहते, उनकी न्यूनाधिकता हुआ करती है। तीनों गुणों में से जो गुण जिस शरीर में अधिक रहता है, वह उसी गुणवाला हो जाता है। यद्यपि उस शरीर में दूसरे गुण भी कुछ न कुछ अंश में विद्यमान रहते हैं तथापि अधिक शक्तिशाली गुण के अनुसार उनकी प्रकृति मुड जाती है, जब रजोगुण और तमोगुण दबे रहते हैं तब सतोगुण प्रधान रहता है। जब सतोगुण और तमोगुण दबे रहते हैं तब रजोगुण प्रधान रहता है तथा सतोगुण

और रजोगुण के न्यून रहने पर शरीर में तमोगुण की प्रधानता रहती है।

सत्व ज्ञानं तमोऽज्ञानं राग द्वेषौ रजः स्मृतम्।
एतद्व्याप्तिमदेतेषां सर्वभूताश्रितं वपुः ॥

सत ज्ञान है, तम अज्ञान है, राग (इच्छित वस्तु की अभिलाषा) द्वेष (अनिच्छित वस्तु से घृणा) यह दोनों रज हैं। इन तीनों के लक्षण मानव धर्मशास्त्र में निम्न प्रकार से वर्णित है।

तत्र यत्प्रीति संयुक्तं किञ्चिदात्मनि लक्षयेत।
प्रशान्त मिव शुद्धाभं सत्त्वं तदुप धारयत् ॥

जब आत्मा में प्रेम के चिन्ह पाये जायं, इच्छा आदि के न होने से शान्ति दृष्टिगोचर हो, चित्त में शुद्धि की भावना हो, उस समय सतोगुण प्रधान समझना चाहिये।

यत्तु दुःख समा युक्तम प्रीति कर मात्मनः।
तद्रजोऽप्रतियं विद्यात्सततं हारि देहिनाम् ॥

जब आत्मा में दुःख एवं विवाद उत्पन्न हो, उस समय रजोगुण बलवान रहता है। यह सब प्राणियों के लिये हानि कारक है अतः विज्ञों को इसका त्याग करना चाहिये।

यत्तु स्यान मोह संयुक्त मव्यक्तं विषयात्मकम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत ॥

जब शरीर में मोह तथा विषय वासना की प्रवृत्ति उदय हो तो तमोगुण की श्रेष्ठता जाने, यह तर्क के योग्य नहीं सर्वथा त्यागनीय है।

वेद पढ़ना, तप, ज्ञान, पवित्रता, इन्द्रिय-निग्रह, धर्म-कर्म तथा आत्मचिंतन सतोगुण का लक्षण है। कार्य्यारम्भ करने की इच्छा, धैर्य्य न होना, असत् कार्य्यों में संलग्नता, परिग्रह करना तथा विषयों का सेवन करना—ये सब रजोगुण के लक्षण हैं। लोभ, स्वप्न, स्थिर चित्र न होना, क्रूरता, नास्तिकता, भविष्यजन्म पर अविश्वास, सदाचार से घृणा, याचना करने का स्वभाव और अहंकार—ये सब तमोगुण के लक्षण हैं।

जिस कार्य के करते समय, करने के पश्चात तथा इच्छा प्रकट करने में लज्जा प्रतीत हो, उसे विज्ञों ने तमोगुण का चिह्न कहा है। जिस कार्य्य के करने से विश्व में यश प्राप्ति की अभिलाषा रहती है, निर्धन होने का किंचित् सोच नहीं रहता, उस कार्य्य में रजोगुण का चिह्न समझो। जिस कर्म के करने में लज्जा नहीं आती, जिससे चित सन्तुष्ट रहता है, आत्मा आनंदित रहती है—उस कर्म को विद्वानों ने सतोगुण का चिह्न माना है।

तमोगुण का लक्षण काम अर्थात् संसारिक वस्तुओं की इच्छा तथा भोग है। रजोगुण का लक्षण अर्थ तथा सतोगुण

का लक्षण धर्म है। इन तीनों में सतोगुण प्रधान है।

संसार त्रिगुणमय है। जितनी संसार की वस्तुएं तथा मानसिक भाव हैं, उनमें तीनों गुण अवश्य मिलेगें। भोजन, यज्ञ, तप, दान, श्रद्धा त्याग, ज्ञान, कर्म, कर्त्ता, बुद्धि, धृति, सुख आदि में तीनों गुण लीन हैं।

ब्रह्मचर्य और गुणों का घनिष्ट सम्बन्ध है। ब्रह्मचर्य के ऊपर ही त्रिगुण अवलम्बित है, ब्रह्मचर्य की पाठशाला में प्रवेश करने के पूर्व त्रिगुणों का ज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक है। ब्रह्मचर्य को धारण करने में सतोगुण की आवश्यकता है। अपने सारे कर्मों को सतोगुण रूप बना देना ही इसका मुख्य उद्देश्य है। सतोगुण रूप हो जाने पर तुम स्वयं ब्रह्मचर्य रूप हो जाओगे।

ब्रह्मचर्य और पंच महाभूत।

संसार पंच भूतों का विकास है। इन्हीं का साधन-साधन है। ब्रह्मचर्य से ही इसके आवरण का नाश होता है।

—महर्षि मार्कण्डेय

इस परिवर्तन-शील विशाल विश्व में चतुर्दिक अपनी चक्षुओं के द्वारा तुम जो कुछ देखते हो सर्वत्र सबों में महाभूतों

की ही तेजोमयी मूर्ति का दर्शन पाते हो विश्व का निर्माण, साकार सृष्टि का आविर्भाव, समस्त जीवधारियों की उत्पत्ति, अखिल लोक पालन एवं समस्त भूमण्डल की परिचर्य्या—इन्हीं पंच अपूर्व शक्तियों के ऊपर निर्भर है। इसके विना किसी जीवधारी एवं सृष्टि के किसी अंश का निर्वाह होना अत्यन्त कठिन ही नहीं, वरन् पूर्ण असंभव है। पंचभूत ही इस महान सृष्टि के संचालन के सर्वोपरि उपादान हैं। इस पंचभौतिक विश्व में इनके विना किसीका अस्तित्त्व ही नहीं रह सकता।

तुम्हारा शरीर क्या है ? शरीरस्थ-अस्थि, मज्जा, मांस, रस रक्त और वीर्य क्या है ? वाग्शक्ति, स्पर्श-ज्ञान, नेत्रों की ज्योति, तथा रस एवं गंधों का अनुभव क्या है ? स्वांस-स्वास में निकलने-वाला प्राण वायु क्या है ? सभी एक स्वर से कहेगें कि पंचतत्त्व पंच महाभूत।

त्रिगुण के तमोगुण अंश से पंच तन्मात्राएं उत्पन्न हुई, शब्दतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, रसतन्मात्रा और गंध-तन्मात्रा—इन्हीं तन्मात्राओं से क्रमशः पंचभूतों का प्रादुर्भाव हुआ।

(१) आकाश में एक गुण शब्द। तुम जो कुछ बोलते या सुनते हो अर्थात् शब्दों का ज्ञान करते हो—वह आकाश का गुण है। शरीर-ब्रह्माण्ड अर्थात् मस्तिष्क इसका निवास-

स्थान है, कर्ण इसका द्वार है। इसके रंग को हम प्रत्यक्ष देखते हैं।

(२) वायु में दो गुण हैं। शब्द और स्पर्श। तुम इसे नहीं देखते, परन्तु इसके स्पर्श होने से इसका बोध करते हो। इसके बहने पर सन्-सन् शब्द भी होता है। यह दश रूप धारण कर तुम्हारे शरीर के भीतर कार्य्य करता है—यही तुम्हारा प्राण है, इसका नासिका द्वार है। महर्षियों ने इसका रंग हरा बतलाया है।

(३) अग्नि में तीन गुण हैं। शब्द स्पर्श और रूप। अग्नि के द्वारा शब्द होता है। तुम इसका स्पर्श भी करते हो। यही प्रथम रूपवाला तत्त्व है। इसके पूर्व किसीका साकार रूप निर्दिष्ट नहीं हुआ है। पित्त में निवास स्थान है नेत्र इसका द्वार है। इसके रंग को संसार अपने नेत्रों से देखता है।

(४) जल में चार गुण हैं। शब्द, स्पर्श, रूप और रस। जल से शब्द की उत्पत्ति होती है, संसार इसका स्पर्श करता है, यह रूपवान है और इसमें रस भी विद्यमान है। वस्ति-आशय में इसका निवास स्थान तथा मूत्रेन्द्रिय इसका द्वार है। रंग व्यापक है।

(५) पृथ्वी में पांच गुण हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध। पृथ्वी से शब्द होता है, इसका तुम स्पर्श करते हो,

इसका स्वरूप भी है, इसके अन्तर्गत रस है जिससे इसे रसा कहते हैं। इसके अन्दर गंध भी विद्यमान है। इसका मलाशय निवासस्थान तथा गुदा द्वार है। विज्ञों ने इसके रंगको पीला वताया है।

पंच भूतों के द्वारा यह दुर्गम सृष्टि साकार रूप धारण कर प्रकट हुई। पंचभूत ही जगत के सर्वस्व हैं इनके जानने पर संसार गम्य हो सकता है। अन्यथा दुःसाध्य। ब्रह्मविद्या के द्वारा प्राणी जव माया के आवरण को हटा देता है तव उसे भूतों का ज्ञान होता है। तत्त्वज्ञ हो जाने पर सभी वातें सरल हो जायगीं। इसकी समस्या हल करने के लिये, ब्रह्मविद्या को अपनाओ।

ब्रह्मविद्या, ब्रह्मचर्य है। वही तन्मात्राओं का तेज तथा सृष्टि का आदिकारण है। गुणों एवं प्रकृति का आधार तथा ब्रह्म का सहायक वही है। पंचभूत तो तुच्छ विषय है, ब्रह्मचर्य गुणों का परिवर्तक तथा उत्पादक है। यह पंचभूतों का श्रेष्ठ अग्रज, प्रपितामह और ब्रह्म का वन्धु है। प्राणी इसीको धारण कर तत्त्व क्या! जीवात्मा पर अधिकार स्थापित करता है।

ब्रह्मचर्य और मन।

ऋषियों!

जिससे एक काल में दो पदार्थों का ग्रहण ज्ञान नहीं होता—उसे मन कहते हैं। यह अत्यंत चंचल अर्थात वायु से भी शीघ्रगामी है—ब्रह्मचर्य—रत अभ्यास तथा वैराग्य रूपी साधना से यह वशीभूत होता है।

—महर्षि आपस्तंव

संसार के विस्तृत क्षेत्र में तुम जिधर दृष्टि डालते हो उधर सर्वत्र एक विलक्षण वस्तु के सर्वव्यापी अस्तित्व को देखते हो। अपने निर्दिष्ट-स्थान में गमन करते हुये, क्षण २ में तुम्हें उसी वस्तुका अद्भुत् चमत्कार दृष्टिगोचर होता है। सर्वत्र उसीकी सत्ता विराजती है। बाहर, भीतर जहां देखो, उसी का साम्राज्य है। जान पड़ता है कि इस अखिल लोक का वही एकमात्र शासक है।

संसार उसी के द्वारा चल रहा है। प्रत्येक प्राणी बिना उसकी आज्ञा के, एक पैर भी आगे नहीं बढ़ा सकता। संसार जो कुछ देखता सुनता, स्वाद लेता तथा स्पर्श करता है—सम्पूर्ण उसी का खेल है। वह वास्तव में अद्वैत है। उसके अतिरिक्त संसार कुछ भी नहीं। ऐसी, विचित्र वस्तु को विज्ञवरों ने मन के नाम से पुकारा है। आत्मज्ञानियों का कथन है कि मानव-

शरीर उसके मन का प्रतिबिंब और यह ब्रह्मांड केवल उसकी अन्तरात्मा का संकल्पमात्र है। यह मन समस्त [१]गुणों को ग्रहण करनेवाला सम्पूर्ण जगत् में सारभूत पदार्थ (द्रव्य रूप) है।

इस अनन्त-सृष्टि-विकास में मन ही प्रधान रचना शक्ति तथा महान उपादेय वस्तु है। सृष्टि की रक्षा, पालन पोषणादि का मन ही सर्वोत्कृष्ट साधक है। यही सुख और आरोग्यता का पथ प्रदर्शक है। यही अर्थ, धर्म एवं सत्कर्म के मार्ग का दिग्दर्शक है। यही आयुर्वेदज्ञ (शरीरज्ञ) विज्ञान एवं ज्ञान-विशेषज्ञ तथा समस्त कौशलभिज्ञ है। यही बंध और मोक्ष, सुख और दुःख, सबलता तथा निर्बलता पुष्टता तथा कृशता और जन्म तथा मृत्यु का कारण है।

यही स्वयं त्रिदेवा अर्थात् स्रष्टा, उपेन्द्र और उग्र के स्वरूप में शरीर के अन्तर्गत विचित्र क्रीड़ा कर रहा है। यही सृष्टि का मूल, मध्य तथा अंत है। यही आदि तथा अनादि है। यही विश्व का रचयिता, पालक तथा संहारक है। संसार वास्तव

---

१ रुप, रस, गंध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्त्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न गुरुत्व, द्रवत्व स्नेह, संस्कार, धर्म, अधर्म और शब्द। यही चौबीस गुण कहलाते हैं। मन इन्हीं को धारण करता है।

में मन का क्रीड़ोद्यान है। ऋषियों का वचन है कि संसार मन की प्रेरणा है। विश्व की मायाविनी लीलाओं का जन्मदाता यही है। इसीके उदय से सृष्टि का विकास है। समस्त कारणों के परमाणु इसी से उत्पन्न होते रहते हैं।

परन्तु मन विलक्षण है। चंचल है। अशांत है। अस्थिर है। कभी स्थिर ही नहीं रहता, सुषुप्तावस्था तथा निद्रित दशा में भी अपनी चंचलता नहीं त्यागता। इसी को स्थिर करना योग है। इसी का ज्ञान अध्यात्म तथा अन्तर्ज्ञान है। इसी को जानना शरीरज्ञान है। इसी को साधने से सारी क्रियायें सफल हो सकती हैं।

मन ही सर्वस्व है ऋषियों ने इसे ही पाप-पुण्य [१]बन्धन मोक्ष तथा स्वर्ग नर्क का कारण माना है। अन्तःकरण का सेनानायक यही है। इन्द्रियों का प्रेरक, बुद्धि का भेदक तथा अहंकार का उत्तेजक भी यही है।

अशांत मन भयानक सत्यानाश करता है, यह किसी ओर का नहीं रहने देता, शरीरस्थ इन्द्रियों को अपनी प्रेरणा से उद्दण्ड बना देता है, अन्तःकरण कलुषित कर देता है। कुटिल मन ही सम्पूर्ण अघों कारण है। इसीके संयोग से निर्बुद्धि मानव, भयानक षड्यंत्र में पड़कर दुःख भोगता है और इसीके

१ मन एव मनुष्याणां, कारणं बंधमोक्षयोः।

सुधर जाने पर, शांत हो जाने पर, अनुकूल रहने पर यह नाशवान शरीर अमरत्व प्राप्त कर लेता है।

अनुसंधान करने से विदित होता है कि नाना प्रकार के दुर्व्यसन, दुराचार, कुविचार, अत्याचार तथा व्यभिचार इसी के द्वारा उदय होते हैं। तुम्हें भ्रष्ट करा देनेवाला यही है, तुम्हारे अस्तित्व का लोप करनेवाला, तुम्हें पद-पद पर भ्रमानेवाला, बार बार रुलानेवाला, कामी विषयासक्त तथा ज्ञानान्ध बनानेवाला एवं निन्द्य दुर्गुणों का क्रीतदास बनानेवाला—यही कुटिल मन है। इसके सुधरने पर ही तुम वास्तविक मनुष्य बन सकते हो। तुम्हारे अवगुणों का नाश हो सकता है, तुम्हारी चंचल वृत्तियां एवं इन्द्रियां शान्ति धारण कर सकती हैं; बुद्धि स्थिर हो सकती है, ध्यान प्राप्त हो सकता है, वास्तविक शांति मिल सकती है तथा तुम सत्य २ सुख का अनुभव कर सकते हो।

परन्तु कैसे हो? यद्यपि ऋषियों का वचन है कि आनन्दित (प्रसन्न) मन होने से दुःखों का नाश हो जाता है। वह मन की प्रसन्नता कहां से प्राप्त हो, कोई साधन है? योग है!

---

(१) तस्माद्यस्य महाबाहो, निगृहीतानि सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

(२) विषवद् भाषते पूर्वं, दुःखस्यान्तकरं च यत्।
दृश्यमानं तथाऽऽवृत्त्या, यदन्तेऽमृतवद्भवेत्॥

क्रिया है ? जिसे धारण कर मन को अनुकूल बना सकते हों।

वह साधन ब्रह्मचर्य है। कुटिल मन का सुधारक तथा उद्धारक एकमात्र यही है। यही उसकी चंचलता को मिटाता है। इसी की प्रेरणा से उसमें दैवी गुणों का समावेश होता है। निर्बलता, भीरुता, अधीरता, अल्पज्ञता आदि त्रुटियों को यही दूर करता है।

ब्रह्मचर्य को धारण कर मन सुखी होता है। इसी के प्रसाद से भोगी मन योगी बन जाता है। इसी की दया से नारकी-यतन दैवत्त्व प्राप्त करता है। इसी से स्नेहधार में स्नान करने पर लौहमन कांचन रूप हो जाता है। ब्रह्मचर्य की ज्ञानाग्नि में ही दुर्वासनारूपी तृणों को भस्म कर मन संस्कारयुत शुद्ध हो जाता है। आत्म-ज्ञानियों की संतान! आगे बढ़ो! ब्रह्मचर्य को अपनाओ, मन को वशीभूत कर जीवन संग्राम में विजय प्राप्त करो!

ब्रह्मचर्य और बुद्धि।

हे पार्थ!

बुद्धि ही विवेक का द्वार है—तुम ब्रह्मचर्य धारण करो—इसी के बल से तुम्हें विजय की शक्ति मिलेगी।

—देवेन्द्र

मानवी अन्तःकरण संस्कारशील है। इसके चित्त रूपी भूमि में मन की प्रेरणा से जो भाव जागृत होते हैं, उनकी सत्यासत्य नि गायिका, कर्मिष्ठा एवं पथ प्रदर्शिका बुद्धि है। इसी की शक्ति से संसार के बड़े २ कार्य्य हो रहे हैं। यही विज्ञान के अविष्कार का सहायक, ज्ञान का आधार तथा विवेक का द्वार है। बुद्धि-विहीन शरीर अयोग्य, अशक्त व्यर्थ, तथा एकमात्र भूभार ह।

बुद्धि ही तुम्हें संसार में प्रत्येक कार्य्य के योग्य बनाती है, इसके प्राप्त होने पर तुम सांसारिक-जटिल समस्याओं को सुलझा सकते हो। इसी की कृपा से वैज्ञानिक, आविष्कार-क्षेत्र में आगे बढ़ते हैं। इसी को धारण कर योगी आकाशचक्र को खोजते हैं। इसी के अनुग्रह से प्रेमी ईश्वर को ढूंढते हैं। संसार इसी की प्रेरणा से उन्नति के पथ पर आगे बढ़ता है। संसार बुद्धि का खेल है। आवरण सत्य का पर्दा है। ज्ञान आलोक है। अभ्यास और वैराग्य उसके दोनों नेत्र हैं। यह सजीव देहधारी प्रतिष्ठितों का अधिष्ठाता अन्तःकरण का दर्शनीय देवता है। बुद्धि की महत्ता सर्वमान्य है। बुद्धि से ही संसार चल रहा है। लौकिक, पारलौकिक, योग, भोग, स्वार्थ, त्याग, क्लिष्ट, अक्लिष्ट, परा, अपरा, दैवी, आसुरी तथा प्रवृत्ति–निवृत्ति सबों में इसका चक्र चल रहा है। इससे शून्य विश्वका कोई अंश नहीं। संसार का राज्य बुद्धिमानों का है। विश्व के अपार वैभव का

एकछत्र कोषाध्यक्ष बुद्धि का स्वामी ही है। सम्पूर्ण सुखों का भोक्ता बुद्धि का अधिपति है।

काल, स्मृति, नियम तथा लोक साधनों के परिवर्तन करने का अधिकारी बुद्धि का साम्राट् है तथा संसार का सम्पूर्ण बल, ऐश्वर्य्य उसी के चरणों में लोटते हैं, जो बुद्धि का भांडार है।

बुद्धि तीन प्रकार की है। सात्विक, राजस और तामस। सात्विक बुद्धि श्रेष्ठ तथा उपयोगी है। इसी को धारण कर तुम ब्रह्मचर्य का अनुकरण कर सकते हो। राजस और तामस बुद्धि तुम्हें ब्रह्मचर्य के पवित्र क्षेत्र में प्रविष्ट होने नहीं देगीं, अतः सात्विक बुद्धि धारण करना श्रेष्ठ है। इसी के धारण करने पर बुद्धि स्थिर हो जायगी और तुम जीवन-संग्राम में विजय पावोगे! स्थिर बुद्धि के बिना मन का अवरोध होना अत्यंत कठिन है। शास्त्रों में सर्वत्र स्थिर बुद्धि की प्रशंसा की गई है।

ब्रह्मचर्य-साधन के लिये व्यवसाय-बुद्धि को स्थिर रखना आवश्यक है, क्योंकि बुद्धि स्थिर न रहने पर, वासनायें नहीं हटाई जा सकतीं! वासनाओं से मनुष्य भोगों का कांक्षी होता है। यही कारण है कि व्यवसायात्मिका बुद्धि ब्रह्मचर्य-समाधि में लीन नहीं होने देती। एतदर्थ आसक्ति से रहित हो, कर्म-अकर्म सफलता और विफलता, भ्रांति और अभ्रांति से परे होकर, साम्य बुद्धि की शरण में जाना ठीक है। जो साम्य बुद्धि का पुजारी है—निस्सन्देह, वह संसार में पाप और पुण्य से पृथक् है।

वासनाओं से रहित है। उसका ब्रह्मचर्य, निर्विघ्न अखण्डित रहेगा।

> कर्मजं बुद्धियुक्ता हि, फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
> जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः, पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥

सम बुद्धिवाले ज्ञानी पुरुष कर्मफल का त्याग कर जन्म-मरण के झगड़े से छूट जाते हैं। वे उस परम पद को प्राप्त करते हैं, जहां दुःखका नाम तक नहीं।

दुःख में जिसका मन उद्विग्न नहीं होता, सुख में जिसकी *स्पृहा नहीं होती, जो प्रेममय और अक्रोध से परे हो गया है,* संसार में जिसे किसी वस्तु से आसक्ति-भाव उदय नहीं होता, जो शुभ वस्तु की प्राप्ति में प्रसन्न तथा अशुभ वस्तु के प्राप्त होने में अप्रसन्न नहीं होता, उसी की बुद्धि स्थिर कहलाती है। कछुये के समान जो महापुरुष सब विषयों से अपनी इन्द्रियों को खैंच लेता है—वही नरोत्तम स्थिर बुद्धि-धारी है। उसी का प्रयास सफल है तथा वही सम्पूर्ण ऋद्धि तथा सिद्धि का अधिकारी है।

स्थिर बुद्धि—प्राप्ति के लिये ब्रह्मचर्य की शरण में चलो! वहीं तुम्हारा निस्तार होगा। अन्यत्र इस मायावी लोक में तुम पिस जाओगे।

ब्रह्मचर्य और चित्त।

ब्रह्मचर्य ही चित की स्थिरता का कारण है। जिसका वीर्य चलायमान है, निस्सन्देह उसका चित्त भी चंचल रहेगा।

—महर्षि पातञ्जलि

'चित्त' वह विस्तृत क्षेत्र है, जिसमें समय-समय पर वृत्तिरूपी बीज उदय होते रहते हैं। अनन्त सांसारिक एवं पारलौकिक भावों का उद्भव-स्थान तथा अगम गर्भस्थल यही है। इसी में मन और बुद्धि की प्रेरणा से क्षण-क्षण में एक न एक भाव उठते और कुछ काल उपरान्त पुनः इसी में विलीन हो जाया करते हैं।

१ चित्त-वृत्तियों से संसार-चक्र चल रहा है। सुख और

१—वृत्तियां पांच प्रकार की हैं।

प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति।

(१) प्रत्यक्ष, ज्ञान ज्योति द्वारा अनुमान तथा वेदादि सत् शास्त्र एवं ऋषि-मुनियों के महावाक्य प्रमाण हैं।

(२) भ्रान्ति-मूलक भाव विपर्यय कहलाते हैं।

(३) काल्पनिक विचार विकल्प के नाम से प्रसिद्ध हैं।

(४) तमोगुण की अधिकता होने पर जो भाव उदय होते हैं। उन्हें ज्ञानियों ने निद्रा के नाम से पुकारा है।

(५) जिसे पहले देखा है, उसकी पुनः स्मृति करना स्मृति-वृत्ति है।

दुःख का येही कारण हैं। राग और मोह इन्हीं से उदय होते हैं। तृष्णा तथा वासनाएँ इन्हीं के गह्वर-गर्भ से प्रकट होती रहती हैं। जन्म और मरण का येही हेतु हैं। येही तुम्हें कर्मों में आसक्त करा बन्धन की प्रबल यंत्रणा में डालतीं हैं। येही भयंकर कर्मों के द्वारा जीवन को अशान्त, क्लिष्ट तथा निःसार बना सार्थक शरीर को निरर्थक कर देतीं हैं।

चित्त को शुद्ध और पवित्र करना ही [१]योग है। कर्म-योग का यही साधन है। भक्तियोग का यही रहस्य है और ज्ञानयोग का यही लक्ष्य है। लययोग, हठयोग तथा राज-योग का यही सिद्धान्त है। चित्त के पवित्र होने पर ही तुम संसार में उत्तीर्ण हो सकते हो। इसीके द्वारा मानव-जीवन सार्थक हो सकता है। इसीको पाकर तुम उस अलभ्य पदार्थ के पास पहुँच सकते हो, जिसके लिये तुमने यह नर-तन पाया है।

चित्त की वृत्तियां विषय के भावों को उदय करती हैं। मन उसके पीछे दौड़ता फिरता है, बुद्धि हरण हो जाती है, अहंकार ज्ञान के दीपक को बुझा देता है। वास्तविक स्वरूप का विवेक दूर हो जाता है। इस प्रकार ज्ञानवान प्राणी भी भ्रष्ट होकर नष्ट हो जाता है।

१—योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। —महर्षि पातंजलि

चित्त को स्थिर-भावोत्पादक तथा पवित्र बनाने का सब से श्रेष्ठ साधन ब्रह्मचर्य है। इसी को धारण कर पुरुष कामनाओं को त्यागते हैं। इसी की दया से निस्पृह होकर सत्याचरण धारण करते हैं। वे इसी को जानकर समता और अहंकार से परे होते हैं, इसी की कृपा से वृत्तियों का निग्रह तथा साधक शांति पाता है। इस भांति शांति मिल जाने पर चित्त सर्वदा शुद्ध और पवित्र हो जाता है।

ब्रह्मचर्य और अहंकार।

अहंकार सब सिद्धियों का नाश करने वाला है। अतः हे महाबाहो! यह त्यागने योग्य है।

—योगीराज कृष्ण

अहंकार वह सप्तार्चि-शिखा है, जिसे धारण करने पर प्राणी भस्मीभूत हो जाता है। उसके समस्त बल, वैभव तथा सद्‌गुणों का व्यापार बन्द हो जाता है। ऋषियों ने अहंकार को ही पतन का महामंत्र माना है। जिसने एकबार इसे धारण किया, समझ लो, उसका सर्वनाश हुये बिना नहीं रहेगा। उसका उत्कर्ष रुक गया। अब और आगे क्या बढ़ेगा। सत्यानाश की अग्नि धांय-धांय करती हुयी सामने ही प्रज्वलित हो रही है।

देवताओं को इसीके द्वारा दण्ड उठाना पड़ा। इसीके प्रेम से दानवों को पद-दलित होना पड़ा, इसीके उदय होने से कौरवों को रोना पड़ा, इसीके संसर्ग से राक्षसों को प्राण से हाथ धोना पड़ा। हा! इसी अभिमान के चक्र में पड़कर आर्य्य जाति को अविद्या के अन्धकार में सोना पड़ा।

अहमत्त्व ही दासत्व है। इसी को ज्ञानियों ने शूद्रत्व कहा है। अहंकार तमोगुण का अंश है। अज्ञान इसका स्वरूप है। वासना इसकी देह है, राग और मोह दोनों भुजा हैं। काम क्रोध मद लोभ ही इसका अंतःकरण है। नास्तिक इसका भाव है। अहं इसका कर्म है। आलस्य और प्रमाद इसके दोनों पग हैं। जीव ही इसका आहार है। अधर्म और असत्य ही इसके दोनों नेत्र हैं। यह प्रत्यक्ष विराट वेशधारी काल का भी काल है। संसार इसके अहंचक्र में प्रविष्ट हो रहा है। स्वरक्षित नहीं निकलता, जो जाता है उसका सत्यानाश हो जाता है।

विवेक शून्य हृदय ही इसका उद्भव स्थान है। अशान्त अन्तः करण में इसका वास है। चंचल-वृत्तियों के साथ इसका निवास है। क्षुद्र, उद्दण्ड, कामी तथा क्रोधी मनुष्यों का यह सहचर है, प्रायः देखा गया है कि पापियों के हृदय में वीर्य हीनों के शरीर में रोगियों की देह में तथा शक्ति हीनों के

विचार में यह शीघ्र प्रकट हो जाता है। और अपने प्रचण्ड ज्वाला-जाल में उन्हें भस्म किये विना नहीं मानता। यह दुर्द्धर शत्रु सम्पूर्ण अघों का कारण है।

अहंकार के साधन के लिये, वीर्यवान्, धीर, गंभीर, शांतिप्रिय तथा नम्र बनने की आवश्यकता है। मन और इन्द्रियों को वशीभूत रखगा योग्य है। चित्त को शुद्ध और पवित्र रखना अनिवार्य्य है। अन्यथा सफल्ता दूर है। इसकी सिद्धि का महामंत्र ब्रह्मचर्य के अध्ययन में आगे स्वयं ही मिलेगा।

अहंकार हीन विद्या-विशारद तत्त्वज्ञों की संतान! क्या तुम नहीं जानते? अहंकार पर कैसे विजय हो? आओ! एक बार ऋषियों के जीवन का अध्ययन करो। फिर ब्रह्मचर्य के पुजारी बन भक्तिपूर्वक उसकी पूजाकर उस सिद्धि को प्राप्त करो, जिससे तुम अहंकार पर विजय प्राप्त कर संसार को सुखी बना दो।

ब्रह्मचर्य और इन्द्रियाँ

हे ऋषियों! विवेकी पुरुषों के, इन्द्रियों के दमन की चेष्टा करते रहने पर भी ये मोह में डालने वाली इन्द्रियाँ उनके मन को अपनी ओर खींच लेती हैं। अतः सावधानी से ब्रह्मचर्य के द्वा इनका साधन करो!

—महर्षि संवर्त्त

इन्द्रियों का दुरुपयोग ही नाश का कारण है। संसार में इन्द्रिय सदुपयोग ही सबसे अधिक विचारणीय विषय है। प्रत्येक जीवधारी हर समय इन्द्रियों के द्वारा कुछ-न-कुछ कार्य किया ही करता है; परन्तु उनको सर्वदा अनुकूल रखना, सत्पथ में चलाना तथा वशीभूत रखना ही मानव-जीवन का सर्वोच्च ध्येय है। इसीके साधन से लौकिक और पारलौकिक—दोनों सिद्धियाँ मिल सकती हैं।

ज्ञानेन्द्रियों की त्रिपुटी

इन्द्रिय (अध्यात्म)	देवता (अधिदेव)	विषय (अधिभूत)
श्रोत्र	दिक्	शब्द
त्वक्	वायु	स्पर्श
चक्षु	सूर्य	रूप
जिह्वा	वरुण	रस
घ्राण	अश्वनीकुमार	गंध

कर्मेन्द्रियों की त्रिपुटी

वाक्	अग्नि	वचन
हस्त	इन्द्र	लेना-देना
पाद	वामन	गमन
उपस्थ	प्रजापति	रति-भोग
गुदा	यम	मलत्याग

रजोगुण के अंश से मनुष्य के शरीर में दश इन्द्रियाँ हैं, पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ और पाँच कर्म इन्द्रियाँ। इन्हीं के द्वारा संसार चल रहा है। विश्व के सम्पूर्ण काम, योग तथा ज्ञानध्यान इसी पर अवलंबित हैं। ये ही गुणों को ग्रहण करतीं तथा ज्ञान को ढंककर जीव को मोह में डालती हैं। ये ही विषयों की ओर आकर्षित होतीं और शरीर को दुःखों में डालती हैं। इन्हीं के साधन से स्वर्ग तथा इन्हींको स्वतंत्र छोड़ने पर महा रौरवादि से भयंकर दुःखों का सामना करना पड़ता है।

शरीर एक रथ है। आत्मा उसका रथी, मन लगाम, बुद्धि सारथी और इन्द्रियाँ घोड़े हैं। इन्द्रियों के अनुकूल रहने पर ही शरीररूपी रथ सुरक्षित रह सकता है, उसके लिये दृढ़ लगाम और स्थिर बुद्धिमान सारथी की आवश्यकता है, अन्यथा बलवान इन्द्रियाँ कुमार्गों में दौड़कर कायारूपी रथ को अकाल में ही काल कवलित करा देंगी। अतः सबसे प्रथम इन्हें वशीभूत करना आवश्यक है। यद्यपि स्वतंत्र इन्द्रियों का अपने-अपने विषयों की ओर आकृष्ट होना स्वाभाविक है। तथापि साधना के द्वारा सब कुछ सरल हो जाता है।

ब्रह्मचर्य ब्रत के लिये सबसे प्रथम साधन इन्द्रियों का संयम है, मानव-जीवन का उद्देश्य जन्म लेकर मर जाना नहीं है, यद्यपि यहमिट्टी है और मिट्टी में ही मिल जायगा, परन्तु

इसके भीतर गूढ़ भाव भरा है। जीवन का मूल उद्देश्य संसार पर विजय प्राप्त करना है, परन्तु यह कब हो सकता है? चेतना से काम लेने पर, इन्द्रियों को वश करने पर और उन्हें सन्मार्ग में चलाने पर। अन्यथा लोलुप इन्द्रियाँ तुम्हारी अपूर्व शक्ति को विषयाग्नि में आहुति दे देंगी।

इन्द्रिय-विजय से बढ़कर संसार में कोई विजय नहीं! महात्मा रावण रणस्थल में मृत्यु शैय्या-पर पड़ा हुआ लक्ष्मण से कहता है—हे राघवानुज! संसार में इन्द्रिया ही प्रधान हैं संसार के जीतने से बढ़कर इन्द्रियों को जीत लेना है। देखो! मैं इन्द्रियों के मारे मारा जा रहा हूँ मेरा इतना बड़ा प्रताप, वैभव, पराक्रम तथा विश्व विजयी बल इन्हीं के स्वतंत्र होने से नष्ट हो गये।

इन्द्रिय निग्रह ही ब्रह्मचर्य का सच्चा धर्म है। यही दम है, द्विविधि इन्द्रियों का शमन, इसी के द्वारा होता है, यह वही अवस्था है, जिसमें उद्दण्ड-इन्द्रियाँ सुधारी जाती हैं। यही व्रत है, जिसके द्वारा यावत् जीवन इन्द्रिय दोष प्रकट नहीं होता, यही उनका जन्मदाता, तथा त्राता है। यही उनका 'होता, तथा 'धाता, है अस्तु यत्नपूर्वक इस अमूल्य व्रत को धारण कर इन्द्रियों को सन्मार्ग में चलाओ।

ब्रह्मचर्य और ब्राह्म-भाव

जो मनुष्य बाल्यावस्था से ब्रह्मचारी रहकर तपस्या करता है, उसको इसी जन्म में ब्रह्मज्ञान हो जाता है।

—प्रश्नोपनिषद्

ब्रह्मचर्य, विवेक-विकासक तथा विचित्र प्रभावोत्पादक है। वैदिक काल में आर्य-महर्षियों ने इसका प्रचार किया था। ब्रह्मचर्य प्रथा कई युग तक यहाँ प्रचलित रही। वैदिक काल से पौराणिक काल तक इसकी मर्य्यादा स्थित रही।

अत्यन्त उग्र ब्रह्मचर्य के साधन करने पर ब्राह्म-भाव का उदय होता है। राग, मोहादि, द्वेष-दुर्गुणादि तथा धन-धान्यादि अनर्थकारी अवगुण दूर हो जाते हैं। प्रेम, शील, श्रद्धा, भक्ति, नम्रता, दया, क्षमा, उपकार तथा विश्व-बंधुत्व का भाव उदय हो जाता है। संसार अपने स्वरूप कासा प्रतीत होने लगता है। इस भाँति अभिन्नता के दूर हो जाने पर, अन्तःकरण विशुद्ध हो जाता है।

वर्णाश्रम का ज्ञान, नीच-ऊँच का विचार, मानापमान, प्रशंसा-निन्दा, सुख-दुख हानि-लाभ तथा जीवन-मरण का भेद प्रकट हो जाता है। वह एक ब्रह्म रस में डूब जाता है। अपने को कर्त्ता और भोक्ता नहीं समझता। संसार में सर्वत्र अपनी ही झलक उसे दिखलाई पड़ती है।

मैं ही कहीं पर सूर्य हूँ मैं ही कहीं अणुरूप हूँ।
सागर बनूँ मैं ही कहीं कहिं मैं ही बिन्दुस्वरूप हूँ॥
हूँ चर कहीं, कहिं हूँ अचर कहिं ज्ञान कहिं अज्ञान मैं।
संसार दृष्टी से छुपा आता नहीं हूँ ध्यान में॥

सर्वत्र उसकी ब्रह्मदृष्टि हो जाती है। संसार को ब्रह्ममय देखता है। आत्म-स्वरूप जानने लगता है। अपने को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी तथा परिव्राट् नहीं कहता। उसका हृदय विशाल हो जाता है। उसके अंतः-करण में ब्रह्म-शक्ति का समावेश हो जाता है। वह देखता है कि संसार मेरा अंश है। हमीं संसार हैं तथा मुझमें ही संसार प्रविष्ठ है।

हैं भूत पाँचों देह में जग भूत का ही सार है।
वह ब्रह्म अणु २ में बसा तो ब्रह्ममय संसार है॥

इस प्रकार अभ्यास में रत रहने पर, नैष्ठिक ब्रह्मचर्य धारण करने पर, वीर्य को ऊर्द्धगामी बनाने पर विषय-वासनाओं से रहित होने पर, तीव्र वैराग्य के मार्ग का पथिक बनने पर और अविराम त्याग के संग्राम में आगे बढ़ने पर पुरुष ब्रह्म-ज्ञान का अधिकारी होता है उस समय उसके मुँह से 'अहं ब्रह्मास्मि, के अतिरिक्त कुछ नहीं प्रकट होता।

त्यागे विहित सूत्रादि सब नहिं सृष्टि रक्खे दृष्टि में।
भीगा करे निज रूप की आनन्दरूपी वृष्टि में॥

वासनायें दूर हो जाती हैं, आवरण हट जाता है और साधक अजातशत्रु हो जाता है। सिद्धि मिल जाती है और शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं। संसार में उसे जानने को कुछ शेष नहीं रहता। वह अखिल विश्व को सन्देश देता है।

मित्रो ! कभी मत पूछना, मैं जीव हूँ या ईश हूँ।
मैं बन्ध, मैं ही मोक्ष हूँ, मैं जीव मैं विश्वेश हूँ॥
मैं बन्ध मैं बधता नहीं, नहिं मोक्ष पाकर मुक्त हूँ।
मेरे किये हों कर्म सब, नहिं कर्म से संयुक्त हूँ॥

दैवी सृष्टि और ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य ही देवत्व का साधन है। इसका साधन करने वाला अर्थात् 'ब्रह्मचारी' मोक्ष का अधिकारी होता है।

—महर्षि सनत्सुजान

सृष्टि-विकास के पूर्व संसार प्रलय रूप में था। विश्व उत्पन्न करने की प्रचुर सामग्रियाँ अद्वैत ब्रह्मचर्यरूप ब्रह्म में विलीन थीं। आधार-ग्रह पृथ्वी तथा महत्तत्त्वादि का दर्श और रवि, शशि, बुध तथा इन्द्रादि का उत्कर्ष नहीं था। सर्वत्र घोर तमाब्धि था। कल्पारंभ में ब्रह्म की विशिष्ट शक्ति से सृष्टि की उत्पत्ति हुई।

सबसे प्रथम उस ब्रह्म ने दैवी सृष्टि के उद्भवकर्त्ता प्रजापतियों को उत्पन्न किया। पश्चात् इन प्रजापतियों ने सात बड़े तेजस्वी मनु तथा देवताओं, देवताओं के स्थान और महाप्रतापी बड़े २ ऋषियों को उत्पन्न किया। इन्हीं से दैवी सृष्टि की वृद्धि हुई।

दैवी सृष्टि सतोगुणी है। देवताओं का सात्त्विक गुण प्रधान है। उनके आचार-विचार, रहन-सहन, आहार-विहार सभी उसी प्रकार के हैं। वे सतोगुण साम्राज्य की प्रजा हैं। उनकी वृत्तियाँ, मन, बुद्धि और चित् सभी उसे धारण कर रहे हैं। यही कारण है कि देवगण ही सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं।

इस अनन्त तेजोमय दैवी सृष्टि का कारण ब्रह्मचर्य है। प्रतापी प्रजापतियों ने इसे धारण किया। सहस्रों वर्ष तक इसी को पाने के लिये कठिन तपस्या की। इसी की शक्ति को पाकर सृष्टि रचने में समर्थ हुये। इसीके तज से प्रकृति के परमाणुओं को व्यक्त करने में सफल हुये। इसीको अपना कर, इसीके नियमों पर चलकर, इसीकी शरण में जाकर, इसीकी सेवा के द्वारा देवों ने अपनी तपश्चर्या पूर्णकर अद्वैत स्थान प्राप्त किया।

दैवी सृष्टि का कारण, उत्पत्ति, विकास उन्नत अभ्युदय तथा विजय का एकमात्र कारण क्या है? उनके दैवत्त्व, प्रभुत्व

तथा अपार महत्त्व का क्या हेतु है ? ब्रह्मा की तपस्या का कारण, विष्णु के स्वाध्याय का ध्येय तथा शंकर की साधना का लक्ष्य क्या था ? इन्द्र, यम, वरुण, कुवेर, षडाननादि अमरों की तपश्चर्य्या का क्या उद्देश्य था ?

मर्मज्ञों ! विचार करो, दैवी सृष्टि के अभ्युदय पर एक वार विचारो ! उनकी सर्वज्ञता पर दृष्टि डालो ! उनके अतुल वैभव तथा ऐश्वर्य्य पर ध्यान दो। तुम्हें महामंत्र का उपदेश मिलेगा। तुम्हारे हृदय में ब्रह्मचर्य का भाव उदय होगा। तुम्हारी जड़ता दूर हो जायगी। क्षणमात्र के लिये देवत्व का पुनीत भाव तुम्हारे अन्तःकरण म प्रविष्ट हो जायगा।

ब्रह्मचर्य ने ही देवताओं को अमर बनाया। उन्हें अजरामर किया, परन्तु अपने से विमुख होते देख विनाश भी कर डाला। जब तक ये ब्रह्मचर्य की उपासना करते रहे, तव तक सार्वभौम शासक तथा सर्वप्रिय रहे। ब्रह्मचर्य के त्यागने पर दानवों के विषैले बाणों के लक्ष्य बने, पददलित हुये और महारौरव से भी कठिन यंत्रणाओं को भोगे !

ब्रह्मचर्य-भ्रष्ट होने पर उनकी किसी ने रक्षा नहीं की। इतना बड़ा देवेन्द्र शत्रुओं के सामने से भाग खड़ा हुआ। ब्रह्मा, विष्णु और शिव अपने २ स्थानों पर भाग गये। यम, वरुण, तथा कुबेर का कहीं पता ही नहीं लगा। इससे सिद्ध है कि

ब्रह्मचर्य ही सब कुछ है। इसके आगे त्रिदेवा की शक्ति कुछ भी नहीं। अर्थात् तुच्छ है।

भारतीयों! देवताओं के उत्थान-पतन से ब्रह्मचर्य की शिक्षा ग्रहण करो! महिषासुर के संग्राम में, रक्तबीज, चंड-मुंड तथा शुंभ-निशुंभ के युद्ध में उनका देवत्व कहाँ चला गया था? चेतो! उठो! उस देवता की शरण में जाओ! जहाँ तुम्हें देवत्त्व प्राप्त होगा!

दानवी सृष्टि और ब्रह्मचर्य

जो ब्रह्मचारी नहीं है, उसकी कभी सिद्धि नहीं होती। वह सदैव जन्म-मरण के क्लेशों को भोगता रहता है। ब्रह्मचर्य से हीन व्यक्ति ही वास्तव में निंद्य, नारकी, दानव और निशाचर है।

—महर्षि यतुकर्ण

सृष्टि-विकास अवर्णनीय विषय है। प्रजापति मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वशिष्ठ, भृगु और नारद ने प्रजाओं की वृद्धि की। बड़े २ देवज्ञ विद्वान एवं बुद्धिमान प्राणी उत्पन्न हुये। पश्चात् यक्ष, राक्षस, पिशाच, गंधर्व, अप्सरा, असुर, सर्प, गरुड़ और पित्रों के वर्गों का प्रादुर्भाव हुआ।

दानवी सृष्टि तमोगुण प्रधान है। इनका शरीर मन बुद्धि तथा इन्द्रियाँ तमोगुण से ओत-प्रोत हैं। इनके रहन सहन, आचार-विचार तथा आहार-विहार सबों में तमोगुण की श्रेष्ठता है। यही कारण है कि दानव, असुर, राक्षस और निशाचर सृष्टि में निंद्य समझे जाते हैं। संसार इन्हें पतित और निकृष्ट समझकर घृणा की दृष्टि से देखता है। इनके पापपूर्ण आसुरी कृत्य एवं शान्ति संहारक लक्षणों से संसार इनकी अवहेलना करता है।

तथापि—दानवों ने क्या नहीं किया ? देवताओं से बढ़कर ब्रह्मचर्य का पालन ! उद्दण्ड चंचल मन पर विजय ! चंचल वृत्तियों का निग्रह तथा अनस्थिर बुद्धि की स्थिरता ! यहाँ ही तक नहीं सहस्रों बार सन्मुख समर में देवताओं को परास्त किया। उनसे स्वर्गादि लोक छीन लिये। अनेकों बार उनके अग्रगण्य महारथियों को पर्वत की विशाल कन्दराओं में वर्षों बन्द रखा। स्वयं इन्द्रासन प्राप्त कर स्वर्ग का उपभोग किया। ब्रह्मचर्य की असीम शक्ति से कौणपों ने कराल काल को भी अनेकों कष्ट दिया।

भीषण-कर्मा दानवों ने अपनी अद्वितीय शक्ति से त्रैलोक्य को थर्रा दिया। उनके दुर्द्धर्ष प्रताप से पृथ्वी काँप उठी। स्वर्गादि लोक दहल उठे। चराचर भयभीत हो गया। उनके

प्रज्वलित क्रोधाग्नि में संसार तृणवत् धाँय-धाँय करते हुये भस्मी-भूत होने लगा।

दानव देव थे। उनका बाल्यकाल ब्रह्मचर्याश्रम के पुनीत धामों में व्यतीत हुआ था। उन्होने सांगोपांग ब्रह्मचर्य का अध्ययन किया था। वे अमोघ वीर्यधारी थे। उन्होंने वीर्य को ऊर्द्ध्व-गामी बना लिया था। वे विज्ञान--विद्या--विशारद थे। उनकी नस--नस में ब्रह्मचर्य का भाव कूट--कूट कर भरा था। वे बड़े भारी तपस्वी तथा जितेन्द्रिय योगी थे। उन्होंने सहस्रों वर्ष तक देवताओं से बढ़ कर अविराम कठोर तप के द्वारा सिद्धियों को प्राप्त किया था। जिसके द्वारा इन्द्रादि देवों को नत--मस्तक होना पड़ा।

रहा सुखशान्ति प्रशान्तसुकाल।
बढ़े सहसा पुनि दैत्यकराल ॥
किये सब वैदिकतत्त्व विलुप्त।
हुये गतगौरवपुण्यप्रसुप्त ॥
किये बहु युद्ध लिये जग जीत।
दहे सुरलोक दिये बहु मीत ॥
हुये सुर-त्रस्त महा दुख पाय।
गई वसुधा अचला थहराय ॥

सहीसुर-सैन्य महा दुखज्वाल ।
बना शुभकाल अकालकराल ॥
हुये फिर भी न निशाचर शांत ।
किये समरांगणपृष्ठअशांत ॥
जुरे सब देव चले रिपु रोकि ।
हुये अति क्रुद्ध अनीति विलोकि ॥
किये अति घोर भयानक कृत्य ।
हुआ प्रलयार्णव सा रणवृत्त ॥
यथा घनघोरसुघोपअनन्त ।
हुआ रव पूरित लोकदिगन्त ॥
यथा रण में महिषध्वज धाय ।
चले विबुधारि धरे अतिकाय ॥
हुआ रण भीपण शीघ्र अनन्त ।
अड़े दल-दानव-दर्प दुरंत ॥
कँपे नभ भूतल मेरु ढ़हाय ।
चले सुर, किन्नर, यक्ष पराय ॥

ब्रह्मचर्य के बल से दानवों ने असम्भव को सम्भव कर दिया
असाध्य को साध्य तया अप्राप्य को प्राप्त कर लिया ॥

दानवों के विकट विक्रम का प्रकाश आगे विदित होगा ।
दानवेन्द्र शुंभ के एक सेनापति चण्ड की प्रतिज्ञा यह जिज्ञासा

उत्पन्न करती है कि दानवों का विक्रम विश्वविख्यात था। चण्ड इस प्रकार प्रतिज्ञा करता है—

मारि मारि सब देव आज रंगर मथ डारूँ।
मघवा धनद रमेश शेष वरुणादि विदारूँ॥
द्रुहिण पिनाकी सहित मृडा को रण में मारूँ।
इन्द्रकील कर ध्वंस ध्वान सुरलोक सँहारूँ॥
दिग्दिगत मय अब्धि को, नष्ट भ्रष्ट कर मोड़ दूँ।
कन्दुक इव ब्रह्माण्ड यह, कच्चे घट सम फोड़ दूँ॥
प्रलय मचा दूँ जिधर बढ़ूँ रण में दे डंका।
टिकें विबुध क्या! भगे समर से काल सशंका॥
रुण्डमुण्ड पट जाय चंड-चय चढे दमंका।
कूदिकूदि जब तडतडाक दे तारितमंका॥
शीघ्र सुरों को मार के, जय करके त्रैलोक को।
हरुं प्रबल भुजदंड से, दनुजाधिप तव शोक को॥
चिंता क्या! दनुजेन्द्र धीरधर रण का करते।
चूरचूर कर शूर-क्रूर-अरि-दर्प विदरते॥
कर सकता क्या दीनहीन गौरवगत धाता।
लड़ सकता को अमर वीर दनुजाम्बुज त्राता॥
पकड़ि पकड़ि गीर्वाण को, मार मार महि डार के।
कर दूं कंटक दूर मैं, निजर-निकर विदार के॥

चण्ड वीर का दृश्य भयंकर था उस रण में ।
हुये विमर्दित विबुध-युत्थआतुर हो क्षण में ॥
झमिझमि झट झटपिझपटि वासवदल मारे ।
पटकपटक भटविकट प्रकट सुरकटक संहारे ॥
यही भांति सुरन संहारते, क्रोधातुर कर्बुर कढ़ा ।
वृन्दारक-वन दहन को, काल रूप रण में चढ़ा ॥

भारतीयो ! दानवों से ब्रह्मचर्य की शिक्षा प्राप्त कर अपना नर जन्म सार्थक करो । दुर्बलो ! पूर्वजों और देवों को जाने दो, सज्जनों और विद्वानों की शिक्षा छोड़ दो । कुमार्गियों राक्षसों और पिशाचों से तो शिक्षा ग्रहण करो ! हा ! आज ज्ञानियों की संतान निशाचरों से भी हीन एवं निन्द्य आचरणों में लीन हो रही है ।

मैथुनी सृष्टि और ब्रह्मचर्य

यदा पुनः प्रजाः सृष्टा न व्यवर्धन्त वेधसः ।
तदा मैथुनजां सृष्टिं, ब्रह्मा कर्त्तुममन्यत ॥

जगत् सृष्टि में मैथुनी सृष्टि का विकास पीछे हुआ है । प्रथम मानसिक सृष्टि से काम लिया गया था परन्तु वृद्धि न होने पर मैथुनी सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ ।

सबसे पीछे मैथुनी सृष्टि का विकास हुआ। अमोघ वीर्य-धारी ऋषियों ने बलिष्ठ संतानों को उत्पन्न किया। संसार देवत्व गुणों से विभूषित हो उठा। बड़े २ प्रतापी, धुरंधर, धीर, वीरविज्ञमहापुरुषों से वसुंधरा परिपूर्ण हो गई। सर्वत्र ब्रह्मचर्य का आलोक आलोकित होने लगा।

मैथुनी सृष्टि ब्रह्मचर्य से ओत-प्रोत है। उसका प्रथम पाद दैवी तथा दानवी विकास से कहीं श्रेष्ठ तथा तेजोमय दृष्टि-गोचर होता है। वैदिक काल वही था और सतोगुणी कृतयुग वही था। इन्द्र को परास्त करने वाले मैथुनी सृष्टि के मनुष्य उसी समय थे। विश्व विजय करके राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञ करने वाले नरोत्तम उसी समय थे।

समय ने पलटा खाया। ब्रह्मचर्य का प्रतापवारि मैथुनी सृष्टि से बह गया। आज बलवानों की संतान बलहीन हो गई। दानवों पर विजय करने वाली आर्य जाति वन जन्तुओं से डरने लगी। अक्षौहिणी से लड़ने वाले लडाकों की संतान चूहे और बिल्लियों की खटखटाहट से भयभीत होने लगी। शोक !

यह पूर्व ही लिख आये हैं कि मैथुनी सृष्टि से ब्रह्मचर्य का अत्यंत घनिष्ठ सम्बन्ध है। बलिष्ठ ब्रह्मचर्य से इसका विकास हुआ। वह कैसा ब्रह्मचर्य था जिसका क्रम आज तक विद्यमान है। वह परमाणु कितना श्रेष्ठ कितना गंभीर तथा कितना

उत्कृष्ट था। उसकी शक्ति कितनी तीव्र तथा अनन्त थी; जिसकी मर्य्यादा आज तक स्थित है।

मैथुनी सृष्टि की तीन अवस्था बीत चुकी, कृतयुग उसका प्रथम पाद था, उस काल में उसने पूर्व उन्नति की। उस युग में सत्य का साम्राज्य था। त्रेता उसका द्वितीय पाद है। इस युग में भी यह प्रतिष्ठित तथा पूर्ण रहा। इसके गर्भ से बड़े २ मनुष्य उत्पन्न हुये। द्वापर इसका तृतीय पाद है। वह युग भी किसी प्रकार इसे प्रभावशाली बनाये रहा। यह वर्तमान काल कलि इसका चतुर्थ पाद है। मैथुनी सृष्टि मिथुन मैथुन के चक्र में फँसकर अधोगति में पड़ा है। हा! मैथुनों ने इसका मथन कर सारा सार निकाल लिया। अब तो यह निर्जीव हो रहा है।

मैथुनी सृष्टि के जीवों! निहारो! एकवार कृतयुग के पूर्वजों की ओर, द्वापर के वीरों की ओर, त्रेता के धर्म धीरों की ओर! शोक! उठो उठो! अब भी समय है। नहीं तो मैथुनों के विषय मंथन से तुम्हारा नाश हो जायगा। मै तुम्हें बताये देता हूँ। बिना ब्रह्मचर्य के तुम भयंकर कलिकाल से लड़कर विजयी नहीं हो सकते।

ब्रह्मचर्य और पुरुष-धर्म

ब्रह्मचर्य्यं परो धर्मः स चापि नियतस्त्वयि ।
यस्मात्तस्मादहं पार्थ रणेऽस्मिन् विजितस्त्वया ॥

—गन्धर्वराज

हे अर्जुन ! यह ब्रह्मचर्य ही परम धर्म है। क्योंकि इसी ब्रह्मचर्य के प्रभाव से तुमने मुझे जीत लिया।

समस्त जीवों के लिये धर्म आवश्यक और प्राकृतिक है । संसार में सब प्रकार की उन्नतियों का नाम अभ्युदय और परलोक के अच्छे साधनों का निःश्रेयस है । जिन कर्मों के द्वारा अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्त हों ऋषियों ने उसे धर्म कहा है । धर्म के बिना एक पग भी आगे बढ़ना दुस्तर है । जीवन के उच्च उद्देश्य तक पहुँचने के लिये धर्म की आवश्यकता है । अतः धर्म का पालन करना प्रत्येक प्राणियों के लिये अनिवार्य है ।

अभ्युदय धर्म का शरीर और निश्रेयस आत्मा है, दोनों के संयोग से धर्म जीवित रहता है । दोनों भौतिक और आध्यात्मिक उन्नतियों का मूल है—

उन्नतिं निखिला जीवा, धर्मेणैव क्रमादिह ।
विदधानाः सावधाना, लभन्तेऽन्ते परं पदम् ॥

—महर्षि व्यास

इस संसार के सभी जीव धर्म से ही उत्पन्न होते हैं। जो लोग धर्म के पालन करने वाले और अपने को उसके निर्वाह करने में सचेत रखने वाले हैं—वे अन्त समय में उत्तम गति को पाते हैं। यह सत्य है कि 'प्रजा उपसर्पन्ति धर्मेण' तथा 'धर्मेणैव जगत्सुरक्षितमिदम्'

धर्म से ही संसार उत्पन्न हुआ है और इसी से सुरक्षित है। प्रकृति जब तक साम्यावस्था में रहती है, अर्थात् युक्त धर्म पर चलती है, तब तक प्रलय नहीं होने पाता। वैषम्यावस्था अर्थात् अधर्म में रत होते ही उसके समस्त गुणों का लोप हो जाता है और विश्व क्षण मात्र में नाश के गह्वर में विलीन हो जाता है।

अतएव, यह सिद्ध हुआ कि इस लोक और परलोक सुधारने वाला कर्तव्य जो अन्तरात्मा से धारण कर लिया जाय, उसे धर्म कहते हैं। पुरुषों का वास्तविक धर्म ब्रह्मचर्य है, इसी के भीतर धर्म का स्वरूप विद्यमान है। ब्रह्मचर्य ही धर्म की उत्पत्ति, पालन और प्रलय का रहस्य है। इसी को धारण कर संसार धार्मिक बन सकता है।

श्रुति, स्मृति, सदाचार, स्वस्थ च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः, साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥

श्रुति, स्मृति, उत्तम आचार और अपने अन्तःकरण--इन

चार प्रकार के साधनों से धर्म का निर्णय किया जाता है। इन चारों के विरुद्ध कर्म करने पर अधर्म होगा। अधर्म से धर्म का नाश हो जायगा। अतः अधर्म से बचना चाहिये। जो धर्म का नाश करता है, निश्चय ही धर्म उसका नाश कर देगा।

स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य, त्रायते महतो भयात्।

धर्म का थोड़ा तत्व भी मनुष्य को बड़े २ दुःखों (भयों) से बचाता है। जिस मनुष्य के हृदय में जब तक धर्मरूपी ब्रह्मचर्य विद्यमान रहेगा। तब तक संसार की कोई भी शक्ति उसको अनुष्ठान से नहीं छुड़ा सकती। यह निरन्तर अपने इष्टपथ पर विजय प्राप्त करेगा। भारतीयों! ब्रह्मचर्य धर्म को अपनाओ! तभी तुम अभ्युदय और निश्रेयस के अधिकारी बनोगे। अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति का साधन केवल धर्मस्वरूप ब्रह्मचर्य है।

ब्रह्मचर्य और स्त्री।

मनसा, कर्मणा, वाचा, त्यज्यतां मृगलोचना।
न ते स्वर्गोऽपवर्गो वा, सानन्दे हृदयं यदि॥

—भगवान् दत्तात्रेय

संसार में ब्रह्मचर्य धारण करने के लिये मन, वाणी और कर्म से स्त्री को छोड़ देना चाहिये। क्योंकि स्त्री ही बन्धन

कराने वाली है और बन्धन ही नाना प्रकार के दुःखों का कारण है। इस लिये दुःख की जो जड़ है, उसे ही काट देना सर्वोत्तम चिकित्सा है। परन्तु जो कुत्सित अर्थात् विषयी जीव हैं, जो भेदवादी अर्थात् अज्ञानी जीव हैं, वे अमृत रूप तथा मोक्ष स्वरूप प्राण-प्रिय ब्रह्मचर्य का त्याग कर स्त्रीरूपी विषय में रमण करते हैं। अन्त में वे ही भोगों के उदय होने पर रोते और चिल्लाते हैं।

स्त्री ही अपने नयन बाणों के जाल में संसार को फँसाती है। यही संसार को विषय-चक्र में डाल कर माया के दृढ़ बन्धनों में जकड़ती है। इसीके पाश में पड़ कर तुम से बड़े २ पाप होते हैं। यही कामना की कुंजी है, तृष्णा की स्मृति है, अग्नि की मूर्त्ति है तथा विश्व में विषय-साम्राज्य फैलाने वाली विलक्षण शक्ति है।

स्त्री वीर्यनाश की एक साक्षात् यन्त्रिका है। लोगों ने इसे यन्त्रों से बढ़ कर माना है, यंत्र तो अनुकूल प्रेरणा करने पर काम करता है, परन्तु स्त्रीरूपी यंत्र तो दूर से अपने महान आकर्षण के द्वारा खैंच लेती है। जिसको इसने एकबार देख लिया अथवा जिसने इसको प्राप्त किया समझ लो दोनों अवस्थाओं में वह नाश के मुँह में जा गिरा, उसका ब्रह्मचर्य व्रत नष्ट हो जायगा।

इसी स्त्री के लिये तथा स्त्री के द्वारा संसार में नित्य सहस्रों अनर्थ होते हैं । इसी चर्म-कुंडरूपी दुर्गंध को देवता-दानव और मनुष्य बड़ी प्रीति से धारण करते है। नारी नाशकारी रूप है। इसी से सम्पूर्ण जगत खंडित हुआ है। इसी के कारण इन्द्र को गौतम की स्त्री के पीछे सहस्र भग का शाप हुआ। असुरों के बलवान राजा शुंभ निशुंभ इसी के हेतु लड़ कर मर गये। महाबलशाली वाली इसी के द्वारा मारा गया और आज भी संसार में सहस्रों इन्हीं स्त्रियों के काम बाण से पीडित हो मर रहे हैं।

स्त्री को विषयासक्त एवं कामीजन-विधुवदनी, मृगलोचनी, रंभोरु, मृगराज कटी आदि की उपमा देकर उसके अपवित्र देह को अपने सुख एवं भोग की सामग्री समझ कर उसमें लिप्त रहते हैं। हा! अन्त में उन्हें दुःख ही भोगना पडता हैं, क्योंकि भोगों का अन्त दुखदायी है।

महार्षियों का कथन है कि स्त्री इन्द्रायण के फल के समान है। इन्द्रायण का फल बाहर से बड़ा मनोहर देख पड़ता है परन्तु भीतर कुरूप तथा दुर्गन्धिपूर्ण होता है, तद्वत् स्त्री भी बाहर से सुन्दरी जान पड़ती है और भीतर मलमूत्रादि अपवित्र पदार्थों से भरी है। यह ब्रह्म विचार की शत्रु है। स्वर्ग एवं मोक्षनाशिनी है। अतः ब्रह्मचारियों को इससे दूर रहना चाहिये।

स्त्री मदिरा-मादक रूप है। इसने सारे संसार को मत्त बना रक्खा है। इसीके प्रभाव से संसार का ज्ञान लोप होगया है। भगवान दत्तात्रेय का कथन है कि गुड़, आंटा और मधु से मद्य बनता है—जिसे लोग पान कर उन्मत्त हो जाते हैं, परन्तु यह अधम मद्य है। स्त्री रुप चौथा मद्य ऐसा प्रबल है कि इसने संसार को वश में कर लिया है। देखो! उपरोक्त तीनों मद्य तो पीने से पागल बनाते हैं, परन्तु स्त्री रूपी मद्य तो देखने से ही उन्मत्त बना देता है।

अग्निकुंडसमा नारी, घृतकुम्भसमो नरः।
संसर्गेण विलीयते, तस्मात्तां परिवर्जयेत्॥

स्त्री आग की भट्टी के समान है। पुरुष घी के घड़े के समान है दोनों का संयोग होने से काम विकार का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। इसलिये उन्नति चाहने वाले ब्रह्मचारियों को इससे दूर रहना चाहिये। अन्यथा संहार हो जायगा।

ब्रह्मचर्य्यावस्था में स्त्री का दर्शन तो दूर रहा उसका चिंतन तथा चित्र दर्शन भी निषेध माना गया है। यही कारण था कि पूर्वजों ने स्त्री और पुरुष के लिये पृथक्-पृथक् ब्रह्मचर्याश्रम स्थापित किये थे। तभी उपकुर्वाण और नैष्ठिक ब्रह्मचारी बनते थे।

शास्त्रों में स्त्रियों के ब्रह्मचर्य का भी विधान है। सृष्टि-रक्षा

के लिये उन्हें भी ब्रह्मचर्य-धारण करना चाहिये। पूर्वकाल में स्त्रियों ने अखण्ड ब्रह्मचर्य धारण किया है। आज उनके अनेकों ज्वलन्त उदाहरण हमारे नेत्रों के सामने जगमगा रहे हैं। शक्ति, लक्ष्मी, पार्वती, मैत्रेयी और गार्गी आदि सतियों की कथायें स्मारक रूप हैं।

ब्रह्मचर्य के प्रताप से स्त्रियों ने क्या नहीं किया! पुरुषों से बढ़ कर वीरता, धीरता और गंभीरता। उनकी विद्वत्ता और बुद्धिमत्ता की कथायें आर्य ग्रन्थों मे भरी पड़ी हैं। वे भी ब्रह्मचर्य का समान अधिकार रखती थीं। स्त्रियों ने भी उपकुर्वाण और बृहत् ब्रह्मचर्य धारण किया है। यहां तक कि अनेकों नैष्ठिक ब्रह्मचारिणी हुई हैं। उनका इतिहास तुम्हें पौराणिक गाथाओं में मिल सकता है।

ब्रह्मचर्य का कृतयुग

ब्रह्मचर्य से ही सभी सिद्धियां प्राप्त होती हैं। इसी के प्रताप से मनुष्य देवता तथा ऋषि होते हैं, जो ब्रह्मचारी नहीं उसकी कभी सिद्धि नहीं हो सकती-वह सर्वदा जन्म मरणादि क्लेशों को भोगता रहता है।

—महर्षि वृद्ध भारद्वाज

एक समय था, जब भारत के वीरों की धाक, इस पृथ्वी

पर ही नहीं, तीनों लोकों में थी। पातालवासी वलिष्ठ नागों का समुदाय, तथा दुद्धर्ष दानवों का दल, स्वर्गवासी देवताओं का निकर तथा यक्ष-किन्नरों का यूथ, जिनकी मुक्तकण्ठ हो एक स्वर से गुण गान करता था।

उस समय आर्य-संस्कृति का विकास था। उनका सबसे प्रिय उद्देश्य जगत्-जीवनाधार ब्रह्मचर्य की प्राप्ति था। वे सर्वदा इसी में तन्मय रहते थे, ब्रह्मचारी उपकुर्वाण होता था। आचार्य नैष्ठिक रहता था उपदेशक और धर्माचार्य वृहत् हुआ करते थे। प्रत्येक गृहाश्रमी अतिरात्र का अधिकारी रहता था।

आर्य-संस्कृति के वायुमण्डल से पले वीर पूर्वजों के अद्वितीय चरित्रों का अध्ययन करने पर अत्यन्त आश्चर्य होता है। भीमकर्मा आत्म ज्ञानियों के उच्च जीवन से देश का गौरव प्रकट होता है, भला उनके चरित्रों की समता कहां? उनकी वीरता का उदाहरण क्या संसार में कहीं मिल सकता है? संसार के इतिहास को देखो। ऐसे अद्भुत कर्म करने वाले योद्धा, धुरन्धर धीर-गम्भीर कहीं देख पड़ते हैं? क्या भारतीय वीरों के समान रण-कौशल विशारद ओज सम्पन्न, वाँकुरा इस विश्व के समरांगण में कहीं पाओगे? इनकी समानता करने वाला नर पुंगव किसी देश की पृथ्वी ने उत्पन्न किया है? कदापि नहीं।

संसार आर्ष-संस्कृति का उपासक था। आर्ष ऋषियों के नियमों का पक्षपाती था, धर्म-प्रवर्त्तक पूर्वजों की नीति का ग्राहक था, उन आत्मज्ञानी महर्षियों के सिद्धान्त का पालक था, उनके उपदेश और आदेशों का अनुचर था, इसीलिये विश्व उन्नतशील रहा। वह युग ब्रह्मचर्य का कृतयुग था।

आर्ष-संस्कृति ही ब्रह्मचर्य का स्वरूप है। आर्ष-संस्कृति वह वायुमण्डल है जिसमें ब्रह्मचर्य फल फूल सकता है। अपना विकाश तथा अभ्युदय कर सकता है। आर्ष-संस्कृति वह अमिय रस है जिससे इस वृक्ष को सदैव हरा भरा रख सकते हो। इसी संस्कृति के प्रचार से भारत नैतिक ब्रह्मचारी बना, इसी के आधार पर देश विश्वगुरु बना। परन्तु शोक! देश से वह संस्कृति जाती रही, वे नियम और सिद्धान्त जाते रहे, तुमने उन सिद्धान्तों को पकड़ लिया—जिन्होंने तुझे रौरव के गह्वर-गर्भ में गिरा दिया।

ज्ञानान्ध भारतीयों! प्राचीन संस्कृति का प्रचार करो। वर्तमान वायुमण्डल को हटाओ, यह तुम्हारा बिना सर्वनाश किये दम न लेगा। अभी से सचेत हो जाओ।

ब्रह्मचर्य के ११ बड़े आचार्य्य

आचार्य्यो ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारी प्रजापतिः ।
प्रजापतिर्विराजति विराडिन्द्रोऽभवद्वशी ॥

—महर्षि अङ्गिरा

संसार में ब्रह्मचर्य का सबसे बड़ा आचार्य्य परम पिता परमात्मा है। उसी ने सबसे प्रथम जीवों को इसका उपदेश दिया। पश्चात् इसका विश्व में विस्तार हुआ। आज तक इसके ११ बड़े २ आचार्य्य हुये, जिनके उपदेशों से सांसारिक प्राणी इसे अपनाकर मानव-जीवन सार्थक किये।

संसार में सबसे पहले आचार्य्य शंकर हुये। इसके पश्चात् आजन्म ब्रह्मचर्य धारण करने वाले प्राचीन चारों ऋषि—सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन हुये। कुछ काल के बाद दानवाचार्य्य शुक्र ने इस विद्या का प्रचार किया। उनके बाद परशुराम और दत्तात्रेय हुये। ब्रह्मचर्य के उसी युग में आचार्य्य शुक, वामदेव तथा ऋषभदेव का प्रादुर्भाव हुआ।

(१) भगवान् शंकर योगीराज थे, इन्होंने कठिन तपश्चर्य्या के द्वारा ब्रह्मचर्य्य की सिद्धि प्राप्त की थी। इनके अनन्त शक्ति से संसार परिचित है। काम शमन तो दूर रहा इन्होंने अपने अखण्ड तेज से कामदेव को ही भस्म कर दिया। यही कारण

है कि आज उन्हें संसार कामारि तथा मदनारि के नाम से पुकारता है। आज भी साधक या विद्यार्थी इन्हीं का नाम लेकर साधनारम्भ करते हैं। योगीजन इन्हीं का स्मरण कर योग की साधना में मग्न होते हैं। ब्रह्मचर्य में शंकर ही सर्वश्रेष्ठ आचार्य हुये।

(२) वैदिक काल के आरम्भ में सनक, सनन्दनादि चारों ऋषियों का प्रादुर्भाव हुआ। ये चारों एक से एक बढ़ कर ब्रह्मचारी हुये। इन चारों ने ब्रह्मचर्य का इतना कठिन साधन किया कि जरा और मृत्यु इनसे भयभीत हो गई। काम भाग खड़ा हुआ, इन्द्रादि देव दहल गये। एक लोक क्या त्रैलोक्य काँप उठा। ये इतने तेजवान हो गये कि देवता-दानव सभी इनकी सेवा करने लगे। चारों ऋषियों ने स्वयं नैष्ठिक ब्रह्मचर्य धारण किया तथा संसार को ब्रह्मचर्य का उपदेश दिया। वैदिक काल में उन्हीं उपदेशों के द्वारा असंख्यों दुर्द्धर्ष ब्रह्मचारी हुये जिन्होंने उस समय-प्रवाह को सत्ययुग बना दिया।

(३) शुक्राचार्य। ब्रह्मचर्य के आचार्य्यों में शुक्राचार्य का नाम विशेष प्रसिद्ध है। इन्होंने अपने उपदेश से दानवों को विश्वविजयी बना दिया। असुरों में देवत्व प्राप्त करा दिया और मृतकों को जिला दिया। आज भी संसार इनकी संजीवनी-विद्या की प्रशंसा करता है।

(४) भगवान परशुराम के नाम से भारत का बच्चा २ परिचित है। ये वे ही तपोनिष्ठ बाल ब्रह्मचारी थे, जिन्होंने २१ बार पृथ्वी का उद्धार किया, दुराचारियों तथा अन्याइयों का नाश कर सत्यधर्म का प्रचार किया। यह ब्रह्मचर्य की शक्ति थी, वीर्य रक्षा का बल था, जिसके द्वारा उन्होंने बार २ विश्व की समस्त शक्तियों को अकेला ही परास्त किया। द्वापर के बड़े २ वीर इन्हीं के शिष्य थे, जिनके रण-कौशल का वर्णन सुन बड़े २ विज्ञानियों के दाँत खट्टे हो जाते हैं।

(५) भगवान दत्तात्रेय साक्षात् ब्रह्मचर्य की मूर्ति थे। उन्होंने यावत् जीवन ब्रह्मचर्य का पालन किया था। ब्रह्मचर्य के ही अभ्यास से उन्होंने अखण्ड ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त किया था। दृढ़ वैराग्य, अवधूतआचारण, अद्वैत ज्ञान का आदिकारण ब्रह्मचर्य था।

(६) अखण्ड ब्रह्मचारियों में महर्षि शुक देव का नाम आया है। ये ब्रह्मचर्य के धुरन्धर आचार्य्य थे। इन्होंने वीर्य की इतनी कठिन सिद्धि प्राप्त की थी, जिसका रहस्य रम्भा-शुक संवाद से प्रकट होता है। विश्वविमोहिनी सन्मुख खड़ी है, मदन छिपा हुआ बाण प्रहार कर रहा है, इन्द्रियाँ विषयों की ओर बढ़ना चाहती हैं, काम के बाणों से मनोविकार छटपटा रहा है। फिर भी शान्त! इन्द्रियों को रोकता है।

मनोविकार को डाटता है। समाधि में लीन रहता है। मदन हार कर भागता है। रम्भा लज्जित हो नत मस्तक हो जाती है। ब्रह्मचारी विजय पाता है—इन्द्र थर्रा उठता है। भारतीयों अपने पूर्वजों के ब्रह्मचर्य को देखो।

(७) वामदेव और ऋषभदेव भी अपने समय के सर्वश्रेष्ठ आचार्य्य हुये। इन्होंने भी सहस्रों ऋषियों को ब्रह्मचर्य का उपदेश दिया। भारत का अतीत काल ब्रह्मचर्य से ओत-प्रोत था। भारत में उपरोक्त ११ आचार्य्य विशेष प्रसिद्ध हुये हैं। यद्यपि वे सब अब नहीं हैं परन्तु उनकी कीर्त्तियां अतीताकाश में जगमगा रही हैं। उनके सुयश स्वर्णाक्षरों में अङ्कित हैं। सूर्य चन्द्र जब तक विद्यमान रहेंगे संसार उनकी कीर्त्ति गाया करेगा।

तीन आदर्श ब्रह्मचारी।

इस संसार में उत्पन्न होने से, मरण तक जो ब्रह्मचारी रहता है, उस के लिये कोई उत्तम बात ऐसी नहीं है, जिसको वह प्राप्त न कर सके।

—राजर्षि देवव्रत

भारत ब्रह्मचर्य का उद्भवस्थान है। यहाँ बड़े २ ब्रह्मचारी तथा योद्धा हुये। भारत का अतीत काल ब्रह्मचारियों की वीर

गाथाओं से भरा है। बचा २ ब्रह्मचर्य का प्रेमी था तथापि भूत काल में तीन आदर्श ब्रह्मचारी हुये हैं जिनका वर्णन हम आगे कहेंगे। एक वैदिक काल में, दूसरे रामायण काल में और तीसरे महाभारत काल में। पहले ब्रह्मचारी का नाम जो कृतयुग में हुये थे, वृद्ध भारद्वाज था। दूसरे जो त्रेतायुग में हुये थे महावीर तथा तीसरे जो द्वापर युग में हुए थे उनका नाम देवव्रत अर्थात् भीष्म पितामह था। तीनों अक्षुण्य नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे, सब से पहले वृद्ध भारद्वाज का वर्णन करते हैं।

(१) वृद्ध भारद्वाज प्रकाण्ड ब्रह्मचारी थ, इन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन ब्रह्मचर्याश्रम में व्यतीत किया था, वेद पढ़ना, वीर्य रक्षा करना तथा ईश्वर चिन्तन में लीन रहना यही इनका मुख्य कार्य्य था, कभी भी इन्होंने वीर्य को नहीं बहाया। सहस्रों ऋषियों एवं बटुकों को इन्होंने ब्रह्मचर्य का उपदेश दिया। तैतिरीय ब्राह्मण ग्रंथ में इनके ब्रह्मचर्य साधन के विषय में प्रसङ्ग आया है।

भारद्वाज ने अपनी तीन आयु को ब्रह्मचर्य में ही वेद पढ़ते–पढ़ते बिता डाला। अन्तिम अवस्था पर अर्थात् जीर्ण शीर्ण दशा में जब शय्यागत होकर वृद्ध भारद्वाज पड़े थे, ऐसा स्थिति में इन्द्र आये और बोले। महात्मन्! यदि हम आप को चतुर्थ आयु दें तो आप क्या करेंगे? उसे किस प्रकार

व्यतीत करेंगे। भारद्वाज ने कहा कि मैं ब्रह्मचर्य रह कर विद्या ही पढ़ूँगा। मैंने सम्पूर्ण वेदों को आज तक नहीं पढ़ा। मेरी आन्तरिक अभिलाषा है कि मैं समस्त वेद पढ़ डालूँ।

इन्द्र ने भारद्वाज को तीन पहाड़ दिखलाये। और तीनों से एक एक मुट्ठी लेकर कहा कि भारद्वाज! ये पर्वताकार वेद हैं। इनका अन्त नहीं, आपने तीनों आयु से तीन मुट्ठी वेद का अंश पढा है इससे जो शाखायों में सार हो, वही पढ़ कर अमर्त्य हो सूर्य्य का सायुज्य प्राप्त करो। यह उपदेश देकर देवेन्द्र अन्तर्ध्यान होगये।

भारतीयों! समझो, तुम्हारे पूर्वज किस प्रकार ब्रह्मचर्य और वेदाभ्यास के महत्व को समझते थे। वे केवल ब्रह्मचर्य और वेदाभ्यास के लिये अपना जीवन चाहते थे। तुम्हारे समान विषयों और सुखों के लालायित नहीं थे।

(२) दूसरे ब्रह्मचारी का नाम महावीर हनुमान था, इन्हें संसार केशरीनन्दन, शंकर सुवन, तथा पवनात्मज के नाम से पुकारता है। लाखो हिन्दू भक्ति-भाव-पूर्वक इनकी पूजा करते हैं। इनकी वीर गाथाओं का पाठ करते हैं। इनकी विस्तृत कथा रामायण में लिखी है।

ये जीवन पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य की साधना में लीन रहे, इन्होंने इस व्रत का यहाँ तक पालन किया कि स्वप्न में भी कभी इनका

वीर्य नष्ट नहीं हुआ, ब्रह्मचर्य के कठिन अभ्यास से इन्होंने अपार शक्ति प्राप्त की। शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक बल इनमें कूट-कूट कर भर गया। ब्रह्मचर्य के ही प्रभाव से इनका शरीर वज्र के समान हो गया। यही कारण है कि महावीर को संसार वज्राङ्ग के नाम से पुकारता है।

इनका पराक्रम, विकट-विक्रम लङ्का में देखा गया। इनके अलौकिक कार्य्य ने ब्रह्मचर्य के स्वरूप को खड़ा कर दिया। सीता को खोजना, लङ्का जला देना, रामानुज को सजीव करना, राम-लक्ष्मण की प्राण-रक्षा तथा असंख्य राक्षसों को विमर्दित करना क्या है ? ब्रह्मचर्य का प्रताप ! प्रतापी महावीर के ब्रह्मचर्य-अध्ययन का सुन्दर परिणाम !

(३) भीष्म पितामह की कथा से भी प्रायः सभी परिचित हैं। तथापि उनकी एक उक्ति उदाहरणस्वरूप लिखता हूँ। कथा प्रसङ्ग इस प्रकार है—

अपने पिता को सत्यवती के प्रेम में अनुरक्त देख देवव्रत मन्त्रियों के साथ दासराज के यहाँ गये। उन्होंने उसे बुलाकर अपने पिता के साथ सत्यवती का विवाह करने के लिये कहा। परन्तु दासराज ने अस्वीकार किया। पुनः जिज्ञासा करने पर बोला कि मैं इस प्रतिज्ञा पर विवाह कर सकता हूँ कि

सत्यवती के गर्भ से जो सन्तान उत्पन्न हो, वही राज्य का उत्तराधिकारी माना जाय। अन्यथा नहीं।

दासराज की बात सुनकर भीष्म ने कहा। एवमस्तु! जो तुम कहते हो ठीक है। मैं राज्य नहीं लूँगा। इस समय इस राज्य का मैं ही एकमात्र उत्तराधिकारी हूँ, परन्तु यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं राज्य न लूँगा। तुम्हारी कन्या के गर्भ से जो सन्तान होगी, वही राज्य की उत्तराधिकारी बनेगी।

फिर भी दासराज रुका और बोला कि यह बात सत्य है, परन्तु हमारी कन्या की संतान जो वृद्ध नृप के द्वारा उत्पन्न होगी वह निर्बल तथा निरुत्साही और अल्पवीर्य वाली होगी। और आपकी संतान मोघ वीर्य के कारण, अत्यन्त बलवान तथा तेजपूर्ण होगी। संभव है कि आप के वीर आत्मज सत्यवती के निर्बल सन्तानों को हटा कर राजा बन जायँ। ऐसी स्थिति में हम अपनी कन्या का विवाह आप के पिता से कैसे करें?

यह सुन कर भीष्म ने कैसी उक्ति कही है—जिसे सुन कर रोमांच होजाता है। पितृ-भक्ति का जीता-जागता चित्र नेत्रों के सामने दिखलाई पड़ने लग जाता है। भारतीयों! उस ब्रह्मचारी की उक्ति सुनो—

शृण्वतां भूमिपालानां, यद् ब्रवीमि पितुः कृते।
राज्यं तावत्पूर्वमेव, मया त्यक्तं नराधिप॥

अन्यत्र हेतोरपि च, करिष्येऽद्य विनिश्चयम् ।
अद्य प्रभृति मे दाश, ब्रह्मचर्यं भविष्यति ॥

अर्थात् हे दासराज ! अपने पिता के लिये राजाओं को सुनाते हुये जो वचन कहता हूँ—उठो सुनो । राज्य तो मैंने पूर्व ही छोड़ दिया । अब सन्तान के लिये भी निश्चयकरता हूँ । आज से ही ब्रह्मचर्य धारण करता हूँ—मैं कदापि विवाह न करूँगा । आजन्म अखंड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करूँगा । जब विवाह ही नहीं होगा तो पुत्र कहाँ से होंगे और राज्य का अधिकारी कौन होगा ? न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी ।

भारतीयों ! अपने पूर्वजों की प्रतिज्ञा देखो ! भीष्म की इस दृढ़ प्रतिज्ञा से लाभ उठाओ ।
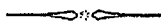
ब्रह्मचर्य की व्याख्या

'ब्रह्म' वेद विद्या को कहते हैं इस लिये जो उसके सीखने में व्रत किया जाता है, उसको ब्रह्मचर्य तथा उस व्रत को पूर्ण करने वाले का नाम ब्रह्मचारी है ।

—महर्षि सूर्य्य

पाठकों ! ब्रह्मचर्य अत्यन्त गूढ़ विषय है । इसका सांगोपांग अध्ययन करना अत्यन्त कठिन है । इसके लिये दीर्घ काल,

कठिन अभ्यास तथा श्रेष्ठ त्याग और तप की आवश्यकता है। परन्तु पूर्व ही समझा देना आवश्यक है कि ब्रह्मचर्य क्या है, किसे कहते हैं ? जब तक इसका अर्थ नहीं बतलाया जायगा, तब तक इसके गूढ़ भावों के समझने में असुविधा होगी। अतः ब्रह्मचर्य क्या है ? सुनो।

वेदादि विद्याओं के लिये जो व्रत धारण किया जाता है, कुछ विद्वानों ने उसे ब्रह्मचर्य कहा है।

'ब्रह्मणि चरितं शीलमस्यास्तीति ब्रह्मचारी, ब्रह्म को प्राप्त करने का शील जिसमें हो, उसे ब्रह्मचारी कहते हैं। अथवा—"ब्रह्म वेदस्तदध्ययनार्थं यद्व्रतं तदपि ब्रह्म तच्चरतीति ब्रह्मचारी"। ब्रह्म के अध्ययन करने के लिये जो जितेन्द्रियादि व्रत हैं, उनको भी ब्रह्मचर्य कहते हैं तथा उनके धारण करने वाले का नाम ब्रह्मचारी है।

ब्रह्मचर्य यह एक ही शब्द नहीं है। दो शब्दों के योग से बना है। एक ब्रह्म और दूसरा चर्य। इस प्रकार ब्रह्म और चर्य मिल कर ब्रह्मचर्य हुआ। इन दोनों शब्दों के भिन्न २ स्थानों पर अनेक अर्थ होते हैं जो जिस स्थान के उपयुक्त अर्थ होता है वह वहीं लिया जाता है।

'ब्रह्म' और 'चर्य' इन शब्दों के वैदिक साहित्य में सैकड़ों अर्थ व्यवहृत किये गये हैं। संस्कृत-साहित्य इतना विशाल

तथा सांगोपांग पूर्ण है, जिसमें इन दोनों शब्दों की व्याख्या का अन्त नहीं हो सकता। अतएव हम उनका संक्षिप्त रूप से वर्णन करते हैं।

'ब्रह्म' शब्द का अर्थ, ब्रह्म, वेद, वीर्य, बढ़ना, प्रसार, विकाश तथा सत्य आदि होते हैं। और 'चर्य' से चिंतन, अध्ययन, रक्षण, ध्येय में लीन, नियमबद्ध साधन, धारण आदि का अर्थ प्रगट होता है। यद्यपि इनके बहुत से अर्थ होते हैं परन्तु वैदिक साहित्य में तीन ही प्रधान अर्थ मान गये हैं और सर्वत्र व्यवहार भी तीन ही का होता है। अर्थ इस प्रकार है।

ब्रह्म	+	चर्य	=	ब्रह्मचर्य
ब्रह्म (ईश्वर)	+	चिंतन	=	ब्रह्मचिंतन
वेद	+	अध्ययन	=	वेदाध्ययन
वीर्य	+	रक्षण	=	वीर्य रक्षण
सत्य	+	धारण	=	सत्यधारण
बढ़ना (उन्नति)	+	ध्येय में लीन	=	उन्नति के ध्येय में लीन
प्रसार	+	नियम बद्ध	=	प्रसार नियम बद्ध
विकास	+	साधना	=	विकास साधना

ब्रह्मचर्य के उपरोक्त अर्थों में ईश्वरचिंतन, वेदाध्ययन तथा वीर्यरक्षण ही प्रधान माना गया है। शेष गौण हैं। ब्रह्मचर्य में इन्हीं तीन बातों की सिद्धि होती है। अर्थात् एक साथ ईश्वरचिंतन, वेदाध्ययन और वीर्यरक्षण करने का नाम ब्रह्मचर्य

है। जो इसे सिद्ध करता है, उसे ब्रह्मचारी कहते हैं। इन्हीं तीन महत्त्वपूर्ण प्रयोजनों के एकत्र किये हुये भाव से ब्रह्मचर्य शब्द की विश्व में उत्पत्ति हुई।

अपेतव्रतकर्मा तु, केवलं ब्रह्मणि स्थितः।
ब्रह्मभूतश्चरन् लोके, ब्रह्मचारीति कथ्यते॥

—मोक्षधर्म

जो एक ही साथ, ईश्वरचिंतन, वेदाध्ययन, वीर्य-रक्षण सत्य-धारण एवं उन्नति के ध्येय में लीन रहता हो, जो ज्ञान की वृद्धि के लिये सदैव यत्न करता हो, पवित्रता के साधन में लगा रहता हो तथा बुद्धि-विकास के सुन्दर प्रयत्न में रतरहता हो वही सच्चा ब्रह्मचारी है। ब्रह्मचर्य ही जीवन का मुख्य ध्येय है। इसी के द्वारा उभय लोक के सुखों की सिद्धि होती है। इसी पर ब्रह्माण्ड ठहरा है।

सम्पूर्ण सुख तथा आरोग्यता का हेतु जीवन है। जीवन का मुख्य हेतु प्राण-रक्षा ही माना गया है। यही प्रधान वस्तु है। क्योंकि कहा है कि प्राणही जीवन का सर्वस्व है। इसीके विषाक्त होने पर शरीरान्त होजाता है। उस श्रेष्ठ प्राण की रक्षा कैसे हो? वेदादि शास्त्र तथा तत्वज्ञ ऋषियों ने उसका मुख्य साधन ब्रह्मचर्य को ही बताया है।
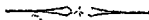
ब्रह्मचर्य और ईश्वर-चिंतन

सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति ।
तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति ।
तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि ॥

—उपनिषत्

ईश्वर-चिंतन का प्रधान साधन ब्रह्मचर्य ही है । बिना ब्रह्मचर्य की पूर्त्ति के संसार उस अव्यक्त विभु का अनुभव नहीं कर सकता । चित्तवृत्तियों के निग्रह का कारण यही है । इसी से यम नियम की पूर्त्ति तथा आसन और प्राणायाम की सिद्धि होती है । इसी के साधन से योगीजन प्राणाधार और धारणा के अमूल्य तत्व को पाते हैं । इसीमें रत रहने पर साधक ध्यान और समाधि-क्षेत्र में आगे बढ़ता है । अतः यह निर्विवाद सत्य है कि ब्रह्मचर्य ही ईश्वर-चिन्तन का लक्ष्य है ।

प्राचीन पूर्वजों को देखो । तपोनिष्ठ महर्षियों के कर्म काल की ओर निहारो । ईश्वर-चिंतन करने वाले ज्ञानियों की ओर दृष्टि करो । उनका जीवन ब्रह्मचर्य से ओत-प्रोत देख पड़ेगा । इसी बल से वे विश्व को विजय करते थे, इसी की शक्ति से देवताओं को प्रकट करते थे, इसी के द्वारा सर्वज्ञ की सर्वोत्कृष्ट

सिद्धि पाते थे। सर्वदा इसे ही धारण कर ब्रह्ममय हो जीवन मुक्त हो जाते थे।

ईश्वर-चिन्तन के लिये शान्त मन, स्थिर बुद्धि, बलिष्ठ धारणा तथा अटल ध्यान की आवश्यकता है। आज कल के भक्तों की भाँति नहीं, जो स्तुति तो ठाकुर जी की कर रहे हैं, परन्तु बाहर भी झांक २ कर देख लेते हैं कि जूता तो है न, अथवा कर तो रहे हैं पूजा, परन्तु ध्यान कामिनी और कांचन में लवलीन है। मानवों! समझ लो ऐसी वृत्ति से ईश्वर-चिंतन नहीं हो सकता। योग ही ईश्वर-चिंतन का लक्ष है। आत्मा को परमात्मा में लय कर देना ही इसका हेतु है। इसके लिये साधक को तन्मय हो जाना चाहिये, अर्थात् चित्त को किसी देश में बाँध देना चाहिये, फिर संसार में क्या हो रहा है? इसका विचार कहाँ? साधक प्राणयुत मनोभावों को उस स्थान पर पहुँचा देता है, जहाँ वासनारूपी वायु, अविद्यारूपी अन्धकार तथा रागमोहादिरूपी आकर्षण नहीं जा सकते।

ईश्वर-चिंतन ब्रह्मचर्य का एक लक्षण है। इसकी पूर्ति बिना यह महान व्रत पूर्ण नहीं हो सकता। इससे हृदय की शुद्धता, मनोबल की वृद्धि तथा आत्मज्ञान का प्रादुर्भाव होता है, इसीसे संसार का यथावत ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। ईश-चिंतन ही तुझे पवित्र बना वेद और वीर्य के महत्वशाली क्षेत्र में विजय

दिलाता है । इसी की क्रिया से शील श्रद्धा और भक्ति का श्रोत हृदय में उठता है। विश्व का अलौकिक धन प्रम इसी से हम पाते हैं जिसके द्वारा मनुष्य क्या ? भयंकर वन-जन्तुओं को भी अपने वशीभूत कर लेते हैं। शत्रुओं और अत्याचारियों को मित्र बना लेते हैं तथा दुर्द्धर्ष पिशाचों से संसार का उपकार कराते हैं।

वाचकवरो ! ब्रह्मरूप देवाधिदेव ब्रह्मचर्य का चिन्तन करो। इसीका मनन करो। इसी की पूजा करो। इसी की उपासना करो। इसी को धारण करो। इसी के ध्यान में लीन रहो—तुम देखोगे कि ईश्वर सदा तुम्हारे साथ-साथ तुह्मारी रक्षा करते हुये दिखाई देता है। इस व्रत को तुम मत छोड़ो यह तुम्हें ईश्वर के सब से उत्तम स्थान पर पहुँचा देगा,—जहाँ रोग, शोक और दुःखों का नाम नहीं है, जहाँ जन्म-मरण की बाधायें नहीं सताती हैं। जहाँ अविद्या और वासना नहीं पहुँचती है। इसे धारण कर तुम सचमुच इस अशान्त सागर से मुक्त हो जाओगे।

ब्रह्मचर्य और वेदाध्ययन

शिष्य वृत्ति क्रमेणैव, विद्यामाप्नोति यः शुचिः ।
ब्रह्मचर्य्यव्रतस्यास्य, प्रथमः पाद उच्यते ॥

—महर्षि बादारायण

जो मनुष्य जितेन्द्रियत्वादि सदाचारों से पवित्र होकर विद्या को प्राप्त करता है—वह ब्रह्मचर्य का प्रथम पाद है ।

ब्रह्मचर्य की सिद्धि ब्रह्मचर्य्याश्रम में आचार्य्य के पास वेदादि विद्याओं के अध्ययन करने से होती है । इसी के द्वारा सम्पूर्ण पदार्थ का यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है । इसी के सहारे मनुष्य उस पद को पाता है, जहां सुखों का साम्राज्य है, रोग और शोक नहीं रहते । जहां दुःखों का समुदाय नहीं घेरता—सर्वदा शान्ति ही विराजती है ।

जिससे परम सुख की प्राप्ति हो, उसे विद्या कहते हैं । इसका नाश नहीं होता । नित्य, अनित्य, शुद्ध, अशुद्ध, दुःख-सुख, अनात्मा-आत्मा, तथा जड़-चेतन का ज्ञान इसी के द्वारा जीवों के हृदय में उत्पन्न होता है । यही तृतीय नेत्र है । क्योंकि इसी के द्वारा आत्मज्ञान उदय होता है । यही अमृत है ! 'विद्यया विन्दतेऽमृतम्, केनोपनिषद्' यही जीवन का सर्वोत्कृष्ट लक्ष्य है ।

ब्रह्मचर्य काल में समस्त विद्याओं का ज्ञान प्राप्ति ही आर्ष संस्कृति है। प्राचीन ब्रह्मचर्याश्रमों में ब्रह्मचारी वेदों का अध्ययन करते थे, उसी अध्ययन के द्वारा वे धार्मिक, विद्वान्, बुद्धिमान्, परोपकारी, सदाचारी, निरभिमानी, विज्ञानी, शान्त, दान्त, धीर, गम्भीर, चतुर, देशहितैषी, अनुभवी, देशकालज्ञ, नीरोग, निर्व्यसनी, विवेकी, सत्यप्रतिज्ञ, पाठन-क्रमज्ञ, छात्र स्वभावज्ञ, मृदुभाषी, तथा लोकप्रियादि अनेक गुण सम्पन्न होते थे। आज भी संसार उन्हीं गुणों को गा रहा है।

विद्या प्राप्ति का साधन ब्रह्मचर्य है। इसकी सिद्धि के बिना किसी प्रकार की विद्या नहीं आ सकती, जब तक भारत के बालक ब्रह्मचर्य धारण कर ऋषिकुलों में पठन पाठन करते थे तभी तक देश में विद्या की उन्नति रही, परन्तु जब से इस परिपाटी का नाश हुआ, लोगों की मानसिक शक्ति जाती रही, स्मरण शक्ति का नाम नहीं रह गया, वेदादि क्लिष्ट विषय आवें कैसे ? ऋचाओं के क्लिष्ट भाव मस्तिष्क में कैसे घुसें ? वैदिक साहित्य अध्ययन के लिये परिष्कृत तथा बृहद मस्तिष्क चाहिये। वर्तमान वायुमण्डल इस योग्य नहीं है। ब्रह्मचर्य से ही स्मरण शक्ति की वृद्धि होती है। आज वह ब्रह्मचर्य कहीं नहीं दिखाई पड़ता, जान पड़ता है कि वर्तमान संसार से रुष्ट होकर कहीं चला गया है।

मानवों ! ब्रह्मचर्य धारण करो और वेदाध्ययन में लीन रहो। वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है। इन्हीं को ईश्वर प्रदत्त होने का अभिमान है। विश्व में वेदों का ही सर्वोत्कृष्ट गौरव है, इसी के द्वारा तुम कर्म, उपासना, ज्ञान और विज्ञान प्राप्त कर सकते हो। वेद ही तुम्हें चारों फलों को देंगे। इन्हीं को जानकर तुम संसार तथा अपने और परमात्मा को जान सकोगे। अतः सावधानी से ब्रह्मचर्य्याश्रम में वेदों का अध्ययन करो। वेद[1], उपवेद[2], ब्राह्मण[3] ग्रन्थ, शाखायें, आरण्यक ग्रन्थ अङ्ग, उपाङ्ग, उपनिषद, श्रौतग्रन्थ, धर्मशास्त्र, गृह्यसूत्र, तथा

---

१ वेद---ऋक्, यजु, साम, और अथर्व ।

२ उपवेद—अर्थ, धनुर्वेद, गान्धर्व, आयुर्वेद।

३ ब्राह्मण ग्रन्थ—ऋग्वेद का. ऐतरेय, कौषीतकी
यजुर्वेद का. माध्यन्दिन, शतपथ, कण्व शतपथ, तैत्तिरीय
सामवेद का. ताण्ड्य, षड्विंश, मन्त्र, साम विधान, आर्षेय, दैवत, सँहितोपनिषद, वंश, जैमिनीय आर्षेय और तलवकार।
अथर्ववेद का—गोपथ।

शाखायें। ऋग्वेद २१, यजुर्वेद १०१, साम १०००, अथर्ववेद ९

अरण्यक ग्रन्थ---ऐतरेय, शाङ्खायन, तैत्तिरीय, और जैमिनीय आरण्यक

वेदों के अङ्ग—शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, ज्योतिष और छन्द

वेदों के उपाङ्ग—सांख्य, न्याय, योग, वैशेषिक, वेदान्त, मीमांसा

इतिहासादि आवश्यक विषयों को पढ़ो । इतना ही जानना तुम्हारे लिये यथेष्ट है ।

उपनिषद—११ प्रधान हैं । परन्तु चारों वेदों की ११८० उपनिषदें हैं । ऋग्वेद की २१ यजुर्वेद की १०९ सामवेद की १००० अथर्ववेद की ५० । ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य ऐतरेय, तैत्तिरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्य, श्वेताश्वतर

श्रौतग्रन्थ—आश्वलायन, शाङ्खायन, कात्यायन, बौधायन, आपस्तम्ब, सत्याषाढ़, लाट्यायन, ब्रह्मायण, मानव और वैतान पाये जाते हैं ।

धर्मशास्त्र—मानवधर्म शास्त्र सबसे प्राचीन है । स्मृतियां १०० हैं परन्तु प्रधान २० ही हैं—मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अङ्गिरा, यम, आपस्तम्ब, संवर्त्त, कात्यायान, बृहस्पति, पाराशर, व्यास, शङ्ख, लिखित, दक्ष, गौतम, शातातप, वशिष्ठ आदि—

गृह्यसूत्र—आश्वलायन, शाङ्खायन, पारस्कर, आपस्तम्ब, बौधायन, हिरण्य केशी, काठक, मानव, भारद्वाज, गोभिल, खादिर, कौशिक

इतिहास-रामायण, महाभारत ।

ब्रह्मचर्य और वीर्य-रक्षण

हे श्वेतकेतु ! तू ब्रह्मचर्य को धारण कर क्योंकि ब्रह्मचर्य के सेवन न करने से मनुष्य वर्णसङ्कर हो जाता है । हमारे कुल में आज तक ऐसा कोई नहीं हुआ जिसने ब्रह्मचर्य का व्रत पालन न किया हो । इसी लिये तू ब्रह्मचर्य धारण कर ।

—महर्षि उद्दालक

ब्रह्मचर्य-प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः

—योगशास्त्र

ब्रह्मचर्य को धारण करने से ही वीर्यलाभ होता है । वीर्य संसार का जीवन है । विश्व की सारी क्रियायें इसीके द्वारा सफल होती हैं । मानव जीवन इसीके संग्रह से देवत्व प्राप्त करता है । इस सृष्टि में वीर्य ही सारभूत पदार्थ है । वीर्य की रक्षा से ही ब्रह्मचर्य रक्षित रह सकता है ।

ब्राह्मण ग्रन्थों में इसकी महिमा पाई जाती है । महर्षियों का आदेश हैं कि ब्रह्मचारी मैथुन न करे । वीर्य पात करना उसके लिये भारी दोष है । यदि किसी भांति उसका वीर्य स्खलित हो जाय अथवा विकार युक्त हो जाय तो दोनों अवस्थाओं में

उसके विनाश की सम्भावना है। इसलिये ब्रह्मचारी वीर्य पात कदापि न करे।

गर्भस्थ बालक के समान ब्रह्मचर्य की उपमा दी गई है। ब्रह्मचर्य ही विद्या, बल, बुद्धि, वीर्य तथा पराक्रमादि का गर्भ है। जैसे गर्भ में बालक का शरीरादि बढता है, वैसी ही अवस्था ब्रह्मचर्याश्रम में होती है। इस लिये तब तक ब्रह्मचर्य व्रत रहे, तब तक मथुन अर्थात् वीर्य नाश से बचो! क्योंकि इस आश्रम में जीवनदाता वीर्य की रक्षा ही ब्रह्मचर्य का उद्देश्य हैं—

लिङ्गसंयोगहीनं, यच्छब्दस्पर्शविवर्जितम् ।
श्रोत्रेण श्रवणं चैव, चक्षुषा चैव दर्शनम् ॥
वाक्सम्भाषा प्रवृत्तं यत्तन्मनः परिवर्जितम् ।
बुद्धया चाध्यवसीयीत ब्रह्मचर्य्यमकल्मषम् ॥

—महाभारत

उपस्थेन्द्रिय का इन्द्रिय से संयोग तो क्या? विना कारण स्पर्श भी न हो। विषय सम्बन्धी बुरी बातों को न सुनें। न आखों से देखे और न बोले। कभी मन से भी विचार न करे। और जो काम करे प्रथम बुद्धि से विचार ले अथवा जो कुछ अध्ययन करे—उसका अर्थ यथार्थ ज्ञान के द्वारा ठीक २ निश्चय कर ले इसी को ब्रह्मचर्य कहते हैं।

अष्टधा मैथुन त्याग को ऋषियों नें ब्रह्मचर्य कहा है। ब्रह्मचर्य का मुख्य उद्देश्य वीर्य रक्षा है। इसी का प्रतिपादन करते हुये महर्षि व्यास ने योगभाष्य में लिखा है कि 'ब्रह्मचर्यं गुप्तेन्द्रियस्योपस्थस्य संयमः, अतः यह निर्विवाद सिद्ध है कि ब्रह्मचर्य धारण के लिये यत्न पर्वक वीर्य की रक्षा करे ।

वीयरक्षा से ही धर्म, सत्य, तप, दम, अमात्सर्य्य, तितिक्षा, दान, श्रुतम् , धृतिः, क्षमा, यम नियमादि तथा शारीरिक और मानसिक बलादि प्राप्त होते हैं। इसीकी साधना से अष्ट सिद्धियां प्राप्त होती हैं। वीर्यरक्षा से ही आत्मतेज बढता है। एक वार भी यह व्रत खण्डित हो जाने से अनेक वर्ष का किया कराया योग निरर्थक हो जाता है।

मानवों! इस अमूल्य धन को अपनाओ। वास्तव में इसकी तुलना में संसार की कोई भी वस्तु नहीं ठहर सकती। ऐसी उपादेय वस्तु क्या और कोई दूसरी है? बोलो! वीर्यधारियों की सन्तान! ब्रह्मचारियों के आत्मज! बोलो! उठो! इसे धारण कर ब्रह्मचर्य प्राप्त करो।

त्रिविध ब्रह्मचर्य

कायेन मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा।
सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते ॥

—महर्षि याज्ञवल्क्य

मन, वचन और शरीर से सब अवस्थाओं में सदा और सर्वत्र मैथुन त्याग को ब्रह्मचर्य कहते हैं।

प्राकृतिक, वैज्ञानिक और वैदिक भेद से ब्रह्मचर्य तीन प्रकार का है। प्राकृत अर्थात् प्रकृतिसिद्ध ब्रह्मचर्य स्थावर जंगम सभी में पाया जाता है। शेष दो ब्रह्मचर्य केवल मनुष्य में ही पाये जाते हैं। वीर्य-रक्षारूप वैज्ञानिक ब्रह्मचर्य है। शास्त्र वेद की विधि के अनुसार समयानुकूल ब्रह्मचर्य-आश्रम में प्रविष्ट हो अध्ययन करना वैदिक ब्रह्मचर्य कहलाता है।

वैज्ञानिक और वैदिक ब्रह्मचर्य चार प्रकार का होता है उपकुर्वाण, बृहत्, नैष्ठिक और अतिरात्र। अतिरात्र केवल गृहस्थों के लिये है। साधना काल अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम के लिये तीन ही भेद मान्य हैं।

(१) गृहास्थाश्रम के पूर्व आयु का चतुर्थ भाग व्रतपूर्वक निर्वाह करना उपकुर्वाण ब्रह्मचर्य कहलाता है।

(२) दो पाद अर्थात् ४८ वर्ष तक कठिन व्रत साधन करना बृहत् ब्रह्मचर्य का सूचक है।

(३) आजन्म ब्रह्मचर्य धारण करना नैष्ठिक ब्रह्मचर्य कहलाता है।

त्रिविध ब्रह्मचर्य के साधन भी तीन ही हैं, एक तो शरीर से मैथुन नहीं करना, दूसरा मन से तथा तीसरा वचन से। मन, वचन और शरीर तीनों से मैथुन त्याग करने पर उपकुर्वाण, बृहत् तथा नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का साधन हो सकता है—अर्थात् कभी मन में विषय का ध्यान न लावे। मन से कोई बुरी बात न सोचे और मन को रागों में न जाने दे। भूल करके भी कभी मन में कामोत्तेजक भावों को जागृत होने न दे। विषय-संबंधी कोई बात न कहे। मुँह से कोई अनुचित शब्द न निकाले, कभी राग, भोग, तथा रतिसम्बन्धी वार्तालाप न करे तथा बाह्य पदार्थों के संसर्ग से इन्द्रिय-तृप्ति न करे—अर्थात् शरीर से मैथुन न करे। तभी ब्रह्मचर्य का साधन हो सकता है, अन्यथा नहीं।

ब्रह्मचर्य धारण करने के लिये तीनों प्रकार के मैथुनों से बचे। केवल शारीरिक मैथुन का त्याग करने पर ही कोई ब्रह्मचारी नहीं हो सकता। माना कि तुम शरीर से मैथुन नहीं करते, विषयों का वार्तालाप करते हो, मन में मैथुन का चित्र

खिंचा है, फिर इसके जाल से कैसे बच सकते हो। मनुष्य अपने मन के अनुसार बनता है। तुम्हारी मानसिक वृत्तियाँ तुम्हें बरबस अपनी ओर खैंच लेंगी, तुम्हारा शरीर-ज्ञान रक्खा रह जायगा। तुम सिद्धान्त से गिर जाओगे। इसी प्रकार कोई भी केवल मन तथा वचन से भी इस व्रत को पूर्ण नहीं कर सकता। एक ही साथ त्रिविध साधन के किये बिना, यह महान व्रत अखण्ड पूर्ण नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त अध्ययनकालीन ब्रह्मचर्य भी तीन प्रकार का है। उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ, उपकुर्वाण अर्थात् चौवीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर वेदादि क्रियाओं में लीन रहना कनिष्ठ, छत्तीस वर्ष तक मध्यम तथा अडतालीस वर्ष तक साधन करना उत्तम कहलाता है।

ब्रह्मचर्य के नाम पर भौं सिकोडने वाले मानवों! बुरा मत मानो! तुम्हारे हृदय को दुखाने के लिये नहीं कहता। प्रमादियों! प्रमाद—आलाप छोड़ो। मन को बहुत दौड़ा चुके। शरीर को खूब नष्ट किया, पवित्र वाणी को अधिक से अधिक भ्रष्ट कर चुके। अब तो इन तीनों को सुधारो।

जीवन कुछ काम करने के लिये है। संसार कर्मक्षेत्र है। ज्ञानियों ने इसे कर्म सागर कहा है। ब्रह्मचर्य ही इस अशान्त महासागर से पार करने वाला पोत है। कायिक, वाचिक और

मानसिक मैथुन त्याग रूपी डाँड़ ही इस पोत को पार कर सकेंगे। इन डाँड़ों को अपनाओ।

कर्म–सागर अशान्त है। चतुर्दिक् अन्धकार है। विवेक के प्रकाश म ब्रह्मचर्य पोत पर चढ़ो। बुद्धि ज्ञान और तीनों को तीन डाँड़ पकड़ा दो और आप अध्ययनरूपी पतवार लेकर बैठ जाओ। फिर क्या कुछ ही समय में इस उद्विग्न महानिधि को पार कर जाओगे। निर्भय हो आगे बढ़ो। हृदय में साहस करो। तुम्हारा बेड़ा पार हो जायगा।
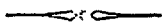
ब्रह्मचर्य और वर्णाश्रम

परमात्मा में चार प्रयोजनों के लिये चार आश्रमों को नियत किया। सब से प्रथम ब्रह्मचर्य आश्रम विद्या और शिक्षा के लिये, द्वितीय गृहाश्रम धन-संचय, तृतीय वानप्रस्थ तप के अनुष्ठान के लिये तथा चतुर्थ आश्रम सन्यास वेदादि विद्या और धर्म के नित्य प्रकाश करने के लिये निर्माण किया है।

—यजुर्वेद

वर्णाश्रम सृष्टि का स्वरूप है। इसी की मर्य्यादा से सुधरा हुआ संसार चल रहा है। ऋषियों ने सृष्टि-सञ्चालन

तथा मानव-जीवन को सुखमय साङ्गोपाङ्ग पूर्ण करने के लिये ही वर्णाश्रमों की सृष्टि रची थी, बहुत काल तक यह धारणा मर्य्यादित रही, परन्तु कालचक्र की झपट में पड़ कर आज निर्मूल सा हो रहा है।

पूर्व काल में अर्थात् सृष्टि के आरम्भ में चार वर्णों की गुण कर्मानुसार उत्पत्ति हुई, चारो वर्णों का जीवन विकास के लिये चार आश्रमों का निर्माण हुआ। प्राचीन काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र चार वर्ण थे। ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वान-प्रस्थ और सन्यास चार आश्रम थे। इन्हीं चार आश्रमों के के द्वारा उपरोक्त चारो वर्णों की उन्नति होती थी। इन्हीं चार आश्रमों के पालन से वडे २ धीर-वीर, ऋषि, मुनि और महात्मा होते थे।

ब्राह्मण का गुण धर्म, क्षत्रिय का वल, वैश्य का धन और शूद्र का सेवा है। धर्म, वल, धन और सेवा इन चार शक्तियों के फल रहने पर ही राष्ट्र का निर्माण होता है। जव तक ये चारो शक्तियाँ वलिष्ठ रहती हैं तव तक वह राष्ट्र सार्वभौम शासन का अधिकारी रहता है, इनके नष्ट हो जाने पर देश का पतन अवश्यम्भावी है। भारत के इतिहास को देखो। जव तक इस देश में चारो शक्तियाँ विद्यमान थीं सर्वत्र आनन्द था।

वेद पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना और दान लेना ये छः कर्म ब्राह्मणों के हैं। वेदादि विद्याओं को पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना प्रजापालनादि क्षत्रियों के कर्म हैं। विद्या, यज्ञ, व्यापार, दान, कृषि आदि कर्मों में तत्पर रहना वैश्यों का कर्म है तथा उपरोक्त तीनो वर्णों की संयमपूर्वक सेवा करना शूद्रों का कर्म बताया गया है।

उपरोक्त चार आश्रम इन चारो वर्णों के लिये ही बनाये गये हैं।

उपनयन संस्कार के पश्चात् गुरुकुल में जाकर ईश्वर-चिंतन, वेदाध्ययन तथा वीर्य-रक्षा करते हुये आयु का प्रथम भाग व्यतीत करना ब्रह्मचर्य आश्रम कहलाता है। इसकी अवधि-कम से कम पचीस वर्ष मानी गई है। यदि कोई इससे भी अधिक पालन करे तो सर्वोत्तम।

वेदादि विद्याओं में पूर्ण हो। उपकुर्वाण ब्रह्मचर्य हो जाने पर गृहाश्रम में प्रवेश कर गुणकर्मानुसार कन्या से विवाह कर। सर्वदा सत्य धर्मानुसार आयु का द्वितीय भाग व्यतीत करे। सन्तानोत्पत्ति कर उसे पूर्ण योग्य बना देवे—यही गृहाश्रम का का काम है। इसकी अवधि २५ वर्ष से ५० वर्ष तक है। सन्तान के योग्य हो जाने पर स्त्रीसंयुक्त विरागी हो एकान्त वास के द्वारा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करते हुये योग साधन

में कटिबद्ध रहना वानप्रस्थ का कार्य्य है । इसकी अवधि ५० वर्ष से ७५ वर्ष तक है । पश्चात् उसी से भी पृथक हो आयु के चतुर्थ पाद में सांसारिक कर्मों से पृथक् हो कर आराधना करना सन्यास कहलाता है । इसी अवस्था में प्राणी सत् चित् आनन्द स्वरूप में मिल जाता है । इसकी अवधि ७५ वर्ष से आरम्भ होती है ।

आश्रम क्रमशः एक दूसरे से क्लिष्ट हैं । ब्रह्मचर्य कठिन है ही, यही चारों आश्रमों में प्रधान है, इसी के पुष्ट होने पर शेष तीनों आश्रम सुदृढ़ रह सकते हैं अन्यथा नहीं । परन्तु गृहाश्रम इससे कम नहीं, वह तो निर्वलों के योग्य है ही नहीं । माहात्माओं का वचन है कि दुर्वलेन्द्रिय गृहाश्रम में प्रवेश न करे । यह वही जीवन है जो शेष तीनों आश्रमों को स्वरक्षित रखता है—इसी के द्वारा सभी का प्राण चलता है । सच पूछो तो यही है कि गृहाश्रम ही सब का आधार है । वानप्रस्थ अत्यन्त कठिन आश्रम है । उद्दण्ड इन्द्रियाँ इसी समय शान्त होती हैं । चञ्चल मन यहीं स्थिर होता है । बिगड़ा शरीर इसी के द्वारा सुधारता है । सन्यास तो और भारी क्लिष्ट है । इस प्रकार उंपरोक्त चारो वर्ण इन्हीं चारों आश्रमों के आधार पर चलते थे, जिससे चारो पदार्थ उनके करतलगत रहता था ।

वर्णाश्रम में ब्रह्मदृष्टि

षट् कर्म द्विज के करि हवन पावे अनादि ब्रह्म को।
शव रूप से शिव रूप हो कर ले सफल निज जन्म को॥
था जानना सो जानकर कृतकार्य्य नर जो हो रहा।
ज्ञानी अमानी संत ने ब्राह्मण उसे ही है कहा॥
माया किला दुर्गम्य अति शत छिद्र कर के तोड़ता।
आतम अनातम युद्ध में जो मुख कभी नहीं मोड़ता॥
साम्राज्य निश्चल पाय के आरूढ़ जा पै होय है।
ज्ञानी अमानी संत मति महँ शूर क्षत्रिय सोय है॥
टोटा समझकर वास्तविक धंधे जगत के त्यागता।
दिन दिन अधिक हों दिव्य गुण ऐसे वणिज में लागता॥
खेती करे श्रवणादि की धन पूर्ण हो निज आत्म से।
ज्ञानी अमानी संत सच्चा वैश्य कहते हैं उसे॥
आसक्ति लौकिक वस्तु में करना यही है शूद्रता।
यह भाव तजि भजि ब्रह्म को शूद्रत्व मूल मिटावता॥
दासत्व था मैंपन खरा, मैंपन गया स्वामी बना।
ज्ञानी अमानी संत कहते शूद्र निश्चय जानना॥
हैं भूत पांचो देह में जगभूत का ही सार है।
वह ब्रह्म अणु अणु में बसा तो ब्रह्ममय संसार है॥

चित वृत्ति ब्रह्माकार करि चित सेज ऊपर सोवता।
ज्ञानी अमानी संत मति ब्रह्मचारी सोइ होवता॥
आनन्द रूपी मोक्ष ही जिसके ग्रहण के योग्य है।
संसार में उसके सिवा नहीं अन्य कुछ भी भोग्य है॥
ममता नहीं घरवार की ब्रह्मांड भर घर मानता।
ज्ञानी अमानी संत उसको ही गृहस्थी जानता॥
मन रूप वन को शुद्धकरि दुर्वासना तृण काटके।
सत्संग की कुटिया वना निःसंगता से पाट के॥
एकान्त कुटिया में वसे तजि क्लिष्ट रूपी क्रूर को।
ज्ञानी अमानी संत मति वनवासि सोई शूर हो॥
अपने सिवा सब कुछ तजे नहिं सृष्टि रक्खे दृष्टि में।
भींगा करे निज रूप की आनन्द रूपी वृष्टि में॥
विचरे सदा सद् पंथ में चित सेज ऊपर सोवता॥
ज्ञानी अमानी संत मति सन्यासि सोई होवता॥

ब्रह्मचर्य और ब्रह्मचर्याश्रम

चारों आश्रमों के यथावत् होने के निमित्त ब्रह्मचर्य आश्रम का पूर्ण रूप से पालन करना योग्य है।

—यजुर्वेद

आयु का प्रथम चरण अर्थात् पच्चीस वर्ष की अवस्था तक ब्रह्मचर्याश्रम है। यही अवस्था मनुष्य को पूर्ण तथा प्रत्येक कार्यों के योग्य बनाती है, इसी अवस्था में पुरुष समस्त सिद्धियों को प्राप्त करता है। इसी के सुधारने से सम्पूर्ण जीवन सुधर सकता है। प्राचीन पूर्वज इसी अवस्था में जितेन्द्रिय रह कर शारीरिक और मानसिक बल से युक्त हो, सब काल में आनन्द का उपभोग करते थे।

यह पूर्व ही कह आये हैं कि यज्ञोपवीत हो जाने पर बच्चे गुरुकुल में चले जाते थे। उन्हें सदाचार की शिक्षा दी जाती थी। उनमें उत्तम संस्कार भरा जाता था। वे सब प्रकार की विद्यायें सीखकर विद्वान् धर्मात्मा तेजस्वी तथा परम ऐश्वर्य्यवान बनते थे। परन्तु शोक! ब्रह्मचर्याश्रम की प्रणाली एक दम पलट गई।

ऋषियों ने व्रत ब्रह्मचर्य को नित सन्माना।
सकल व्रतों का सदा इसे सिरताज बखाना॥

चढ़ती है जो ज्योति वदन पर इस व्रत वर से ।
मिलती है जो शक्ति भुजों को इस जलधर से ॥
वह नहीं अन्य विधि से कहीं, किसी भाँति से नर पा सके ।
वह खाय हजारों औषधें, सब मंत्रों की दिसि तके ॥

ब्रह्मचर्याश्रम धन्य है। इसी में योग्य सचरित्र विद्यार्थी ज्ञानोपार्जन करते थे, महर्षियों की कृपा से समस्त सिद्धियों को प्राप्तकर देश का गौरव बढ़ाते थे, आज के दुश्चरित्र विद्यार्थियों को देखो। वर्त्तमान शिक्षा-प्रणाली का लाभ उठा रहे हैं? इनके शरीर और मन को देखो। इनके रहन-सहन आचार-विचार पर दृष्टि डालो। पश्चात् वैदिक काल के सच्चरित्र विद्यार्थियों के लक्षण देखो—

उन्नत ललित ललाट, सुचिक्कण दमक रहा हो ।
सरस सरल दृग दृष्टि, ज्योति से चमक रहा हो ॥
दीप्तिमान गम्भीर भाव-भूषित मुखमण्डल ।
सुदृढ़ पृथुल भुजदण्ड, विशद जिसका वक्षःस्थल ॥
सब अंग सुडौल पवित्र हों, ब्रह्मचर्य पौरुष उदित ।
श्रम शील निरालय साहसी, विद्यार्थी सो सच्चरित ॥
जननि जनक की भक्ति सहित सेवा में तत्पर ।
हो निश्चल विश्वास प्रेम श्रद्धा ईश्वर पर ॥

पुस्तक, वस्तु शरीर वस्त्र में रखे स्वच्छता ।
कभी स्त्रियों की ओर न निरखे तजे तुच्छता ॥
शुभ सत्य वचन बोले सदा, करे सत्य व्यवहार नित ।
हो सभ्य करे सद्गुण ग्रहण विद्यार्थी सो सच्चरित ॥
जिससे घृणित विकार न उपजें किसी समय में ।
शील विनय सुविचार धैर्य बल बसे हृदय में ॥
सबसे मिले सप्रेम प्रसन्न सदा रहता है ।
कभी न कटु अश्लील शब्द मुँह से कहता है ॥
जो चार जुआरी जार की संगति में समझे अहित ।
जो समय न नष्ट करे वृथा, विद्यार्थी सो सच्चरित ॥
जिसमें आलस भ्रांति, प्रमाद न चंचलता है ।
गुरु को आज्ञा मान नियम से जो चलता है ॥
ब्रह्मचर्य व्रत धार विमल मेधा के बल से ।
रहता है सर्वोच्च, जाँच के उत्तम फल से ॥
उत्साही विद्याध्ययन में सदाचारप्रिय शांत चित ।
सत्कीर्ति सुजीवन का रसिक, विद्यार्थी सो सच्चरित ॥

भारतीयों ! ब्रह्मचर्य के गुरुकुलों का प्रचार करना आवश्यक है । जब तक उपरोक्त गुणकर्मधारी ब्रह्मचारी देश में न होंगे । तब तक कल्याण नहीं । देशोद्धार की आशा करना भूल है, बढ़ो, आगे बढ़ो और प्राचीन संस्कृति का

प्रचार करो। ब्रह्मचर्य को मत भूलो। इसे अपनाओ। अपनी सन्तानों को योग्य बनाओ। उन्हें सदैव ब्रह्मचर्य की शिक्षा दो, देखो।

बृह धातु का सदा से बढ़ना है अर्थ होता,
बढ़ता शरीर भर में शुभ सत्व शक्ति भारी।
उस शक्ति प्राप्त की है 'चर्या' कड़ी प्रणाली,
इस ब्रह्मचर्य से ही उन्नति रही हमारी॥
मास्तिष्क भी बली हो विद्या भली मिलेगी,
कीर्ति क्षमत्व होगा वह ब्रह्मचर्य भारी।
जीवन बड़ा मिलेगा सौभाग्य युक्त होगा,
श्रम सिद्ध वृद्धि होगी अति निर्मला तुम्हारी॥

ब्रह्मचर्य और गृहाश्रम

गृहस्थ ही यज्ञ करता वही तप और ज्ञान देता, उक्त तीनों आश्रम उसी से जीते हैं। इसलिये गृहाश्रम सबसे बड़ा एवं श्रेष्ठ है।

महर्षि शङ्ख—

महर्षियों ने गृहस्थाश्रम को सब आश्रमों का मूल माना है, जिस प्रकार वायु के आश्रय समस्त सांसारिक प्राणी रहते

हैं उसी प्रकार अन्य आश्रमी (ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और सन्यास) अपनी-अपनी जीविका के लिये इस आश्रम का आश्रय लेते हैं। जिस प्रकार सम्पूर्ण नदियाँ समुद्र में जाकर विश्राम पाती हैं उसी प्रकार सर्व आश्रमों का विश्रामस्थल गृहाश्रम ही है। चारो आश्रम इसीसे पृथक् २ उत्पन्न होते और अन्त में इसी में प्रविष्ट हो जाते हैं।

गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ है, इसका प्रारम्भ उपकुर्वाण होने पर होता है। महर्षियों की आज्ञा है कि ब्रह्मचर्य काल में धर्म-पूर्वक वेदादि सच्छास्त्रों को पढ़कर पूर्ण योग्य हो, स्त्री या पुरुष गृहाश्रम में प्रवेश करें। विना शक्तिसम्पन्न हुये, इस आश्रम में प्रवेश करना अपने को नष्ट कर देना है। गृहाश्रम धारण करने के लिये प्राणियों को बलवान् तथा वीर्यवान होना चाहिये।

ब्रह्मचर्य गृहाश्रम का कारण है। इसी को धारण कर हम सच्चे गृहाश्रमी बन सकते हैं, बलिष्ठ शरीर रहने पर ही तुम इस व्रत को साध सकते हो, परिपक्व वीर्य होने पर ही तुम वीर्यवान संतान उत्पन्न कर सकते हो। शक्ति सम्पन्न होने पर ही तुम अपने शत्रुओं को हटा सकते हो, ज्ञानवान होने पर ही इस अशान्त निधि को पार कर सकते हैं। विद्या बुद्धि प्रवीण होने पर ही तुम इस अंधकार में आगे बढ़ सकते हो। अतः यह निर्विवाद सिद्ध है कि गृहाश्रम का मूलाधार ब्रह्मचर्य है।

यह व्रत वर पच्चीस बरस तक जो नर पालै ।
सिंह सरिस सो गजै सदा रोगों को घालै ॥
लखौं जियौं अरु सुनौ चलौं शत बरस अदीना ।
विदित प्रार्थना है जु वेद में यह कालीना ॥
वह जग में ऐसे पुरुष को, पूरण होती है सदा ।
जो पहले कर व्रत पूर्ण, करता है पत्नी सदा ॥

हा ! शोक ! आज वह प्राचीन गृहाश्रम कहाँ ! वह हरिचन्द्र की सत्यता, कर्ण का दान, मारेध्वज की अतिथि-सेवा, भीमार्जुन की वीरता, कहाँ ? वह स्वर्गतुल्य जीवन आज क्या हो गया ? अरे यह तो नर्क से भी बढ़ गया। एक समय था जब सभी लोग गृहाश्रम से शिक्षा प्राप्त करने आते थे। बडे २ ऋषिराज-ब्रह्मज्ञानी गृहाश्रमियों से अपनी शंकायें मिटाते थे। बड़े २ आत्मज्ञानी इस के संसर्ग से निकलते थे। आज उस श्रेष्ठ आश्रम की छीछालेदर देखो।

आज उसी के बच्चे दुर्गुणी बन रहे हैं। वह स्वयं पापागार हो रहा है, न वह विद्या न वह बुद्धि, न वह बल और न वह विक्रम रह गया, अब तो कथन मात्र शेष रह गया है। पूर्वकल में जो २ इनका उद्देश्य था—आज अक्षरशः प्रतिकूल है। सत्यधर्म किधर है ? यज्ञ, दान, व्रत तथा आचार क्या हुये ? वह उच्च अतिथि-सत्कार का भाव किधर छिप गया !

सब से अधिक दुःखदायी विषय तो यह हुआ कि 'अतिरात्र' का लोप हो गया।

बर्तमान गृहाश्रमियों! क्या ऐसे ही जीवन पापाचरण-पूर्ण रखोगे? क्या मनुष्यता की तिलांजुलि ही दे दोगे। क्या चाहते हो? अमृत या विष! अमृत! तो आओ और ब्रह्मचर्य-पीयूष को पीओ वही तुम्हें वास्तविक गृहाश्रमी बनायेगा।

जो ब्रह्मचर्य होके निज वीर्य शक्ति रोके।
उसका महत्त्व देखो कितना विचित्र भारी॥
श्री राम मूर्त्ति होके तुम को जता रहे हैं।
अपना प्रभाव सोचें क्यों हो रहे अनारी॥
भीमादि भीम धामा कितने बली हुये हैं।
जिनकी सुकीर्त्ति बल की अब भी यहाँ पसारी॥
वह शक्ति कौन सीथी बल-पूर्ण तेज क्या था?
प्रतिभा अहा निराली क्या हो गई हमारी?
प्राचीन कीर्त्ति अपनी कैसी छटा दिखाती।
कैसी रही महत्ता उस काल में हमारी!
पर आज कल कला क्यो अत्यल्प हो रही है!
क़र्पूर हो गई है तेजस्विता हमारी॥

ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थ

वैखानस, वानप्रस्थ तपस्वी, वालखिल्य अर्थात् मुनिजन एवं अन्यान्य ऋषि-महर्षिगण तपोनिष्ठ महात्मा निश्चयपूर्वक ब्रह्मचर्य द्वारा सभी सिद्धियों को प्राप्त किये। अर्थात् दीर्घजीवी हुये।

—चरकसंहिता।

वानप्रस्थ त्याग का सोपान है। इसी अवस्था में अभ्यास और वैराग्य के द्वारा चंचल वृत्तियों पर विजय प्राप्त की जाती है। यही सर्वोत्तम साधन का काल अर्थात् तपस्या का समय है। गृहाश्रम का विश्रामालय यही है। इसीको ग्रहण कर हम सन्यासी हो सकते हैं।

वानप्रस्थ तृतीय आश्रम है। यह ब्रह्मचर्य तथा गृहाश्रम से क्लिष्ट और विस्तृत है। उद्दण्ड इन्द्रियों को सन्मार्ग पर लगाना—इसीका काम है। कुटिल मन को यही शान्त और सुस्थिर बनाता है। यही चित्त को शुद्ध और पवित्र करता है। इसी आश्रम में प्रवेश करने पर माया में लिप्त मानवों का आवरण दूर होता है। जिससे प्राणी अपने की पहचान कर योगयुक्त हो जाता है।

वर्तमान संसार में वानप्रस्थ कहाँ? करोड़ों में कहीं एक, वे भी पूर्व नियमानुसार नहीं। अब तो यहाँ अस्सी २ वर्ष के

खूँसट बारह— बारह वर्ष की कन्याओं के फेर में घूम रहे हैं। लाखों नारकी गौरी और रोहिणी पर बलात्कार कर रहे हैं। सहस्रों पापी अपनी वृद्धा स्त्रियों को छोड़ नवयुतियों के सतीत्व को भ्रष्ट कर रहे हैं—यह मूर्ख अनपढ़े गँवारों का हाल नहीं है, बड़े २ धर्मध्वजी समाज के अगुओं का—पढ़े, लिखे समाज सुधारक मुखियों का, धत्तेरी समाज और देश की। तब क्यों न ऐसा पापी देश रसातल जाय।

अवस्था ढल चुकी है। गाल चपक गये हैं। आँखें धँस गई हैं। मुख दन्तहीन हो गया है। बोलने में जीभ लटपटाती है। चलने में पैर थरथराता है और कार्य्य करने में हाथ काँपता है फिर भी तृष्णा के मुँह में पड़े हुए, आज लाखों कुलांगार वानप्रस्थ का नाश कर रहे हैं। धर्म कहता है कि तुम एकान्त वन में जाकर योग करो, परन्तु वर्त्तमान कलियुगी बुड्ढे कामिनियों की खोज में गठरियाँ खर्च कर रहे हैं। हा! धन और धर्म नष्ट कर रहे हैं। प्रकृति कहती है कि तुम शान्ति धारण कर वन में निवास करो। आप रङ्गमहल में पड़े रहते हैं। कामिनियों के कटाक्षों से घायल हो ज्ञानान्ध बने रहते हैं। सत्य कहता है तुम धर्मी बनो। आप अधर्माचरण करते हैं। कैसे निस्तार हो और कैसे उद्धार हो। भारतीयों विचारो। वानप्रस्थ की स्मृति करो।

गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः ।
अपत्यस्यैव चापत्यं, तदारण्यं समाश्रयेत् ॥

जब गृहस्थ अपने शरीर को बलहीन होता देखे, और घर में पुत्र—पौत्र हो जाँय, तब वन में प्रवेश करे। एकान्त वास कर साधना करे, धीरे २ त्याग और तप की वृद्धि करे, सांसारिक आडम्बरों को त्याग दे। माया और मोह से दूर हो जाय,—अर्थात् निर्मोह प्राप्त करे, किसी विषय में लिप्त न हो, सदैव गम्भीर मनोवृत्ति रक्खे, शान्तिपूर्वक प्रकृति, शरीर और आत्मा का अनुसन्धान करे।

स्वयं ज्ञानवान हो। संसार को ज्ञान का उपदेश दे। परोपकार अपने जीवन का उद्देश्य समझे। स्वार्थ को त्याग परमार्थ को गहे। बिना आशा के उपकार करे। अर्थात् संसार की निःस्वार्थ सेवा करे। जहाँ २ आवश्यकता हो धर्म-प्रचार-कार्य्य करे। विद्या-कला-कौशल की वृद्धि करे। ब्रह्मचारी एवं गृहस्थों को उचित शिक्षा दे, उन्हें सदाचार का पाठ पढ़ावे, वीर्य-रक्षा का मन्त्र बतावे तथा सन्मार्ग में लगावे। सदैव नवीन वस्तुओं का आविष्कार कर जनता में प्रचार करे। विश्व की उन्नति का ध्यान रखे।

हिंसा से स्वयं बचे और संसार को अहिंसा का उपदेश दे। स्वयं इन्द्रियों पर अधिकार करके योग द्वारा परमात्मा में

मन लगावे तथा ईश-भक्ति का प्रचार करे। सर्वदा कन्दमूल फल खाकर अपनी क्षुधाग्नि बुझावे, कभी पराधीन जीवन न बितावे। मनरूपी वन को शुद्ध कर सर्वत्र ब्रह्मानन्द का उपभोग करे।

ब्रह्मचर्य और योगाश्रम

इसी ब्रह्मचर्य व्रत के पालन करने से ऋषि लोग तन्द्रा को जीतते थे। पापाचरण तथा निरान्तक से सर्वथा रहित होते थे और समाहित अर्थात् समाधिस्थ शुद्ध अन्तःकरण, पुरुषार्थी, बुद्धिमान्, स्मृतिमान् तथा बलवान् होते थे।

—महर्षि चरक

योगाश्रम ब्रह्मचर्य का विकट साधन है। यह आश्रम वास्तव में बड़ा कठिन है, इसमें वही पुरुष पैठ सकता है जो राग-मोहों से पृथक् हो, सुख और दुःख को समान जानता हो, जो हानि और लाभ में भेद नहीं मानता हो, जो जीवन और मरण के तत्त्व का ज्ञाता हो तथा ब्रह्मचर्य के द्वारा जिसने इन्द्रियों, मन, बुद्धि और चित्त को स्थिर कर लिया हो। यह आश्रम स्कूल के विद्यार्थियों का जोश नहीं है।

आज इस आश्रम को लोगों ने खेल समझ लिया है। जहाँ कहीं घर में खटपट हुई, कहाँ जा रहे हैं, सन्यासी बनने। जहाँ नारी मुई और घर की सम्पत्ति नष्ट हुई, तत्काल मुंड मुडाये और तीन सेकेण्ड में सन्यासी बन गये। आजकल तो गेरुवा वस्त्र पहिन कर सबके घर में जा-जाकर मौज उड़ाना ही इस आश्रम का लोग अर्थ समझ गये हैं।

देखो, आज भारत में, उस पवित्र भूमि में जहाँ पूर्वकाल में योगाश्रम का प्रचार था, दश-दश वर्ष के बालक सन्यासी बने घूमते हैं। जिन्हें शास्त्र का बोध नहीं, तत्त्व का ज्ञान नहीं, विचार विमल नहीं हुआ—मूर्खों ने उन्हें सन्यासी बना दिया। आज देश के सहस्रों महन्त और घुमक्कड़ साधुओं के दल ऐसे ही गृहस्थों के सुन्दर लडकों को ढूँढ़कर शिष्य बना लेते हैं। चेले का चेला और साथ ही व्यभिचार का साधन भी, और क्या चाहिये ? गैरिक वस्त्रधारी शिशु-सन्यासी की नहीं-नहीं, प्रत्यक्ष सन्यास की छीछालेदर।

सन्यास को तीर्थों म देखो ! छोटे २ बच्चे, बच्चियाँ तथा युवतियाँ योगी और योगिन बनकर अलख जगा रहे हैं। दिन भर भीख माँगती औरँ रात्रि में अपने गुरुस्थानों में चली जाती हैं। वहाँ धूर्तराज कलियुगी दुष्ट मुसडों के पेट भरती तथा सेवा करती हैं। ऐसा देखा गया है कि रात्रि में उन पर अप्राकृतिक

दुराचार भी होता है। बहुत सी युवती योगिनियाँ गुरुओं तथा उनके चलों से गर्भवती हो जाती हैं, जिससे उन्हें महा अधर्म करना पड़ता है। बहुत से बच्चे भगंदर के शिकार हो जाते हैं। कुछ सुन्दरी सन्यासिनियां लम्पटों के जाल में फँस जाती हैं।

हतेरे सत्यानाशी सन्यास की! यह सन्यास क्या यह तो सर्वनाश है। इन साधुओं और योगी-योगिनियों के समाज ने देश को वर्णशंकर बना डाला। हमने स्वयं एक नहीं, सहस्रों महन्तों, अनेकों दुराचारी साधुओं तथा योगिनियों के भयानक कुकर्मों का फल देखा है। सैकड़ों साधुओं के भयंकर निंद्य रोगों की चिकित्सा किया है। जिसका अश्लील वर्णन नहीं किया जा सकता। भारतीयों! धर्म के नाम पर चिल्लाने वाले धर्मांधों! क्या तुम अंधे हो, देखते नहीं। इन मोटे २ मुसंडे व्यभिचारी साधुओं और महन्तों की करतूतों को नहीं जानते, क्या अब भी तुमसे कुछ छिपी है, क्या तुम्हें अपने समाज का इसी प्रकार नाश करना अभीष्ट है?

सन्यास सर्वोच्च आश्रम है। योगसाधन इसका मुख्य उद्देश्य है। इसी अवस्था में मनुष्य योग धारण करता है। यही समस्त सिद्धियों का समय है, मनुष्य इसी अवस्था में आत्म-स्वरूप हो आनन्द का उपभोग करता है।

'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' चित्तवृत्तियों के निग्रह करने

का नाम योग है। इसे सिद्ध करने के लिये उग्र ब्रह्मचर्य की आवश्यकता है। व्यभिचारी और लम्पट इसे पूर्ण नहीं कर सकते। इन्द्रियों का स्वामी मन और मन का स्वामी वायु है। प्राणे वायु के निरोध के लिये यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि अष्टांग योग करना उचित है। यही योगाश्रम की शिक्षा तथा ब्रह्मचर्य का साधन है।

(१) यम–१ अहिंसा, २ सत्य, ३ अस्तेय, ४ ब्रह्मचर्य, ५ अपरिग्रह।

(२) नियम–१ शौच, २ सन्तोष, ३ तप, ४ स्वाध्याय, ५ प्रणिधान।

(३) आसन ८४ हैं, प्रधान सिद्धासन, पद्मासन ही है।

(४) प्राणायाम—पूरक, कुंभक, रेचक।

(५) प्रत्याहार—इन्द्रियों को विषयों से हटाना।

(६) धारणा—अद्वितीय वस्तु को मन में धारण करना।

(७) ध्यान—अद्वितीय वस्तु को शनैः २ मनोवृत्ति के प्रवाह मे स्थिर करना।

(८) समाधि–सम्प्रज्ञात अर्थात् त्रिपुटीसहित।

सन्यास योग आश्रम है। वानप्रस्थ समाप्त होने पर इसका काल आरम्भ होता है; इसी अवस्था में हमारे पूर्वज विरक्त हो धर्म प्रचार करते थे, जहाँ जहाँ उपदेश की आवश्यकता पड़ती थी जाकर जनता की सेवा करते थे। उनका उद्देश्य सेवा और साधना के अतिरिक्त और कुछ न था। वे सदैव

आशा और आनन्दपूर्ण रहते थे। समस्त पृथ्वी ही उनका घर और संसार के सभी प्राणी उनके बन्धु होते थे। वे सदैव सम्पूर्ण विश्व को शांति का पाठ पढ़ाते थे।

वर्तमान साधुओं, सन्यासियों और योगाश्रमियों को उनका अनुकरण करना चाहिये। सबों को ब्रह्मचर्य द्वारा वीर्य-रक्षा करते हुये देश के लिये आदर्श बनना चाहिये। तभी बिगड़ा देश सुधर सकता है। नहीं तो वर्तमान योगाश्रम,—बची बचायी शक्ति को भी अपने कामाग्नि में आहुति दे देगा।

ब्रह्मचर्य और वीर्य।

वीर्य रक्षा ही ब्रह्मचर्य का अर्थ है। जीवों! वीर्य को धारण कर अखण्ड ब्रह्मचारी बनो—

—वेद भगवान्

वीर्य ही शरीर-संसार का सर्वस्व है। इसी पर मनुष्य का सब कुछ निर्भर है। स्वास्थ्य, बल, तेज और पराक्रम इसीसे प्रगट होते हैं। सम्पूर्ण गुणों को इसीसे उदय होते तुम देखते हो। यह संसार वीर्य का एक अद्भुत खेल है, महान् ब्रह्मचर्य जिसकी महत्ता का ब्रह्मादि देवों ने मुक्तकंठ हो गान किया है। वह भी वीर्य ही है।

वीर्य ही संसार है। इसी के बल पर लोक-लोकान्तर टिके हैं। अगम सृष्टि का रहस्य वीर्य के परमाणुओं में ही पाया जाता

है। सूर्य्यादि लोक मान पदार्थों मे यही है, चराचर इसी के द्वारा चल रहा है तथा सम्पूर्ण चैतन्य का अस्तित्व इसी पर निर्भरित है।

यदि संसार से वीर्य शब्द उठ जाय, परमात्मा वीर्यहीन हो जाय, समस्त चराचर भूतों के शरीर से इसे खींच लिया जाय, अथवा विश्व से वीर्य नाम का पदार्थ निकाल लिया जाय तो क्या शेष रह जायगा? कुछ भी नहीं। न तो कोई ईश्वर रहेगा, और न जीव, न यह सृष्टि रहेगी और न माया का आवरण, संसार प्रलयरूप में परिवर्तित हो जायगा। सर्वत्र प्रलयाब्धि के अतिरिक्त कुछ भी शेष न रहेगा।

वीर्य से ही संसार टिका है, उत्पत्ति तथा पालन का यही अर्थ है। हम इसी के द्वारा चलते हैं, काम करते हैं—जीवन सग्राम के वड़े २ शत्रुओं से विषय युद्धों में विजय पाते हैं। मेरे समस्त उन्नतियों का यही कारण है। मुझे यही उद्योगी तथा पौरुपी वनाता है, इसी की शक्ति से मैं असम्भव से असम्भव कार्य्यों को सम्भव कर लेता हूँ, अप्राप्य विपयों को प्राप्त कर लेता हूँ तथा असाध्यों को साध्य कर लेता हूँ। वीर्य ही मेरे परलोक स्वासों का सारभूत पदार्थ है। तुम्हारा जीवन इसी पर टिका है। जिस दिन इस प्राणप्रिय वस्तु का वास शरीर में नहीं रहेगा, उस दिन ईश्वर भी इसे नहीं रोक सकता।

इस अमूल्य वीर्य की रक्षा करना ही ब्रह्मचर्य का अर्थ है। इसी के पुष्ट और परिपक्व होने पर तुम ब्रह्मचारी हो सकते हो। इसी के धारण करने पर तुम मनुष्य बन सकते हैं। यही एक संसार में जानने योग्य विषय है। इसी के जानने से तुम सब कुछ मान सकते हो। यही एक धारण करने योग्य पदार्थ है, इसे धारण करते ही समस्त गुण एवं ज्ञानादि स्वयं उदय हो जाते हैं। यही एक अपनाने योग्य वस्तु है, जिससे स्वयं बल विक्रमादि प्रगट हो जाते हैं। इसके विपरीत, इसके त्यागने पर, इसे हटा देने पर इससे पृथक् हो जाने पर निश्चय, ब्रह्मचर्य आयु बल तेज बुद्धि तथा श्रीधनादि का नाश हो जाता है।

वीर्य सम्पूर्ण सिद्धियों का देनेवाला है, जो इसे धारण करता है, वह ब्रह्मचारी और जो इसका तिरस्कार करता है वह अत्याचारी और व्यभिचारी कहलाता है। उसकी कभी सिद्धि नहीं होती वह सदा जन्म-मरणादि सांसारिक विपत्तियों को भोगता रहता है। शरीर का सारा खेल वीर्य का है। यही शरीर का राजा है, राजा के बिना शरीर की रक्षा कैसे हो सकती है ? शरीररूपी वृक्ष में अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्षरूपी फल कैसे लग सकते हैं ? इन्द्रियाँरूपी सैनिक वीर्यरूपी सेनानी के बिना कैसे शत्रुओं के सन्मुख ठहर सकते

हैं ? कदापि नहीं, भाग खडे होंगे, उनकी पराजय होगा। वे पद—दलित होंगे। शत्रुओं के प्रहार से छिन्न भिन्न हो जायेंगे। अतः सावधानी से यत्नपूर्वक विन्दु की रक्षा करना ही मानव धर्म तथा ब्रह्मचर्य का मूल उद्देश्य है।

है वीर्य ही जीवन प्राणियों का।
है वीर्य से लभ्य पदार्थ चारो॥
दे वीर्य रक्षा पर नित्य ध्यान।
कर्त्तव्य साधो बन कर्म्मवीर॥

वीर्य की उत्पत्ति।

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते।
मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्जायाः शुक्रसंभवः॥

महर्षि सुश्रुत—

शरीर का सार तत्त्व वीर्य है। पूर्व ही कह आये हैं कि वीर्य का शरीर से घनिष्ट सम्बन्ध है। आयुर्वेद शास्त्र ने जीवन का मूल तथा आहार का अन्तिम सारभूत तत्त्व इसे माना है। विज्ञ वैज्ञानिकों ने भी इसे जीवन का मुख्य आधार माना है। नास्तिक भी इसे शरीर की सर्वोपरि-शक्ति समझकर निरन्तर ईश्वररूप इसकी उपासना करते हैं।

यह मनुष्य के आहार से उत्पन्न होता है। इसकी क्रिया बड़ी विलक्षण और गूढ़ है, इसके अणु २ में प्रकृति का अद्भुत रहस्य भरा है। विषयासक्त मदान्ध पुरुष इसे नहीं जान सकते, अज्ञानियों के सामने हीरे का मूल्य कुछ नहीं। वीर्यधारी महर्षियों की शक्ति थी, उनका त्याग और तप था, जिनके अनुसंधान से तुम जान रहे हो कि वीर्य क्या है? और उसका व्यापक प्रभाव किस प्रकार संसार को आश्चर्य्य में डाल रहा है।

मनुष्य के खाद्य-पदार्थ से नित्य वीर्य नहीं बनता। यदि ऐसा हो तो शरीर वीर्य का सागर बन जाय। फिर तो ये कामी दुराचारी पूरे लंपट हो जाँय। नहर के पानी की तरह एक २ नाला बहाने लगें। कुछ ही दिन में सैकड़ों नहीं, नहीं हजारों लाखों करोड़ों कर्मनाशा संसार क्षेत्र में बड़े जोर से बहने लगे। मदन-मंदिर से वीर्य की धारा बराबर निकलते रहे। दनादन बच्चे-बच्चियों से भूमण्डल भर जाय, कहीं भूमि ही नहीं बचे। फिर तो ऐसी स्थिति हो जाय कि, वीर्य ही खाना, वीर्य ही पीना, वीर्य ही ओढ़ना और वीर्य ही बिछौना। संसार वीर्यरूप हो जाय। परन्तु नहीं।

मनुष्य जो कुछ भोजन करता है, वह पहले पेट में जाकर जठराग्नि के द्वारा पचता है। खाद्य पदार्थ के भली

भाँति पच जाने पर उसका रस बनता है। इसी रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा और मज्जा से अन्त में वीर्य बनता है। आयुर्वेदज्ञ महा पुरुषों का कथन है—

धातौ रसादौ मज्जान्ते, प्रत्योके क्रमतो रसः।
अहो रात्रात्स्वयं पंच, सार्ध दण्डं च तिष्ठति॥

रस से लेकर मज्जा तक प्रत्येक धातु पाँच रात-दिन और डेढ़ घड़ी तक अपनी अवस्था में रहती हैं। इसके उपरान्त शरीर का सम्राट् वीर्य बनत. है। अर्थात् एक माह और ९ घड़ी में शरीरस्थ रस वीर्य रूप मे परिणत हो जात है। पेट में गया हुआ आहार पहले पकने लगता है, परिपक्व होने पर रस बनता है और शेष पदार्थ मल मूत्र द्वारा शरीर से निकल जाता है। इसके पश्चात् वह रस पुनः पाचन होने लगता है। ५ दिन डेढ़ घड़ी में उससे रक्त उत्पन्न होता है। इसी भाँति रक्त का भी ५ दिन डेढ़ घड़ी पाचन होता है जिससे मांस की उत्पत्ति होती है। मांस भी पाचन होकर ५ दिन डेढ़ घड़ी में मेद बना देता है, इसी प्रकार पाँच दिन डेढ़ घड़ी में मेद से अस्थि तथा पुनः पाँच दिन डेढ़ घड़ी में अस्थि से मज्जा बनता है, इसी मज्जा से अन्तिम सप्तम सार पदार्थ वीर्य बनता है, पुनः इसका पाचन नहीं

होता। इस क्रिया में सार पदार्थों के अतिरिक्त जो मलादि रह जाते हैं उसे प्रकृति प्रत्येक, आँख नाक कान के मैल, नाखून तथा केशों के रूप में निकालती है। इस प्रकार वीर्य की उत्पत्ति हुई।

महर्षि सुश्रुत ने कहा है कि मनुष्य के शरीर का रस एक माह ९ घडी में वीर्य बना देता है। स्त्रियों के रज की भी यही क्रिया है। परन्तु शक्ति अनुसार कभी २ न्यूनाधिक हो जाया करता है। उत्तम वीर्य वही माना गया है, जो एक माह में रस से प्रस्तुत हो। यही सर्वोत्तम गुणकारी होगा। इसी में जीवन शक्ति के परिमाण प्रचुर रूप से रहेंगे। इसी वीर्य से शरीर का विकास होता है। इसी से कांति, बल, साहस और शक्ति की वृद्धि होती है। इसी से गर्भधारण की शक्ति रहती है। इसी से संसार बलिष्ट संतान उत्पन्न कर सकता है तथा मनोनीत ओज वृद्धि में समर्थ हो सकता है।

वीर्य की उत्पत्ति में विद्वानों की भिन्न २ सम्मतियाँ हैं। एक दूसरे से पृथक् भाव दर्शित है, उनमें दो प्रधान माने गये हैं। एक वैदिक और दूसरा वैज्ञानिक। वैदिक सिद्धान्त तो हम ऊपर लिख आये हैं। अब वैज्ञानिक सिद्धान्त की विवेचना करते हैं।

वैज्ञानिक विद्वान कहते हैं कि शरीर में दो अण्डकोश हैं। इन्हीं दोनों में एक प्रकार का मन उत्पन्न होता है। एक

वाह्य तथा दूसरा अन्तर, इन्हीं से शरीर का संचालन होता है। इनके भिन्न कार्य्य हैं। इन्हीं उभय मलों को वीर्य कहते हैं।

(१) वाह्य वीर्य्य—

यह अण्ड कोश का श्रेष्ठ मल है। इसी में जीव उत्पन्न करने की शक्ति है। इसी से जीव-तत्वों का विकास होता है—यही शरीर का निष्कर्ष है। विद्वानों ने बताया है कि इसमें छोटे २ वहुन के कीटाणु पाये जाते हैं। उन्होनें वीर्य जन्तुओं का वर्णन करते हुये लिखा है कि पुरुष के वीर्य में रहने वाला कृमि $\frac{१}{६००}$ इंच का होता है। वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि कृमियों का $\frac{१}{७००}$ इंच से $\frac{१}{६००}$ इंच तक है।

*वीर्य कृमि, दुमदार होते हैं। उनके पूँछ का अगला हिस्सा गोल होता है। ये सजीव प्राणी के समान रहते हैं, वीर्य में सर्वदा चलते फिरते और दौड़ते हैं। किसी किसी विद्वान ने यह भी कहा है कि जिस प्रकार मछलियाँ जल में तैरती हैं वैसेही ये कीटाणु वीर्य में तैरते रहते हैं। वीर्य जन्तु ही प्राण हैं। उनके नाश होने पर शरीर निर्जीव हो जाता है। ये ही

---

* वीर्य जन्तुओं की आकृति विलक्षण है। ये वीर्य में अनेक प्रकार के हैं।

१ सार मेटोजा २ सेमिनल एनेमल्क्यूल्स ३ सेमिनल फिलेमेन्ट ४ जूस्पर्मस ५ स्परमेटो जोएडस्।

तन्तु गर्भ धारण करते हैं। जिन मनुष्यों के वीर्य-कीटाणु निर्बल हैं अथवा जिनमें ये नहीं होते, वे सन्तानोत्पत्ति में सदैव असमर्थ रहते हैं।

(२) अन्तर वीर्य—इसीसे शरीर में कान्ति, बल, तेज तथा पराक्रम उत्पन्न होता है, यही शरीर को सुदृढ़ और सुडौल बनाता है। शरीरान्तर्गत जो कुछ विकास कार्य्य होता है, उन सबों का मूल यही है। अण्डकोशों को क्रियाहीन बना देने से विकास रुक जाता है। घोड़ों, बैलों, बकरों और कुत्तों को देखो, उन्हें बधिया करने पर उनका पुरुषत्व कहाँ चला जाता है।

वीर्य अनेक वस्तुओं का संमिश्रण है इसमें कई वस्तुयें मिली हैं। विद्वानों का कथन है कि वीर्य में तीन प्रतिशत आक्साइड आफ परोटिन, चार प्रतिशत स्नेह, पाँच प्रतिशत फास्फेट आफ लाइम, कुछ क्लोराइड आफ सोडियम कुछ फास्फेड और कुछ भाग फास्फोरस है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक पदार्थ इसमें मिले हैं। शेष सत्तर अस्सी भाग जल है।

उपरोक्त विषयक विचार वर्त्तमान वैज्ञानिकों के हैं। उन्होंने भी वीर्य को उसी दृष्टि से देखा है, जैसा प्राचीन वैदिक विद्वानों का विचार था। इसके अतिरिक्त अन्य प्रणालियां न तो उतनी सुगम तथा उत्तम न तो उतनी उपयोगी ही हैं जिनका वर्णन किया जाय।

वीर्य और शरीर

शुक्रं तस्माद्विशेपण रक्षन्नारोग्यमिच्छति ।
धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलकारणम् ॥

शरीर वीर्य का वासस्थान है। यही जीव का कारण है। गर्भ में सिर नीचे होने के कारण रजवीर्य का शेपांश बालक के ललाट में विन्दुस्वरूप पारद के समान १० रत्ती स्थित रहता है। जन्म लेने पर पँच वर्ष तक विन्दु-निर्वाण-चक्र (ललाट) में रहता है। इस अवस्था में बचा को रक्षा के लिये केवल पय और फल का प्रयोग करना चाहिये। इसी अवस्था में विद्या-संस्कार आरम्भ किया जाता है।

पाँच वर्ष के पश्चात् बालक को जब प्रौढ़ता की गर्मी क्रमशः उत्पन्न होने लगती है तब उसी विन्दु के द्वारा मज्जा से वीर्य बनने लगता है। वह अपक्व वीर्य पाँच वर्ष से ९ वर्ष तक अर्थात् पौगण्डपन तक ललाट से लगा हुआ भ्रूचक्र में रहता है। इस अवस्था में अलोना और मधुर वस्तु, पय तथा फलों का उपयोग करना चाहिये। इसके अतिरिक्त खट्टा, तीता एवं काषाय पदार्थों को कभी ग्रहण न करे।

९ से १२ वर्ष अर्थात् कुमारपन में वीर्य दोनों कंधों के बीच गरदन की गांठ में रहता है, इस अवस्था में भी यदि

उपरोक्त आहार किया जाय तो उत्तम है, माता, बहिन इत्यादि का संसर्ग छुड़ावे। अष्टगन्धादि तथा अष्टमैथुन से पृथक् करावे।

१२ से १६ वर्ष तक किशोरावस्था में वीर्य मेरुदंड के द्वारा मूलाधार चक्र (गुदा—उपस्थ) तक आ जाता है। इस अवस्था में वीर्य की रक्षा-विद्याध्ययन और साधना के बल से होती है। यदि एक बार भी वीर्य-पतन हुआ तो बाल ब्रह्मचर्य नहीं रहा, और न भविष्य में वीर्य विना कुंभक क्रिया के सँभल सकता है। अतः स्त्री की कौन कहे बालक या युवा से भी किशोर को अपना शरीर नहीं छुआना चाहिये।

षोडश से पच्चीस वर्ष तक वृद्धि अवस्था में वीर्य का उमंग प्रबल हो जाता है। बुद्धि तार्किक हो जाती है। वीर्य सारे शरीर में फैल जाता है, उस समय इसका कोई प्रधान स्थान नहीं रहता।

यथा पयसि सर्पिस्तु, गूढ़श्चेक्षौ रसो यथा।
एवं हि सकले काये, शुक्रं तिष्ठति देहिनाम्॥

वीर्य कोई खास स्थान में नहीं रहता। सम्पूर्ण शरीर उसका निवासस्थान है। तिल में जैसे तेल, दूध में जैसे मक्खन, ईख में जैसे मिठास, काठ में जैसे अग्नि तथा फूल या

चंदन में जैसे गन्ध,—कण-कण में भरा हुआ है—वैसे ही वीर्य शरीर के अणु २ में विद्यमान है। मैथुन के मन्थन से बाहर होता है।

इसी वीर्य की रक्षा करने पर—उसे पुष्ट और परिपक्व बनाने पर संसार सुखी होता है। इसी के धारण करने पर संसार उपकुर्वाण, वृहद् तथा नैष्ठिक ब्रह्मचारी बनता है। गृहस्थ स्त्री—पुरुष इसी को धारण कर 'अतिरात्र' का स्वाध्याय करते हैं। नैष्ठिक ब्रह्मचारी इसी को ऊर्ध्वगामी बना ब्रह्माण्ड में चढ़ा देते हैं। इसी के शान्त होने पर साधक शान्त रस को पाता है। इसी के अचल होने पर लोमस और मार्कण्डेय के समान प्राणी अमर हो जाता है।

वीर्य और मन

चित्तायत्तं नृणां शुक्रं शुक्रायन्तं च जीवितम्।
तस्माच्छुक्रं मनश्चैव रक्षणीयः प्रयत्नतः॥

मन और वीर्य का अभिन्न सम्बन्ध है। दोनों का विकास परस्पर एक दूसरे पर अवलंबित है। एक के सुधरने पर दूसरा उन्नतशील होगा और एक के विषाक्त होने पर दूसरा भी नष्ट हो जायगा। ऋषियों ने शुद्ध मन को वलिष्ठ वीर्य का

कारण माना है, और बलिष्ठ अर्थात् परिपक्व स्थिर वीर्य से ही मन की चंचलता हटाया है। अतः पाठकों के हितार्थ वीर्य और मन पर दृष्टि डालना आवश्यक है।

चित्तवृत्तियाँ ही मन को भटकाने वाली हैं, इन्हीं के संसर्ग से वह भ्रमा करता है। चित्तवृत्तियाँ ही अनर्थ की जड़ हैं। वेही क्षण–क्षण में उदय हो अनिष्टकारी कर्मों में लीन करा रौरवादि भोगों को भुगाती हैं। इनके विषय में हम पूर्व ही लिख आय ह। यहाँ यह समझाना है कि वीर्य ही चित्तवृत्तियों का रूप है। इसी लिये ऋषियों ने उसे प्रतिबिम्ब कहा है। जैसा वीर्य रहेगा, वैसी ही वृत्तियां उदय होंगी और मन भी तद्रूप रहेगा।

विंदुश्चलति यस्यांगे, चित्तं तस्यैव चञ्चलम्।

जिसके शरीर में वीर्य चलायमान रहता है, उसका चित्त भी सदा चञ्चल रहता है। वीर्य चञ्चल होने से ही पुरुष कामी, क्रोधी तथा उद्दण्ड हो जाता है। प्रायः देखा जाता है कि जो जितना वीर्यहीन है, वह उतना ही तमोगुणी तथा दुःखी रहता है। उसकी आत्मा कभी पवित्र नहीं रहती, उसके विचार कभी धर्मसंगत नहीं रहते। वीर्यहीन व्यक्ति अथवा चञ्चल-वीर्यधारी जीव सानन्द जीवन-यात्रा पूर्ण नहीं कर सकता।

जीवन संग्राम में दो पदार्थों की बड़ी आवश्यकता है,

एक बलवान् स्थिर मन और दूसरा बलवान् स्थिर वीर्य की। इन दोनों के बलिष्ठ रहने पर यह बृहद् संग्राम तुम्हारे लिये सरल हो जायगा। इन दोनों की सहायता से तुम अपने जीवन के दुर्द्धर शत्रुओं को मार भगायोगे, कोई तुम्हारे सामने नहीं ठहर सकता। तुम अनायास अपने विपक्षियों को पराजय कर विजयी होगे।

यह हम पूर्व ही लिख आये है कि दोनों का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक साधन से दूसरा स्वयं सध जाता है। यदि तुम वीर्य की रक्षा करो तथा उसे पुष्ट और बलवान बनाओ--उसे स्थिर करो, तो मन भी स्थिर और बलवान हो जाता है। जितना तुम वीर्य को विकारशून्य रखते हो, मन भी उतना ही अधिक शान्त तथा सुस्थिर हो जाता है। इसके विपरीत मन को जितना शुद्ध और पवित्र रखते हो उतना ही वीर्य भी शुद्ध और पवित्र बन जाता है।

मन और वीर्य उभय शरीररक्षक तथा प्राणपोषक हैं। दोनों की सदैव रक्षा करनी चाहिये। यही तुम्हारे जीवन का रहस्य है। इन्हीं दोनों में लौकिक और पारलौकिक का भेद भरा है। यही विज्ञान और वैदिक सिद्धान्तों का मूल है। अतः कल्याण चाहने वाले प्राणियों को उचित है कि वीर्य और मन का सदुपयोग करें।

वीर्य और जीवात्मा

विन्दु ही जीवन है—जीवों ! जीवात्मा की रक्षा के लिये इसे धारण करो ।

—भगवान भूतनाथ

जीवात्मा शरीर का कारण है। मन की भाँति वीर्य से इसका भी घनिष्ट सम्बन्ध है। ऋषियों ने शरीर के साथ दोनों का अभिन्न सम्बन्ध बताया है। वास्तव में शरीर के यही दोनों आदि कारण हैं। इन्हींकी प्रेरणा से संसार बराबर फूलता—फलता रहता है।

वीर्य जीवन का आधार है। इसकी प्रशंसा पूर्व ही कर आये हैं। जीवात्मा इसी के बल पर टिका है। नाशवान शरीर इसी की मर्य्यादा से स्थिर है। मृत्यु और जीवन की समस्या इसी पर अवलम्बित है। इस विषय में कहाँ तक कहा जाय—वीर्य ही भूमण्डल का सर्वस्व तथा प्राण का आयु है।

जीवात्मा की शक्ति वीर्य है। यही उसे मुक्त कराने वाला तथा बन्धन में डालने वाला है। वीर्य ही उसे वीर तथा भीरु बनाने वाला है—यही उसे ज्ञानवान तथा अज्ञानी बनाता है। यही उसे स्वस्थ एवं रोगी बना छोडता है। यही उसे काल

तथा अकाल मृत्यु दिलाता, स्वर्ग या नरक का द्वार दिखाता, अक्लिष्ट अथवा क्लिष्ट में फँसाता, हँसाता या रुलाता, तथा पापात्मा या पुण्यात्मा बनाता है।

बलिष्ठ वीर्य से जीवात्मा की सद्‌गति होती है। शुद्ध और पवित्र शुक्र से ही उसका कल्याण होता है। अमोघ वीर्य से वह सृष्टि रचता है। परिपक्व वीर्य से ही वह शरीर का पालन करता है। उत्तम वीर्य से ही वह गुणों को धरता तथा संसार को भरता है। शान्त एवं सुस्थिर वीर्य से ही वह विश्व को विवेक से विभूषित करता तथा रोगादि दोषों से हटाता है। हा! इसी वीर्य के निकृष्ट हो जाने पर संसार का प्रलय करता तथा स्वयं अपना अस्तित्व भी खो देता है।

मानवों! विचारो। वीर्य और जीवात्मा पर एक वार दृष्टिपात करो। जीवात्मा सर्वस्व है, किसके बल पर वह अनादि है। किस की शक्ति से वह अव्यक्त है, किसके प्रताप से उसका जीवन टिका है—किस की प्रेरणा से। आद्यन्त सोचो। तुम्हें वीर्य के अतिरिक्त कुछ भी न मिलेगा। सम्पूर्ण विश्व इसी से ओत प्रोत है। वीर्य से ही विश्व चल रहा है। यही उत्पत्ति, पालन और प्रलय का रहस्य है।

भारतीयों! उस अमूल्य वीर्य को अपनाओ। उसे बलिष्ठ तथा अमोघ बनाओ, उसे शुद्ध और पवित्र करो। इसी

में तुम्हारा कल्याण है। जीवात्मा का उद्धार इसी के द्वारा होगा। इसी की सहायता से तुम भवनिधि को पार कर सकोगे। ईश्वर का साक्षात् इसी के बल से होगा।

ओज और ब्रह्मचर्य

ओजस्तु तेजो धातूनां, शुक्रान्तानां परं स्मृतम्।
यन्नाशे नियतं नाशो, यस्मिन्तिष्ठति जीवनम्॥

—वैद्यक

ओज, रस से लेकर वीर्य तक धातुओं का साररूप तेज है। जिसके नष्ट होने पर कोई जीवित नहीं रह सकता। इसके रहने पर ही जीवन धारण किया जा सकता है।

ओज शरीर का प्राण है। यही जीवन का आधार है। जीवन-पद की सार्थकता इसी के द्वारा होती है। मनुष्य का प्राण, उस का बल, उसकी कान्ति तथा तेज जिस दिव्य ज्योति के द्वारा जगमगाया करता है—ऋषियों ने उसे ओज के नाम से पुकारा है। यह पदार्थ प्रत्येक प्राणियों के देह में निवास कर शक्ति की वृद्धि करता है तथा मानसिक और शारीरिक बल की उन्नति करता है तथा सर्वदा अपने भक्तों को आत्मिक बल दे आयु के विशाल क्षेत्र में आगे बढ़ाता है।

यह शरीरस्थ धातुओं का सार है। इसका निर्माण प्रधानतः ऋषियों ने वीर्य से माना है। जिस मनुष्य के शरीर में वीर्य शुद्ध और पवित्र होगा तथा जिसमें जितना अधिक परिमाण में वीर्य रहेगा—उस शरीर में ओज भी उतना ही अधिक उत्पन्न होगा। अतः प्रत्येक प्राणियों को ओज की वृद्धि के लिये नियमानुसार ब्रह्मचर्य का पालन करना अनिवार्य्य है।

ओजः सर्वशरीरस्थं, स्निग्धं शीतं स्थिरं सितम्।
सोमात्मकं शरीरस्य, बलपुष्टिकरं मतम्॥

ओज सम्पूर्ण शरीर में वास करता है। यह चिकना, शीतल, स्थिर और उज्ज्वल होता है। यह शरीर में तेज बढ़ाने वाला तथा बल को पुष्ट करने वाला है।

अमोघ वीर्य।

अमोघ होना ही श्रेष्ठ वीर्य का लक्षण है—इसी से सुन्दर गुणवाली सन्तानों की वृद्धि होती है—

—वात्स्यायन

असफल न होने वाले विफल वीर्य को ऋषियों ने अमोघ वीर्य के नाम से पुकारा है। अमोघ अर्थात् असत्य, जो झूठा

न हो—जिस में किसी प्रकार की न्यूनता एवं त्रुटि न हो, जो अचूक अर्थात् चूकने वाला न हो, जिस वीर्य के द्वारा प्रसङ्ग करने पर तत्काल गर्भाधान हो जाय, उस श्रेष्ठ वीर्य को आचार्य्यों न अमोघ वीर्य कहा है।

अमोघ वीर्य बड़ा प्रतापशाली वस्तु है। अत्यन्त कठिनता-पूर्वक निरन्तर ब्रह्मचर्य के साधन से इसकी प्राप्ति होती है। पूर्ण परिपक्व होने के पश्चात् वीर्य में यह दैवी गुण आता है—जिसके द्वारा मनुष्य सर्व-गुण-सम्पन्न हो जाता है। वह इतना तेजवान तथा शक्तिशाली हो जाता है कि अनायास काल के कराल चक्र को पलट देता है।

अमोघ वीर्य की प्रजाएँ सर्वांश-पूर्ण, ओज-सम्पन्न, धीर-वीर एवं गम्भीर उत्पन्न होतीं हैं। उनका हृदय बलवान, मस्तिष्क-बुद्धिसम्पन्न, ज्ञान गम्भीर तथा चित्त सर्वदा प्रसन्न रहता है। वे जरा व्याधियों के आखेट नहीं होते। न उन्हें परतन्त्रता ही छू जाती है और न वे पड़े २ दासता के बन्धनों में रोते ही हैं। वे अपने युग एवं काल के अद्वितीय नर-पुंगव तथा श्रेष्ठ वीर-केशरी रहते हैं।

संसार अमोघ वीर्य की भूरि भूरि प्रशंसा करता है। गायकों ने इसी की बहुविधि गाथाएँ गाई हैं, बटुकों ने इसी की बहु-विधि वन्दना की है, इसका प्रभाव सर्वव्यापी है। अमोघ वीर्यवान

पूर्वजों को देखो। उनके विफल वीर्य द्वारा उत्पन्न सृष्टि के अनन्त शक्तियों की ओर एक बार निहारो। वशिष्ठ व्यास तथा भीमादि महाशक्तिशाली वीर्यधारी महापुरुषों तथा उनकी सन्तानों को देखो।

इसके विपरीत आज इन कलियुगी अपरिपक्व वीर्य वाले सन्तानों को देखो। इनकी धीरता, वीरता एवं गम्भीरता का दिग्दर्शन करो। इनके ज्ञान, ध्यान, तथा चैतन्यता पर दृष्टि डालो इनकी भयभीतता, भीरुता, अल्पज्ञता एवं परतन्त्रता का कारण देखो।

आज भारतवर्ष में अविद्या का अटल साम्राज्य है। माता, पिता, सुधारक, उद्धारक सभी ज्ञानान्ध हो रहे हैं। किसी को अमोघ वीर्य का ज्ञान नहीं। यह अलभ्य पदार्थ कहाँ से उत्पन्न हो,—दश दश बारह-बारह वर्ष के अवोध बच्चे गृहाश्रमी बनाये जाने लगे। बाल्यकाल से ही उन्हें भोग की शिक्षा दी जाने लगी। लड़कपन में हीं वे काम-कोठरी में ठूँसे गये। युवापन के पूर्व ही वीर्य शरीर को निःसार समझ चल बसा। अमोघ वीर्य हो कहाँ से?

एक समय था, जब पच्चीस वर्ष के पश्चात् ब्रह्मचर्यानुसार मनुष्य पूर्ण वीर्यवान अर्थात् अमोघ वीर्यधारी होता था। आज की यह दशा है कि पच्चीस वर्ष वाले श्मशान में भस्म किये जा रहे हैं। ऐसे नाशकारी परिवर्तन में अमोघ वीर्य कहाँ खोजते हो? भीम-अर्जुन के समान सन्तान की कांक्षा क्यों करते हो?

अपरिपक्व वीर्य वाले नवयुवक रात दिन विषयों में लगे

रहते हैं। फिर भी सन्तान कहां ? भोगते–भोगते बरस बीता, दो बरस बीते, तीसरा भी समाप्त हो चला ! तब भी सन्तान का मुँह कहां देखा। यदि दैवात् देखा भी तो अल्पायु, रुग्न, निर्बल, दीन, हीन, अशक्त तथा मृतप्राय-निर्जीव तुल्य।

है बालकों का वीर्य कच्चा, अङ्ग निर्बल हो रहे।
शिक्षा समाप्त न हो सकी, अज्ञान में सब खो रहे॥
है धर्म तो कहता उन्हें कुछ ब्रह्मचर्य विधान हो।
पर कर्म उन से ले रहे, जो भोग का ही ध्यान हो॥
अन्धे हुये माता पिता क्यों नातियों की चाह में।
ले कर वधू वर माँगते संतान का दरग़ाह में॥
जो वीर्य से सुत हो नहीं दरग़ाह कैसे दे सके।
हाँ ! अर्थ अथवा भोलियों का सत्य बरबस ले सके॥
हे हिन्दुओं ! ये है कुल्हाड़ी काटती जो आपको।
बेटा-बहू मर जायँगे दे शाप पापी बाप को॥
है भोग वाला रोग ही दुर्भाग्य भारत वर्ष का।
बढ़ने न देता वीर्य-बल रिपु है प्रबल उत्कर्ष का॥

अमोघ वीर्य का सत्यानाश हुआ, यद्यपि तुम अमोघ वीर्य-धारी वीरों की सन्तान हो तथापि····तुम में वे गुण नहीं। तुम में उन पूर्वीय शक्तियों का लवलेश नहीं। तुम उस सिद्धान्त से गिर गये हो। यही कारण है कि आज तुम्हारी जाति, तुम्हारा

देश तथा समाज पतन के अन्ध कूप में गिरा हुआ बरसाती मेढक की तरह टर्रा रहा है। वासनारूपी विपक्षियों का समुदाय ऊपर से पत्थर ईंटों की वर्षा कर तुम्हारे सहस्रों अभागे सन्तानों का खेल में सत्यानाश कर रहा है।

भीरुओं! चेतो। ब्रह्मचर्य को अपनाओ, अमोघ वीर्यधारी बनो। अपने विफल प्रयास से एक बार संसार को चकित कर दो।

ऊर्ध्वरेता

न तपस्तप इत्याहुर्ब्रह्मचर्यं तपोत्तमम्।
ऊर्द्धरेता भवेद् यस्तु स देवो न तु मानुषः॥

—भगवान त्रिलोचन

ब्रह्मचर्य अर्थात् वीर्य-धारण ही सर्वोत्कृष्ट उग्र तप है। इससे श्रेष्ठ तपश्चर्य्या त्रैलोक में दूसरी कोई भी नहीं हो सकती। ऊर्ध्वरेता पुरुष अर्थात् अखण्ड वीर्य का धारण करने वाला प्राणी इस लोक में मनुष्य रूप में रहते हुये भी देवता है।

पूर्वजों में बहुत से विशिष्ट-वीर्य-धारी ऊर्ध्वरेता के नाम से विख्यात हुये हैं। शरीर में वीर्य की स्वाभाविक गति नीचे की ओर है। इसे लोग बहुधा अधःरेता कहते हैं। परन्तु अखण्ड ब्रह्मचर्य धारण करने पर अधःरेता वीर्य प्रतिकूल गति धारण कर, अग्नि जारित पारद के सदृश नीचे की ओर न आकर

स्वाभाविक रीति से ऊपर जाने लगता है । इस प्रकार निरन्तर कठिन अभ्यास करने पर वीर्य मस्तिष्क में स्थापित हो जाता है। पुनः उसका पतन नहीं होता। इसी उत्कृष्ट वीर्य को ब्रह्मर्षियों ने ऊर्द्ध्वरेता के नाम से पुकारा है।

अखण्ड ब्रह्मचारी ही जिसका एक वार भी वीर्यपतन न हुआ हो, इस दैवी शक्ति का अधिकारी है। किसी कारणवश जो एक वार भी वीर्यनाश कर चुका है अथवा जिसका वीर्य चंचल हो उठा है। वह कदापि इस महान व्रत को पूर्ण नहीं कर सकता। जिसके हृदय में मनोमालिन्य है, जिसके चित्त में द्विविधा घुसी है—एवं जिसके हृदय-मन्दिर में कभी काम का सुन्दर चित्र उदय हो चुका है तथा जिसने अपने मन पर विजय पाने की चेष्टा नहीं की—वह कदापि इस पवित्र पाठ के योग्य नहीं।

वीर्य को ऊर्द्ध्वगामी बनाने की क्रिया सहज नहीं है। अत्यन्त दुष्कर है। दृढ़ अभ्यासी कठिन अभ्यास के द्वारा इसे पा सकता है। ऋषियों ने कहा है कि जो अपने को वीर्यमय कर दे। शरीर, इन्द्रिय, मन तथा संसार को भूल जाय। वीर्य को संसार का कारण समझे, कभी भूल कर भी इन्द्रिय विकार न उत्पन्न होने दे—इस भाँति निरन्तर आचार्य्य के निकट रहकर कठिन तपश्चर्य्या का साधन करे। प्राणायाम द्वारा शनैः २

वीर्य को ऊर्द्ध्वगामी बनावे अर्थात् ऊपर उठावे। इस प्रकार कुछ दिनों के उपरान्त वीर्य चढ़ने लगेगा। इस कठोर क्रिया के लिये मुद्रा संयुक्त प्राणायाम लाभकारी होता है। इसका विशेष विवरण तृतीय खण्ड में मिलेगा। यहाँ पर साधारण रीति से उल्लेख किया जाता है।

किशोरावस्था में विद्याध्ययन एवं साधना के द्वारा वीर्य की रक्षा करे, पश्चात् उस अवस्था में जब वीर्य के चञ्चल होने की सम्भावना हो, कुम्भक क्रिया के द्वारा रक्षा करना योग्य है। इडा, पिङ्गला और सुषुम्ना से अनुलोम-विलोम, पूरक रेचक के द्वारा सप्राण वीर्य को उठावे। स्थान २ पर कुम्भक के द्वारा स्थित करता जाय। इस प्रकार प्राणापान तथा सर्वव्यापी वयान ऊर्द्ध्वरेता हो आकाश—चक्र में स्थित हो जाता है अभ्यासियों को कण्ठ-चक्र से मूलाधार-चक्र तक वीर्य युत प्राण को ले जाने में अत्यन्त क्लिष्टता पड़ती है। परन्तु नित्य अविराम परिश्रम से यह क्रिया सफल होसकती है तथा अभ्यासी अपनी सिद्धि प्राप्त कर सकता है।

वीर्य के ऊर्द्ध्वगामी हो जाने पर साधक अत्यन्त शुक्रवान हो जाता है। उसका प्रशस्त ललाट वीर्य के तेज से दमकने लगता है। उसके रोम-रोम में अपार दिव्यता छिटकने लगती है। वह स्वयं एक नहीं सहस्रों कामदेव से सुन्दर तथा

इन्द्र से बलवान हो जाता है। वह मनुष्य क्या"'देवता! नहीं! नहीं! देवताओं का भी देवता बन जाता है। विश्व की सारी शक्तियां उसके चरणों में झुक जाती हैं। वास्तव में वह ब्रह्मरूप हो जाता है।
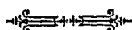
सञ्जीवनी विद्या और ब्रह्मचर्य

वीर्य-रक्षा ही संसार के समस्त शक्तियों का जन्म दाता है। इस अमोघ प्रयोग की प्रकाण्ड प्रणाली को सञ्जीवनी विद्या कहते हैं और यह अमृतमयी विद्या निश्चय ही मृतकों को जिला देती है।

—महर्षि शुक्र

वीर्य-रक्षा की प्रकाण्ड प्रणाली ही सञ्जीवनी विद्या है। इसका वास्तविक अर्थ जीवन प्रदान करने वाली विद्या। जो निर्जीव रक्त-परिक्रम में स्फूर्ति भर दे। निःशक्त शरीर में शक्ति का संचार कर दे। मरणासन्न दशा में जीवन ज्योति जगादे। मृत प्रायः अवस्था से हटाकर तुझे पूर्ण स्वस्थ्य बना दे तथा मृतक शरीर में पुनर्जीवन प्राप्त करा दे—उसे शुक्र आचार्य्य विज्ञ ऋषियों ने संजीवनी के नाम से विभूषित किया है।

इस विद्या का आविष्कार सबसे प्रथम दानवगरु महर्षि

शुक्र ने किया था। उन्होंने इस विद्या को प्राप्तकर अपने कुमार्गी शिष्यों में प्रचार किया। धीरे २ दानवगण इस विद्या की कृपा से बड़े धुरन्धर और बलवान हुये। उनका तेज और बल इतना बढ़ा कि देवासुर-संग्राम में उन्होंने देवताओं को बार २ परास्त किया।

उस समय देवता विलासी थे, विषयों ने उन्हें जकड़ रखा था, रात दिन सोमपान और अप्सराओं के नृत्य में अमूल्य समय व्यतीत कर रहे थे। सुर-रमणियाँ अपने पुरुषों की ऐसी स्थिति देख बिना सारथी के अश्व के समान इधर उधर मनमाना विहार किया करती थीं। उनकी वयस्क कन्यायें भी अपने पथ-प्रदर्शकों की यह दशा देख अपनी सहेलियों के साथ मनोवांछित स्थानों में विहार करती फिरती थीं।

देवताओं की सात्त्विक वृत्तियाँ दूषित हो चुकी थीं। उन्होंनें आसुरी सम्पत्तियों को ग्रहण कर लिया था। वे सब अपना अमूल्य दैवत्त्व खो चुके थे। सदाचार और सद्विचार उनसे पृथक् हो रहा था। उनके बड़े २ अगुये (नेता) भ्रष्टाचरण में लीन हो रहे थे। स्वयं देवेन्द्र नाना प्रकार के दुर्गुणों तथा व्यसनों में आसक्त था। चन्द्रादि देव यहाँ तक पापी हो चुके थे कि गुरु-पत्नी से गमन करने में भी

नहीं चूके। ऐसी स्थिति में उनका नाश न हो तो और क्या हो सकता है ?

दानवों ने अपने आचार्य्य की शिक्षा के द्वारा दैवी सम्पत्तियों को अपनाया था। वीर्य-रक्षा के प्रकाण्ड प्रणाली को धारण कर अत्यन्त वीर्यवान हो गये थे। उनमें ब्रह्मचर्य की शक्तियां कूट-कूट कर समा गई थीं, उन्होंनें अपने जीवन का बहुत कुछ सुधार कर लिया था। यही कारण था कि देवासुर-संग्राम में प्रतिदिन उनकी विजय होती थी। सर्वदा देवता मारे जाते थे।

इस प्रकार देवताओं का दल बहुत काल तक पद-दलित होता रहा। उनकी प्यारी स्वतन्त्रता छीन ली गई। उनके सैनिक बन्दी बना लिये गये। उनके सहस्रों सपूत दासता के प्रबल बन्धन में जकड़ दिये गये। अनेकों सुन्दरियाँ काम-ज्वाला में जला दी गईं, उनके अपार वैभव, अतुल ऐश्वर्य्य तथा अनन्त स्वर्गीय उपभोग क्षण मात्र में मिट्टी में मिलादिये गये। उनके बड़े २ उपनिवेश उनके हाथ से निकल गये। जिस स्थान पर कभी उनकी विजय-पताका उडती थी, जहाँ पर कभी उनका अटल साम्राज्य था। वहीं असुरों की ध्वजायें उड़ने लगीं। निर्भयतापूर्वक दानवगण वहीं मङ्गल मचान लगे।

देखो ! ब्रह्मचर्य-नाश का दुष्परिणाम ! विश्व-विजयी देवताओं का भयंकर पतन ! नहीं ! नहीं ! दुराचरण का दण्ड अथवा भोग का भोग !

इस भाँति घोर पतन-गह्वर में गिरने पर, अमूल्य धन के लुट जाने पर, देश के पराधीन हो जाने पर—सुन्दरियों के सतीत्व हरण हो जाने पर, अभागे देवताओं की आँखें खुलीं। सभी व्यग्र तथा कातर हो उठे। क्या किया जाय ? कैसे रक्षा हो ? दुर्द्धर शत्रुओं से सन्तानों की रक्षा कैसे हो ? इसी प्रश्न पर विचार आरम्भ हुआ।

सबों ने अपनी अपनी सम्मति प्रगट की। जिज्ञासाओं के द्वारा देवताओं ने दानवों की विजय के वास्तविक कारण को समझ लिया। परन्तु वह विद्या प्राप्त कैसे हो ? विपक्षियों के आचार्य्य से वह अमूल्य धन कैसे प्राप्त करें ? जिसे धारण कर दुर्द्धर्ष शत्रुओं से संग्राम करने में समर्थ हों।

इस दुर्गम कार्य्य के लिये, जन्मभूमि को दुःखों से बचाने के लिये, समाज और देश की सहायता के लिये, पूर्वजों के गौरव को बचाने के लिये, स्वजातियों की रक्षा के लिये तथा अपनी खोई हुई स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिये देवताओं के आचार्य्य बृहस्पति का पुत्र कच प्रस्तुत हुआ। वह अकेला सञ्जीवनी विद्या सीखने के लिये दानवाचार्य्य के पास गया।

भक्तिश्रद्धापूर्वक शुक्र को आचार्य्य मान उनके पुनीत आश्रम में रहने लगा ।

कुछ काल बीते, दानवों को यह बुरा लगा, उन्होने कई बार कच को मार डाला, परन्तु शुक्राचार्य्य ने उसे पुनः जीवित कर दिया । इसका आशय यह था कि असुरों ने उसे भ्रष्टाचारी बना दिया, परन्तु आचार्य्य ने उसे पुनः वीर्य-रक्षा का उपदेश दे सुधार दिया । इस भांति शुक्र के पुनीत धाम में रहकर कच ने धीरे २ वीर्य-रक्षा की सम्पूर्ण विधियों को जान लिया । सञ्जीवनी विद्या का रहस्य उसे ज्ञात हो गया ।

विद्या में पारंगत हो जाने पर कच ने आचार्य्य से देव-लोक जाने की अनुमति माँगी । देवयानी शुक्राचार्य्य की पुत्री थी– उसने कच से विवाह का परामर्श किया, परन्तु संजीवनी विद्या का विद्यार्थी अपूर्व बलधारी कच ने उस सुन्दरी के अनुरोध को अस्वीकार कर दिया ।

वह मन और इन्द्रियों को जीत चुका था । बुद्धि उसकी निर्मल हो चुकी थी, उसके हृदय में ब्रह्मचर्य का विवेक उदय हो चुका था, अतः यही कारण था कि उसने देवयानी ऐसी त्रैलोक्य सुन्दरी का तिरस्कार कर दिया ।

वर्षों पश्चात् स्वदेश में लौटा । अपने समस्त देश में एक ओर से दूसरे छोर तक सञ्जीवनी विद्या का बिगुल बजा दिया,

देवेन्द्र ने इसे अनिवार्य शिक्षा का स्थान दिया । फिर क्या था ? कुछ ही दिनों में देवता अपनी खोई हुई शक्तियों को प्राप्त कर पूर्ववत् बलसम्पन्न हो गये । इधर दानवों में शक्ति का अभिमान आगया । शील, श्रद्धा और भक्ति उनके हृदय से हट गई—जिससे उनकी दैवी प्रकृति का नाश हो गया और देवताओं ने पुनः उन्हें सहज ही म मार भगाया ।

भारतीयों ! यह वही सञ्जीवनी विद्या है । क्या इसे अपनाओगे ! शुक्र की संतान आज तुम शुक्रहीन हो रहे हो ! शोक ! शुक्र धारण करो ! तभी तुम शुक्रवान होकर शक्र से भी श्रेष्ठ हो सकोगे ।

त्रिनेत्र और ब्रह्मचर्य ।

शंकर का त्रिनेत्र, विश्व-विख्यात है । उन्होंने इसी के द्वारा प्रवल पराक्रमी मकरध्वज को परास्त किया है । आख्यायिकाओं में तो यहाँ तक लिखा है कि भगवान वामदेव ने अपने तृतिय नेत्र के प्रलयकारी ज्वाला से कामदेव को सदेह भस्म कर दिया । तथा सदैव कल्पांत में वे इसी के द्वारा तमोगुणी संसार का संहार किया करते हैं ।

'त्रिनेत्र, शंकर का विलक्षण अस्त्र है । कठिन अवस्था में वे उसका उपयोग करते हैं । यह अपने अपूर्व शक्ति से काल

के प्रवाह को पलट देता है, कलियुग को कृतयुग बना देता है, तमोगुणी संसार को सतोगुणी बना देता है। अधर्म और अत्याचार को मिटा देता है। आसुरी प्रकृतियाँ इसी के ज्वाल-जाल में भस्म हो जाती हैं। इसी के प्रकाश से संसार दैवी सम्पत्तियों का अधिकारी होता है। पुराणों में त्रिनेत्र की कथा इस प्रकार है।

एक समय शंकर कैलास में तपस्या कर रहे थे। उनके उग्र तप से त्रैलोक्य भयभीत हो उठा, देवेन्द्र विह्वल हो अपने प्रियमित्र मदन को धूर्जटी की तपस्या भङ्ग करने के लिये भेजा। मनसिज कैलाश में जाकर वृक्ष की ओट में हो शंकर पर बाण प्रहार करने लगा। जिनके फलस्वरूप महेश के हृदय में मनोविकार उत्पन्न हो गया, समाधिस्थ शंकर ने इस रहस्य को जान लिया और अत्यन्त क्रोधपूर्वक प्रलयकारी त्रिनेत्र को खोल दिया जिसके द्वारा कपट व्यवहार करने वाले कामदेव को यथार्थ दण्ड मिला। अर्थात् नष्ट हो गया। कवि कालिदास ने इसका वर्णन इस प्रकार लिखा है।

क्रोधं प्रभो ! संहर संहरेति
यावद् गिरा खे मरुतां चरन्ति।
तावत्सवन्हिर्भवनेत्रजन्मा
भस्मावशेषं मदनञ्चकार ॥

हे प्रभो ! अपने क्रोध को शांत कीजिये। शान्त कीजिये ! जबतक ये शब्द आकाश में गूजें, तब तक शंकर के तृतीय नेत्र

से उत्पन्न अग्नि ने कामदेव को जलाकर भस्म कर डाला। चारों ओर हाहाकार मच गया।

यह तो आख्यायिका है। इसके भीतर बड़ा भारी रहस्य छिपा है। शरीर ही कैलाश है। योगयुक्तरूपी जीव ही शंकर है। मनोविकार ही कामदेव है। साधन काल में जब मनोविकार रूपी कामदेव प्रकट होता है, तब उस समय योगयुक्तरूपी जीव चंचल हो जाता है, परन्तु तत्काल आत्मज्ञानरूपी तृतीय नेत्र से मनोविकाररूपी कामदेव का नाश हो जाता है और समाधिस्थ जीवरूपी शंकर की रक्षा हो जाती है।

संसार नेत्रों के द्वारा देखता है। इनके द्वारा तुम दृष्टि-ज्ञान लाभ करते हो, परन्तु वास्तव में तुम्हारे ये दोनों नेत्र अभ्यास और वैराग्य के साधक हैं। सब से प्रथम इन दोनों की साधना करो। जब ये सार्थक हो जायँगे, तब तीसरा नेत्र जो तुम्हारे मस्तिष्क में है—विना परिश्रम स्वयं खुल जायगा। इसके खुलते ही तुम्हारे मनोविकारों का नाश हो जायगा और तुम उस अलभ्य वस्तु को प्राप्त कर लोगे, जिसके लिये तुमने यह नर-तनु धारण किया है।

मस्तिष्क वाला तृतीय नेत्र, जिसके द्वारा बड़े-बड़े ऋषियों ने जीवन-संग्राम में विजय प्राप्त किया, शंकर ने कामदेव को जलाकर भस्म कर दिया तथा योगियों ने सम्पूर्ण सिद्धियों को वशीभूत कर लिया, वह क्या है? आत्मज्ञान! आत्मज्ञान उदय

होने पर ही मनोविकार दूर होंगे और मनोविकारों के नष्ट होने पर ही मनुष्य अपना तथा विश्व का उद्धार कर सकेगा।

आत्मज्ञान हीं तृतीय नेत्र है। इसी से शंकर ने मनोविकार-रूपी कामदेव को जला दिया था। वशिष्ठ ने विश्वामित्र की उद्दण्डता को दबाया था, अष्टावक्र ने जनक के दर्बार में विद्वानों को अवाक कर दिया था। वायु, सोम, सूर्य्यादि ऋषियों ने वेदों को प्रकाशित किया था, सनकादि महर्षियों ने अक्षय यश फैलाया था, आत्मज्ञान ही जीवन का साधन है। वाचकों? यदि तुम शंकर बनना चाहते हो। आत्मज्ञान प्राप्त करो। इस तृतीय नेत्र को अपनाओ।

तृतीय नेत्र (आत्मज्ञान) कैसे उदय होगा! संसार की कौन सी शक्ति तुम्हें आत्मज्ञानी बना सकती है, किसकी शरण में जाने पर तुम इस अलभ्य ज्ञान का लाभ प्राप्त कर सकोगे कौन तुम्हें इसके धारण करने योग्य बना सकता है? क्या तुमने इस विषय पर कभी विचार किया है? क्या है? बोलो!

ब्रह्मचर्य! वह देवता ब्रह्मचर्य है। यही आत्मा का प्राण तथा आत्मज्ञान का मूल है। इसी की कठिन सिद्धि से यह मस्तिष्क वाला नेत्र खुलता है। शंकर ब्रह्मचारी थे। ब्रह्मचर्य की उग्र शक्ति के द्वारा उनके मस्तिष्क में यह ज्ञान उदय हुआ था, जिसके द्वारा उन्होंने दुर्द्धर्ष अजेय मनोविकारों का भी नाश कर दिया। बोलो शंकर भगवान की जय।

द्वितीय खण्ड ।

सावधान ! जीवन-पथ में सतर्क रह, अधर्माचरण को दूर कर। जीवो ! ब्रह्मचर्य रूपी अमृत का पान कर । निःसन्देह तू अमर हो जायगा।

—वेद भगवान्

विनाश के मार्ग पर

आर्ष-संस्कृति वाले ज्ञान-सविता के अस्ताचल में डूबने पर अज्ञान-निशा में, विषयों ने ब्रह्मचर्य को निर्वासित कर दिया। ज्ञान, बल, तेज, स्मृति, कांति, धैर्य्यादि सद्‌गुण शनैः २ दूर होने लगे। इस प्रकार अंधकारावृत पतन के गर्त में गिरते २ प्राचीन संस्कृति का सर्वनाश हो गया।

इस बीसवीं शताब्दि के वेगशाली विषाक्त वातावरण से प्रेरित हो विषम विषयाग्नि विश्व-मण्डल को विदग्ध करती हुई, विस्तृत रूप धारण कर बार-बार विनाश की सूचना दे रही है। जिस प्रकार बुझी हुई अग्नि सशक्त समीर के प्रकोप से प्रज्वलित हो उठती है, आज उसी प्रकार प्रबल विषयानल वर्तमान वायुमण्डल के तीव्र झोंके से धधक उठा है।

देखो! समस्त संसार आज इसके प्रचण्डज्वाला-जाल में भस्मीभूत हो रहा है। कितना हृदय-विदारक करुण एवं वीभत्स दृश्य है।! जान पड़ता है कि अतीत की पुनीत स्मृतियों को लोपकर विश्व के विनाश के लिये, मानो साक्षात् दुर्भेद्य दावानल, अथवा भीषण वडवानल ही विषयों का कराल

रूप धारण कर वसुन्धरा के वक्षस्थल पर प्रलयंकर तांडव कर रहा है ।

आज वृद्ध भारत पर अविद्या का प्रकोप है। इसके भयानक अन्धकार में यहाँ के निवासी निःशक्त होकर इधर-उधर व्यर्थ भटक रहे हैं। कहीं त्राण नहीं! भ्रम में पड़े २ अपना सर्वस्व हरण करा रहे हैं। जिस प्रकार रात्रि के भयानक अन्धकार में ठूँठे वृक्ष तथा बड़े २ पाषाण-खण्डों को देखकर भूत-प्रेतादि का भ्रम होजाता है, उसी प्रकार इस अज्ञान-अन्धकार में पड़कर आत्मज्ञानियों की सन्तान सत्य को असत्य और असत्य को सत्य मान रही है।

जब से आर्ष संस्कृति का लोप हुआ। पुनीत ब्रह्मचर्याश्रमों का तिरकार किया गया। विश्व-पूजित, श्रेष्ठ संस्कृत साहित्य का साथ छोड़ा गया। महान धर्म-प्रवर्त्तकों के धार्मिक उपदेशों स मुख मोड़ा गया, तभी से यहाँ के लोग सत्यासत्य के ज्ञान-लाभ से वञ्चित होने लगे। इन लोगों का शनैः २ यहाँ तक पतन हुआ कि अज्ञान के विकट गह्वर में जा गिरे।

आज सारा देश एक ओर से दूसरे छोर तक अपना वास्तविक इष्ट-पथ भूलकर अन्धपरम्परा तथा अन्धविश्वास का आखेट हो रहा है। यह निर्विवाद सत्य है कि जब तक हृदयाकाश में ज्ञान-सूर्य्य का उदय नहीं होगा, तब तक

अज्ञान के प्रबल अन्धकार का हटना सम्भव नहीं। यद्यपि हृदय के भ्रम को मिटाने तथा सत्यासत्य के निर्णय करने के लिये महर्षियों न सहस्रों युक्तियाँ प्रमाण रूप में अमूल्य उपदेश, शास्त्रों एवं दर्शनों में लिखा है, परन्तु आज तुम उनको जलांजुलिदे सर्वनाश के मार्गपर आगे बढ़ रहे हो।

शोक ! ईश्वरीय सन्देश यह आदेश देता है कि वीर्य-रक्षा करो। तुम वीर्य-नाश करने मे रात दिन व्यभिचार का बाजार गर्म कर रहे हो, अपने को व्यभिचार रूप बना रहे हो। उपदेशकों का कथन है वेदादि सच्छास्त्रों को पढ़ो। तुम विद्या से दूर रहते हो, यदि दैवात् पढ़ने भी बैठते हो, तो काम-मन्दिर का रहस्य, कामदण्ड का स्वरूप, प्रेम सूटिंग मेल की भेदभरी घटना तथा चाकलेट और पाटल प्लाट !

ऋषियों की शिक्षा है कि ईश्वर का चिन्तन करो, उसे ढूँढो, खोजो, उसी में लीन रहो, परन्तु यह तुम्हें भाता नहीं, पहले तो नास्तिक बनने का दावा रखते हो। ईश्वर क्या है ? कुछ नहीं। उसका ढूँढना तो दूर रहा, यदि ढूँढने निकले भी तो उन चलता जों मनचले दुराचारियों को जो तुम्हें पथ-भ्रष्ट करें। ढूँढने निकले उन वेश्याओं जो को तुम्हें धन और धर्म से हाथ धुलावें। ढूँढने निकले भी तो मेले मदारों में नवयुवतियों-को उन्हें भ्रष्ट करने के लिये

बाप दादों का नाम डूबाने के लिये—छिः। डूब जाओ चुल्लू भर पानी में ! गल जाओ हिमालय में। बह जाओ गंगा में। पापियों ! यही तुम्हारे विनाश का मार्ग है।

भारतवासियों ! सोचो ! मैं असत्य नहीं कहता ! अक्षरशः सत्य है। आज भारत की लाखों आत्मायें उपरोक्त दोषों से कलंकित हो रही हैं। करोड़ों मूर्तियाँ विनाश के पथ पर चढ़ कर कामाग्नि में भस्मीभूत हो रही हैं। देश के दुश्चरित नवयुवक देवदारु के काष्ठ के समान विषयाग्नि से संसर्ग करने पर स्वयं धाँय धाँय करते हुये जल रहे हैं। उनका कंकाल रूप देखो।

सदाचार को अपनाओ ! धर्म-मार्ग का अवलम्बन करो, विनाश के विकट मार्ग से मुँह मोडो, पूर्वजों के चरित्रों का अनुकरण करो। तुम्हारे अज्ञान-अन्धकार का विनाश हो जायगा। जगत में जो वस्तु जैसी है, ठीक वैसी ही दिखाई पड़ने लगेगी। अविद्या के दूर होते ही वह पुनीत मार्ग तुम्हें दिखलाई पड़ेगा, जिसके द्वारा तुम इस प्रबल जीवन रणांगण में विजय पा सकोगे।

दुर्वासना एवं विषयों से प्रेम

दोषेण तीव्रो विजयः, कृष्ण-सर्प-विषादपि ।
विषं निहन्ति भोक्तारं, द्रष्टारं चक्षुपाप्यहम ॥

—महर्षि शंकर

विषय का विष काले साँप के विष से भी बढ़कर भयानक है, विष के पीने से मनुष्य मरता है, परन्तु यह विषय-विष इतना उग्र है कि केवल उसकी ओर देखने से ही मनुष्य धूल में मिल जाता है ।

आज संसार के अधिकांश प्राणी इस भयंकर रूप से दुर्वासनाओं के प्रबल बन्धन में जकड़े जा चुके हैं कि उनके उद्धार का प्रश्न एक बार उन कर्मवीर देवताओं को भी विचलित कर देगा, जिन्होंने कराल कौणपों से अमूल्य संजीवनी विद्या प्राप्त कर निरन्तर अभ्यास के द्वारा अमर हो त्रैलोक्य को आश्चर्य के अनन्त सागर में डाल दिया था ।

जो विषयानुरागी यथा विषयासक्त है और जो दुर्वासनाओं में लीन है—निःसन्देह, वही संसार में सबसे दुखी है । दुर्वासनायें ही दुःखों को उत्पन्न करती हैं । कामी तथा विषयी पुरुष कभी शान्ति नहीं पा सकता । उसे ब्रह्मचर्य के अमूल्य अक्षय सुख का कभी स्वाद नहीं मिल सकता ।

उसका मानव-जीवन कभी भी शान्तिमय सानन्द समाप्त नहीं हो सकता।

महात्माओं का कथन है कि विषयवासना ही सम्पूर्ण दुःखों की जड़ है। यही शोक, सन्ताप, दाप, चाप तथा त्रिताप देने वाला मानवों का भयानक नाशकारी शत्रु है। यही तुम्हें वास्तविक मार्ग से हटाकर बन-बन भटकाने वाला, मित्र रूप में रहते हुये गुप्त शत्रु है। यही अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष से हटाकर महा रौरव में भेजने वाला माया का प्रधान प्रतिनिधि है और यही शरीर के साथ रहते हुये चिद्रूप को छिपाकर तुम्हें अज्ञान के अन्धकार में ढकेलने वाला, तुम्हारा घोर पतन कराने वाला मायावी चक्र या दुर्द्धर्ष वैरी है।

दुर्वासनाओं ने तुम्हें पागल बना दिया। संसार ज्ञान-ध्यान खोकर उन्मत्त हो चुका है। सबों की अन्तरात्मा अनस्थिर दृष्टिगोचर हो चुकी है। शान्तचित्त क्षुब्ध हो उठा है। स्थिर बुद्धि चंचल हो चुकी है। हाँ! विषयों एवं दुर्वासनाओं ने ही विश्व को दीन हीन एवं मलिन बना दिया है। इसी के संसर्ग से संसार निरुत्साह एवं निरुपाय हो गया है। शरीर का सार तत्व शिथिल पड़ गया है। कुछ ही और बाकी है कि मानव शरीर निर्जीव तुल्य ओज हीन हो जायगा।

ऋषियों ने दुर्वासना एवं विषयों से पथक् रहना ही

सुखों का श्रेष्ठ साधन माना है। इसीके छोड़ने पर तुम सभी फलों को प्राप्त कर सकते हो। इसीके परित्याग करने पर तुम सदाचार-मन्दिर में प्रवेश करने के योग्य हो सकते हो। विषय-विरक्ति होने पर ही तुम अपने वास्तविक रूप को जान सकते हो। इसीके उदय होने पर तुम्हारे हृदय का अन्धकार मिट सकता है। यही जीवन समरस्थली का सहायक तथा परम हितैषी मित्र है। इसीके प्रकट होने पर तुम अपने स्वच्छ चिद्रूप को पहचानने में समर्थ हो सकते हो। इसीके द्वारा तुम अपनी चित्तवृत्तियों का निग्रह कर योगी बन सकते हो। इसीके धारण करने पर तुम्हें स्थिर बुद्धि प्राप्त हो सकती है। मन अनुकूल रह सकता है। चित्त शान्तिसागर बन सकता है। शरीरनाशक-प्रबल-रिपु मद का प्रभंजन हो सकता है तथा इसीको प्राप्त कर तुम निस्सन्देह ब्रह्मरूप हो सकते हो।

वीरों! दुर्वासनाओं को दूर करो, विषयों से मुँह मोड़ो एवं कर्तव्य-पथ पर आगे बढ़ो। देखो तुम्हारे पूर्वजों ने क्या किया था? भारत का इस अधोगति से उद्धार करो! पतित समाज को उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँचाओ। ओ आशारूपी इन्दु! राकेश होकर देश में अमिय वृष्टि करो—सवत्र जिससे चर और अचर अमृत पान कर सुखी हो जाँय।

प्रकृति का अनादर

संसार प्रकृति का उद्यान है। हम जो कुछ अपने नेत्रों से देखते हैं सबों में उसी की दिव्य प्रभा पाते है। चर-अचर जो कुछ इस जगत् में व्याप्त है-सभी उस मायाविनी शक्ति-स्वरूपा के द्वारा रचा गया है। इस परिवर्तनशील संसार को यदि तुम प्रकृति का रूप कह दो तो कुछ अत्युक्ति न होगी। वह आवश्यकतानुसार न्यूनाधिक रूप से सम्पूर्ण जगत को धारण किये हुये पालन कर रही है। सूर्य चन्द्रादि प्रकाशमान लोकों में उसीका स्वरूप विद्यमान है। आकश, वायु, अग्नि, जलादि भूतों की उद्भव-कर्तृ वही है। सत्य, तप, ब्रह्म, स्वर्ग, मृत्यु आदि लोकों तथा भुवनों में उसीकी रचना पाई जाती है।

विश्व-धर्तृ प्रकृति न तो करुणामयी है और न निष्ठुरा। वह न तो दयालु ही है और न क्रूर ही। उसे न तो तुम निरर्थक उग्र ही होते देखते हो और न तो कभी सदय ही। वह सदा एकरूप, अपने गुणों को धारण कर सांसारिक व्यापार में लीन रहती है। निरन्तर कर्त्तव्य-पालन करते ही उसे तुम देखते हो। वह धनी, मानी, दीन, हीन बालक, युवा, वृद्ध, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा रागी-विरागी-किसी का भी संकोच नहीं करती। कोई हो, सार्वभौम सम्राट् अथवा विश्वगुरु ही क्यों न हो-जो उसकी आज्ञा का उल्लंघन करेगा, जो

उसका अपमान करेगा, अर्थात् उसके निर्धारित नियमों के विप-रीत आचरण करेगा, उसे वह न्यायानुसार दण्ड देगी।

निष्पक्ष न्यायकर्तृ प्रकृति के समक्ष पुजारियों की प्रार्थना, पोपों का धर्माडम्बर, पण्डों का पुण्यदान, अपराधियों की क्षमा-याचना, वकीलों की वकालत, चतुरों की चतुरता, धनवानों का घूस, वीरों की वीरता, बुद्धिमानों की बुद्धि, विद्वानों की विद्या, प्रतापियों का प्रताप, ऐश्वर्य्यवानों का ऐश्वर्य्य, धूर्तों की धूर्तता, पाखण्डियों का पाखण्ड तथा कपटियों का कपट कुछ काम नहीं देता। प्रकृति के नियम का उल्लंघन करने वाला एक महात्मा, वीर तथा एक विद्वान वही दण्ड का भागी होता है जो वही अपराध करने वाला एक दीन हीन मलिन व्यक्ति पाता है।

प्रकृति अपने गुणों को धारण कर अविराम अपना कार्य्य करती रहती है। यदि तुम उसकी आज्ञा के अनुसार कार्य्य करते रहो तो तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट प्राप्त न हो। वह सर्वदा दिव्य ज्योति के समान तुम्हारी त्रुटियों को सुधारनें वाली रक्षिका एवं पथ-प्रदर्शिका के समान तुम्हारी सहायक होगी। विपरीत आचरण करने पर तुम्हारे वक्षस्थल पर बैठकर यमदंडतुल्य भयानक दण्ड दे तुम्हारी अविद्या द्वारा मुँदी आँखे खोल देती है। यह निश्चय है कि प्रकृति के अनुकुल रहने पर ही आनन्द और वास्तविक सुख का स्वाद प्राप्त होगा।

प्रकृति के विषाक्त होने पर यह सुन्दर शरीर रोगों का आगार बन जाता है। पद पद पर दुःखों का सामना करना पड़ता है। इस भाँति धीरे २ अलभ्य शरीर पूर्ण रू हो शीघ्र सार हीन सदृश निर्जीव बनकर कालग्रसित हो जाता है।

प्राकृतिक नियम अटल है। आकाश अपना शब्द गुण नहीं छोड़ सकता। वायु के शब्द और स्पर्श पृथक् नहीं हो सकते। ज्वलन अपने शब्द, स्पर्श और रूप गुण से कहाँ रहित हो सकता है? जल—शब्द, स्पर्श, रूप तथा रस से परे नहीं हो सकता और पृथ्वी अपने गन्धादि पञ्च गुणों से रहित नहीं हो सकती।

सूर्य का तेज, चन्द्रमा की शीतलता, रत्नाकर का लवणिक गुण, ग्रहों की वक्र दृष्टि, ईख का मीठापन, मिर्चा की कडुआई, अम्लवर्गों का खट्टापन, क्षारक पदार्थों का खारपन तथा कषैले पदार्थों का काषाय गुण स्वाभाविक है। ये अपने गुणों को नहीं छोड़ सकते। सृष्टि के आरम्भ में जो गुण जिस अंश में प्राप्त हुआ है, कल्पान्त काल तक उसमें विद्यमान रहेगा। संसार की कोई भी शक्ति उसे पृथ नहीं कर सकती।

तुम्हारी दीनता का कारण क्या है? तुम्हारी ऐसी दुर्दशा क्यों हुई? तुम्हें ऐसी हीनता क्यों प्राप्त हुई? तुमने ऐसा पतन क्या पाया? भारत मूक परतन्त्र क्यों हुआ? परम स्वतन्त्र विश्व

गुरु दासता के कराल जन्म-नाशी बन्धनों में क्यों जकड़ा गया ? भयानक दुर्भिक्ष, अनन्त जन-पदध्वंस तथा कंकाल रूप होने का क्या कारण है ? भारतीयों ! क्या तुमने कभी इस विषय पर विचार किया है ? प्रकृति के कपूतों ! क्या कभी अपने हृदय से पूछा है कि हम क्या अधोमुख हो रहे हैं ? हम क्यों प्रतिदिन नष्ट होते जा रहे हैं ?

तुम्हारे उत्थान और पतन, सुख और दुःख एवं विजय और पराजय का मूल रहस्य प्रकृति के गर्भ में व्याप्त है । वही तुम्हारी सर्वस्व है। जब तक तुमने उसका आदर किया, उसकी पूजा की, उसकी सेवा की, उसके आदेशों का पालन किया। तब तक संसार में तुम्हीं सर्वोत्तम रहे। तुम्हीं सर्व-सर्वा थे। तुम्हें उसने स्वर्ण-सिंहासन पर बिठा दिया था। तुम्हें नर-रूप में देवता बना दिया था। तुम्हारी शक्तियों का विकाश समस्त लोकों में पहुँचा दिया था। कहाँ तक कहें इसी देवी की कृपा से तुमने त्रैलोक्य को थर्रा दिया था। देव–दानव–यक्ष–किन्नरादि सभी प्रेम–पूर्वक मिलते तथा सर्वदा गुणावली गाया करते थे।

तुमने उसका अनादर किया है। उसके उपदेशों को ठुकरा दिया है। उसकी सम्मति के विपरीत कार्य्य किया है। उससे लुक-छिपकर अनेक सत्यानाशी कर्मों में हाथ डालने का साहस किया है। फिर वह तुम्हें क्यों न दण्ड दे ? तुम

क्यों न उसके क्रोधानल में पड़ो। उसके अभिशाप से क्यों न तुम्हारा नाश हो? उसकी वक्र दृष्टि क्यों न तुम्हारे सुख, आरोग्य एवं उत्थान के मार्ग को बन्द कर दे।

कुलाङ्गारों! जैसा कर्म किया है, वैसा फल पा चुके, अब भी तुम्हारी आँखें नहीं खुलतीं! देखो! विश्वगुरु होकर दस्यु और म्लेच्छों से पाठ सीख रहे हो! वीराग्रगण्य होकर आज दीन-हीन एवं निरुपाय हो रहे हो! ज्ञान-विज्ञान के अनन्त सागर होकर अपने ही हाथों अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार रहे हो! विद्या-वारिधि होकर अविद्या के अन्धकार में पड़े २ रो रहे हो! महान बुद्धिदाता होकर छलियों से ठगे जा रहे हो! तुम दूसरों के सत्य और धर्म की रक्षा करने वाले थे, आज तुम्हीं अपने सत्य और धर्म को लुटा रहे हो! तुम संसार को भय देने वाले थे, परन्तु आज स्वयं भयभीत हो रहे हो। तुम सर्वश्रेष्ठ पथ-प्रदर्शक थे, परन्तु शोक! आज तुम स्वयं ही अपना मार्ग भूले हुये हो।

सम्हलो! सम्हलो! प्रकृति के अनादर करने वाले दुराचारियों सम्हल जाओ! उसके विपरीत आचरण मत करो! उसे अपनाओ! उसके पुनीत आदेशों का अक्षरशः पालन करो, तभी तुम्हारा कल्याण होगा? अन्यथा प्राणान्त! कहा है—

नियम के प्रतिकूल जो करते गये हैं काम।
हो गया है नाश उनका मिट गया है नाम ॥
यदि न चेतोगे अहो ! तो क्यों न होगा दण्ड।
प्रकृति शासन में दया का है अभाव अखण्ड ॥

वर्तमान भारत और ब्रह्मचर्य।

आज वर्तमान भारत की क्या दशा है ? नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने वाला-वृद्ध भारत-आज क्या हो गया ? पवित्र बृहत् ब्रह्मचर्य की अवमानना करने वाला विश्वगुरु क्या कर रहा है ? अपने अन्न-जल से आर्य-जाति को सार्वभौम सम्राट् बनाने वाला, धनवान भारत आज दीन-हीन तथा दरिद्रावस्था में क्यों पडा है ?

आज आर्य-जाति अन्ध कूप में जा गिरी है। देश की दशा सन्तोपजनक नहीं है। सर्वत्र महामारी तथा दुर्भिक्ष मुँह बाये खड़ा है। न बल है—न शक्ति-न तेज है—न पराक्रम और न बुद्धि है-न वैभव !—सर्वो का विनाश ! एक कोने से दूसरे कोने तक, एक ओर से दूसरे छोर तक हाहाकार तथा आर्त करुण-क्रन्दन के अतिरिक्त कुछ भी नहीं सुनाई देता ! क्या कारण है ? वाचको ! क्या आपने इस विषय पर कुछ सोचा है ?

देश में बारह–बारह वर्ष भी कन्यायें गर्भ धारण करने लगीं। आठ–आठ वर्ष की बालिकाओं पर बलात्कार होने लगा। वृद्धायें रतिरूप धारण करने लगीं। वृद्ध तरुणियों के शिकारी बन बैठे। आठ–आठ दश—दश वर्ष के बच्चों को काम–शिक्षा दी जाने लगी! क्या इससे भी बढ़कर संसार में कोई अत्याचार हो सकता है ? क्या इससे भी अधिक कोई खेदजनक विषय है ? भारतीयो ! इन कारणों से भी दुर्दण्ड कोई और नाशकारी लक्ष है ?

भारत में वीर्यपात का रोग घुस गया। अमूल्य प्राण-प्रिय व्रत ब्रह्मचर्य श्मशानवासी हो रहा है। देश निर्बल हो गया। सभी स्वास्थ्य खो बैठे। आनन्द, हर्ष और उत्कर्ष जाता रहा। युवकों के दाँत निकल आये। आँखें निस्तेज होकर भीतर बैठ गईं। ललाट का तेज कर्पूर हो गया। चिन्ता की रेखायें पड़ गईं। शरीर पर श्यामता दौड़ गई। गाल पिचक गये। शरीर की नसें उभर आईं। हड्डियाँ ऊपर निकल आईं। चेहरा रूखा और मुरझाया सा दिखाई देने लगा।

वाचको ! ध्यानपूर्वक वर्त्तमान भारत और ब्रह्मचर्य का स्वरूप देखो !

पन्द्रह—सोलह वर्ष की बालिका है—अभी इसे संसार का कुछ ज्ञान नहीं—कुछ नहीं जानती, पर एक या दो संतान उसके

साथ अवश्य हैं। शरीर में दम नहीं, आलस्य उसका साथी हो गया है—कोई काम नहीं किया जाता, किसी बात में मन नहीं लगता, बच्चे पर-बच्चे पैदा होते रहने से उसकी सारी सुन्दरता, कोमलता और शक्ति चली जाती है,—और५।७ वर्ष पश्चात् वह एक दम वृद्धा सी जान पड़ने लगती है। हा! सर्वनाश!

भारतीयों! क्या इन्हीं युवा-युवतियों के बल पर तुम इतरा रहे हो? क्या इन्हीं के भरोसे उन्नति का डङ्का पीटना चाहते हो?

भारतीयों! उठो! अपने भाग्य के स्वयं निर्मायक बनो। वर्त्तमान—ब्रह्मचर्य के पाखण्डों को दूर करो! इसने तुम्हें नष्ट कर दिया। अब भी चेतो। नहीं तो बची-बचाई शक्ति भी तुम अज्ञान—निद्रा में खो दोगे! अपने देश, समाज तथा जाति के अन्तर्गत जो कुरीतियां घुसी हैं, उन्हें दूर भगाओ! पूर्वीय ऋषि-कुल तथा गुरु कुलों की स्थापना करो! देश के बच्चे २ में वीर्य-रक्षा का भाव भर दो! इतना उद्योग करो कि फिर एक बार लाखों, उपकुर्वाण, बृहद् तथा नैष्ठिक ब्रह्मचारी तैयार हों! बस तुम्हें कुछ करना शेष न रहेगा!
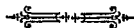
आधुनिक शिक्षा और ब्रह्मचर्य

जिससे ब्रह्मचर्य का सांगोपांग विकास हो, संसार में सच्ची शिक्षा वही है। जो मनुष्य को सब कामों के करने के योग्य बना दे, जो नैतिक, शारीरिक और मानसिक सभी बातों में उन्नत हो वही पूर्ण शिक्षित कहा जा सकता है!

शिक्षाका उद्देश्य जीवन को पूर्ण बनाता है। शिक्षा से ही संसार सदैव आगे बढ़ता है। इसी के द्वारा सृष्टि का एक तुच्छ प्राणी उच्च से उच्च स्थान तक पहुँच सकता है। शिक्षा ही सभ्यता की सगी बहिन है। भला बिना शिक्षा के सभ्यता कहाँ टिक सकती है। जो जातियाँ शिक्षित हैं, वेही सभ्य हैं। सम्पत्तियों के अधिकारी वेही हैं। उन्हीं का झण्डा ऊँचा रहेगा। शिक्षाका क्षेत्र अपार है, संसार के सम्पूर्ण उत्कृष्ट विचार, महात्माओं के उदार उपदेश, वेदादि सच्छास्त्रों के वाक्य तथा वे सभी विषय जिनसे कि मानव जाति की उन्नति होती है। शिक्षा में सम्मिलित हैं।

शिक्षा ब्रह्मचर्य का प्रधान साधन है। शिक्षा से ही देश में ब्रह्मचर्य की धूम थी, शिक्षासे ही अनेक कला-कौशलों का प्रचार था, शिक्षा से ही विद्वान, विवेकी, तथा पूर्ण वैभव सम्पन्न था। आज क्या हो गया? प्राचीन शिक्षाका सर्वनाश!

आर्ष संस्कृति का लोप ! और इसके विपरीत दूषित पाश्चात्य शिक्षा-प्रणाली का प्रचार !

वर्तमान शिक्षा का उद्देश्य है—नौकरी, गुलाम बनो और पेट भरो ! पर शोक नौकरी भी कहीं नहीं मिलती । एक स्थान और दस हजार इच्छुक । बेकारी बढ़ने लगी, बड़े २ शिक्षा प्राप्त हुये छात्र मारे मारे फिरने लगे । आँखें खोल कर देखो । युनिवर्सिटियों के शिक्षा का परिणाम ! वर्त्तमान विद्यालय के विद्यार्थियों का रहन-सहन, आचार विचार, और उस बृहत् ब्रह्मचर्य का स्वप्न !

पैसा नहीं, नौकरी नहीं, विद्यालयों में रहते हुये ही मन विषयी बन चुका है। कैसे निर्वाह हो ! क्या आश्रय ! किधर जाँय ? क्या खायँ ? कैसे कुटुम्ब का पालन हो ? विषयों की पूर्ति के लिये द्रव्य कहाँ से आवे ? वर्तमान शिक्षा के प्रचारको ! क्या आपने कभी इन विषयों पर अन्तरात्मा में विचार किया है ? इसका क्या परिणाम होगा ? देश के बेकारी की समस्या किधर हल होगी । ये प्रतिवर्ष लाखों ग्रेजुयेट विश्व-विद्यालयों से निकल कर कहाँ जायँगे और क्या करेंगे ? इंगलैंड में जाकर क्लर्क बनेंगे या जापान में जाकर जूता सियेंगे ?

यह अक्षरशः सिद्ध है कि पाश्चात्य शिक्षा-पद्धति जो कि आजकल भारतवर्ष की शिक्षा-प्रणाली का मूल आदर्श है ।

स्वयं ही दोषपूर्ण है। बिना अच्छे चाल-चलन के शिक्षा व्यर्थ है। यद्यपि विश्व-विद्यालय की शिक्षा के समान कुछ भी उत्तम नहीं है, किन्तु वही शिक्षा सदाचार, सद्विचार तथा ब्रह्मचर्य से शून्य होने पर, उससे अधिक बुरा कुछ भी नहीं है।

देश में बेकारी ने सहस्रों उपद्रव खड़े कर दिये। चोरी, डाका, प्राण हत्या, विश्वासघात, धूर्तता, पाखण्ड तथा अनेकों पाप चारो ओर फैल गये। विषयों ने देश को बन्धन में जकड़ लिया। जहाँ सदाचार का झण्डा फहराता था, सद्विचार का डंका बजता था वहीं व्यभिचार की कृष्ण ध्वजायें उडने लगीं। पाप का डंका पिटने लगा। हा! आदर्श देश विश्वगुरु तू अपने कुशिक्षित कुपुत्रों के द्वारा रसातल में धँसा जा रहा है।

आज सारा देश छिन्न-भिन्न हो रहा है! एक ओर तो विषय की भयंकर लपटें जन-समाज को भस्म कर रही हैं। दूसरी ओर पाप की प्रचण्ड विभीषिकाएँ दौड़ रही हैं। वह देखो! सामने से अप्राकृतिक व्यभिचार तुम्हारे छोटे-छोटे अबोध बच्चों को हड़पन के लिये दौड़ा चला आ रहा है। घूम जाओ। अपने पीछे देखो! पीठ पीछे। व्यभिचार तुम्हारा सत्यानाश कर रहा है। तुम्हारे बच्चे २ इसके फन्द में फँस गये हैं! तुम्हारी कुँवारी कन्यायें, अबोध बालिकायें, गौरी और रोहिणी कहाने वाली—आठ-आठ नौ-नौ वर्ष

की देवियाँ उससे अपना पिण्ड नहीं छुड़ा सकतीं ।

सर्वत्र पाप की लहर दौड़ रही है। इसी पाप की भयंकर मनोवृत्ति ने देश का सत्यानाश कर दिया। सहस्रों काण्ड नित्य हो रहे हैं। अन्यत्र की कौन कहे ? बड़े-बड़े विद्यालय, स्कूल, कालिजों, छात्रावास तथा युनिवर्सिटियों के भीतर जाकर देखो ? अल्पवयस्का अविवाहिता, कन्याय पथ-भ्रष्ट होरही हैं। बड़े २ लड़के दुर्गुण सीख रहे हैं। आचार-विचार पातालवासी हो रहा हे। भक्ति-भाव तर्पण कर दिया गया है। श्रद्धा बिलख रही है और प्रेम रो रहा है। वैदिक ज्ञान निद्रित पड़ा है। जहाँ देखो वहाँ ही अवस्था विपरीत है।

आज भारत में कुशिक्षा का प्रकोप है। प्राचीन सभ्यता और शिक्षा आज कहाँ ? उन गुरुकुल और ऋषिकुलों की मर्य्यादा कहाँ ? उन ब्रह्मचारियों का रहन-सहन तथा आचार-विचार कहाँ ? आधुनिक शिक्षा और प्राचीन शिक्षा में आकाश-पाताल का अन्तर हो गया। एक समय था जब बच्चा २ उस शिक्षा से देश को जगमगा देता था। आज ऐसा समय आया है कि वर्त्तमान शिक्षा-प्रवाह में बच्चा ही बच्चा नहीं देश का देश रसातल की ओर बड़े वेग से जा रहा है।

देश की भीषण परिस्थिति का कारण आधुनिक शिक्षा है।

इस शिक्षा से मानव जीवन का विकास कैसे हो सकता है ? किस प्रकार उन्नति की आशा की जा सकती है। कैसे मातृभू का उद्धार हो सकता है। कैसे मर्य्यादा स्थिर रह सकती है। सब असम्भव! भारत को पूर्वीय शिक्षा की आवश्यकता है।

तुझे केवल विज्ञान--शिक्षा की आवश्यकता नहीं, केवल इन्द्रियों की शिक्षा ही की नहीं, केवल ज्ञान की शिक्षा की भी नहीं, बल्कि बोध की शिक्षा को तुम्हें अपने विद्यालयों में स्थान देना चाहिये। केवल कारखानों की दक्षता *की शिक्षा और स्कूल कालिजों की परीक्षा पास करने की* शिक्षा तुम्हारी यथार्थ शिक्षा नहीं है। तपोवन में, प्रकृति के साथ मिलकर तपश्चर्य्या के द्वारा पवित्र होना ही तुम्हारी यथार्थ शिक्षा है और आदर्श शिक्षक ही उसके आधार हैं।

शिक्षक ही संसार के प्राण हैं। तुम्हारे मनोरथ-रूपी चन्द्रमा, देश के जीवनाधार बालकों का जीवन उन्हीं के हाथ में है। वे ही देश का मुख उज्ज्वल रख सकते हैं। तुम लोगों ने अपने भाग्य को उन्हीं के हाथों में सौंपा है। देश की अभिलाषायें उन्हीं के द्वारा पूर्ण होंगी। माँ वसुन्धरा एक टक उन्हीं की ओर निहार रही है।

शोक! आज शिक्षक समाज क्या हो गया ? वह ऋषियों का तपोवन, ब्रह्मर्षियों की कर्त्तव्य-निष्ठा, आचार्य्यों की धर्म-

शिक्षा, कुलपतियों का उदाराशय, विद्या की महत्ता तथा शिक्षा का प्रभाव क्या हुआ ? कहाँ वह गया ? प्राचीन शिक्षकों की मनोवृत्तियाँ किधर छिप गईं ?

वर्त्तमान शिक्षकों को देखो ! उनकी विद्या और बुद्धि की ओर निहारो तथा उनके आत्म-संयम और इन्द्रिय-दमन पर विचार करो ! उनके मनोनिग्रह पर लक्ष करो, उनके सदाचार और सद्विचार पर दृष्टि डालो एवं उनके स्वास्थ्य, ब्रह्मचर्य, धर्म, सत्य, तप तथा विवेक की परीक्षा लो । शोक ! यहाँ तो कुछ भी नहीं । पिण्ड खोखला है ! तोंद पोला है । शरीर निःसार है । यहाँ कामिनी की गन्ध नहीं, किंशुक का वास है । ये तो दूर से चमकने वाले ढाक निकले । टेसू ।

आज सहस्रों शिक्षक अविद्या के अन्धकार में डूबे हुये हैं । स्वयं शिक्षा के स्वरूप को नहीं जानते । स्वास्थ्य-ज्ञान से रहित हैं, उनका विवेक का द्वार बन्द है, वीर्य रक्षा के महत्त्व का भाव उनके हृदय में जगा ही नहीं, साधना और आत्मज्ञान तो दूर रहा ? वे बालकों को कैसे शिक्षा-सागर से पार करायेंगे ? कैसे उन बच्चों मे नैतिक, शारीरिक और मानसिक भाव भरेंगे ? और कैसे अबोध बच्चों को संसार के सब कामों के योग्य बनायेंगे ?

कहावत प्रसिद्ध है—पत्थर की नाव, जिसे तैरने का ज्ञान

नहीं, उस पर बैठ कर या उसका आश्रय लेकर कोई महा सागर पार नहीं जा सकता है, बल्कि डूब जायगा।

जो कान्तिहीन, रोगी और दुर्व्यसनी है, जिसका मन कामी और विषयी है, जो बाजार में जाकर वेश्याओं के यहाँ मदिरा पान कर कुकर्म करता है, जो अप्राकृतिक व्यभिचार का प्रेमी है और जिसे उपदंश और औपसर्गिक प्रमेह जैसे भयंकर राजरोगों ने क्रीतदास बना लिया है। उस दुश्चरित्र का बालकों पर क्या प्रभाव पड़ेगा? एक नहीं— अध्यापकों के सहस्रों कुकृत्यों के जीते-जागते उदाहरण पुण्य-भूमि में पाप-स्तम्भस्वरूप खड़े हैं। एक नहीं, बीसों अध्यापकों के निन्द्य रोग तथा सैकड़ों मास्टरों के मेह, स्वप्नमेह तथा उपदंशादि व्याधियों को हमने हटाया है। मैं जानता हूँ कि इन रोगों का प्रादुर्भाव उन अध्यापकों में दुश्चरित्रता के कारण ही हुआ है।

आज अधिकांश शिक्षकों की आत्मायें कलुषित हो रही हैं। वे स्वयं ही अपना सुधार नहीं कर सकते। उनके सिर पर पाप के बाप-दादे चढ़ कर उन्हें पीस रहे हैं। भोगों ने शरीर के बल को भोग डाला, विषय-वार्त्तालाप ने वचन को भ्रष्ट कर दिया तथा मन के दूषित भावों ने मस्तिष्क को चौपट कर दिया। शरीर, वचन और मन—तीनों नष्ट हो गये। आगे उन्नति की आशा तो नितान्त मूर्खता है।

शिक्षको ! मास्टरो ! अध्यापको ! प्रोफसरो ! जरा संसार-रङ्गमञ्च पर खड़े होओ। वर्तमान विश्व को सुधारने वाले जीवो ! आधुनिक संसार को उपदेश देने वाले शरीरों ! इस पतित जगत् के अन्धकार का नाश करने वाले पुरुषो ! अपनी ओर देखो ! पश्चात् सिर उठा कर प्राचीन आचार्य्य महर्षियों के कर्मिष्ट शरीरों को देखो ! ये तुम्हारे सामने अतीताकाश में जगमगा रहे हैं। प्राचीन विद्यार्थी गुरु-दक्षिणा में प्राण तक देने को तैयार रहते थे, पर आज परीक्षा के पश्चात् विद्यार्थी ही तुम्हें पीटने के लिये तैयार रहते हैं। प्राचीन आचार्य्यों को संसार देवतुल्य मानता था, पर आज तुम्हारी निन्दा हो रही है। जनता तुम से विरक्त है।

पहले आचार्य्यों में सत्य का बल था, क्षमा की ढाल थी, ज्ञान का खङ्ग था और ब्रह्मचर्य के तप की अनन्त विभूति थी। तुम्हारे पास क्या है ? है कोई अलौकिक शक्ति, तो बताओ ? देखो संसार तुम्हें देख रहा है। तुम्हारे उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा है।

शिक्षकों के सुधार की सब से पहले आवश्यकता है, इनके सुधार हुये बिना देश का सुधार होना भ्रम है। इनके अन्तरात्मा में आचार्य्यों के भावों को भरना होगा। इन्हें कर्मवीर, जितेन्द्रिय तथा मनोनिग्रही बनाना होगा। इन्हें संयम, शील,

श्रद्धा-भक्ति तथा ज्ञान के पथ पर चलाना होगा। नहीं । इतना ही नहीं। इन्हें पूर्ण शिक्षक बनाना होगा। तभी तुम्हारे बच्चे तुम्हें पतन के गह्वर से उठा सकेंगे।
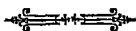
ब्रह्मचर्य के नाम पर

आज ब्रह्मचर्य के नाम पर इस अभागे देश में कितना अत्याचार और व्यभिचार फैल रहा है। सहस्रों ब्रह्मचर्य के नाम को कलंकित करने वाले कुलांगार कालनेमि बने हुये भीतर ही भीतर गिरह काट रहे हैं। सैकड़ों जटा-जूट धारण कर पाखण्ड मूर्तियाँ, धन-धर्म की वंचना कर रही हैं। अनेकों कामी इसी की आड़ में अपनी कामाग्नि बुझा रहे हैं। हा! आज विज्ञ भारत अज्ञान के अन्धकार में गिर कर कैसा ठगा जा रहा है।

वर्तमान संसार में ब्रह्मचर्य का सब से बढ़कर दावा महन्तों और पापों का है। ये ही समाज में अपने सदाचार और ब्रह्म-चर्य का डङ्का पीटते हैं। इसके बाद वर्त्तमान साधु, संन्यासी, उदासी अर्थात् वैरागियों का दल ब्रह्मचर्य का झंडा लेकर समाज में दौड़ता है और चारों ओर से अपने को ब्रह्मचारी सिद्ध करने का सतत प्रयत्न करता है। इतना ही नहीं, नागा, अवधूत, नाथ, योगी, जंगम, वैष्णवादि सभी अपनी २ खँजड़ी और ढोल पीटते हुये दृष्टिगोचर होते हैं। कोई नैष्ठिक का गीत गाता है और

को' पने को वृहद् ब्रह्मचारी सिद्ध करता है। उपकुर्वाण का तो यहाँ कोई नाम ही नहीं लेता।

भारतीयो! एक वार अपने इन नैष्टिक और वृहद् ब्रह्मचारियों को देखो! धर्म के विरुद्ध आचरण करने वाले ढोंगियों को देखो। ब्रह्मचर्य के नाम पर कालिमा पोतने वाले कुलांगरों को देखो। पवित्र भूमि को भ्रष्ट करने वाले वर्णसंकरों के जन्मदाताओं को देखो। नहीं! नहीं! इन देश-द्रोहियों को देखो। जिनके द्वारा तुम्हारा सर्वनाश हो रहा है, जिनके चक्र में पड़कर तुम्हारी वहू-वेटियाँ लुट रहीं है जिनकी कामाग्नि में तुम्हारी सतियाँ आहुति वनकर पड़ रही हैं। जिनके दुर्व्यसन में तुम्हारे अबोध वच्चे फँस रहे हैं जिनके दुर्गुणों में तुम्हारा धन-धर्म नष्ट हो रहा है।

देश अन्धा हो गया। दिव्य ज्ञान जाता रहा। काल के प्रवल थपेड़े ने इसके ज्ञान और वल को हर लिया। पतन के ठोकरों ने इसकी बुद्धि भ्रष्ट कर दी। यह वास्तव में वलहीन और विवेकशून्य हो गया। भारत! क्या सचमुच तू हिजड़ा हो गया? कि समाज की छाती पर यह नग्न-नृत्य देख रहा है। शोक! वृद्ध भारत! विश्वगुरु तुम्हारे लिये शोक!

वाचको! पुण्य-भूमि को पापियों ने महारौरव वना दिया। कामियों के काले कारनामे कहाँ नहीं दिखाई पड़ते?

समाचार-पत्र के प्रेमियों से पूछो ! वे बतलायेंगे कि भारत-वसुन्धरा के वक्ष पर ब्रह्मचर्य के नाम से कितना पापाचरण हो रहा है। ब्रह्मचर्य के शिखण्डी-सुधारकों के द्वारा देश का कितना ह्रास हो रहा है। ब्रह्मचारी नामधारी धूर्त्तों के द्वारा कितना नाश हो रहा है। यह कोई कहने का विपय नहीं, इसे तो प्रत्येक समझदार जानता है। फिर भी विषयकाल ग्रास में पड़ा हुआ विपयी समाज कान में तेल डाले पड़ा है। नेत्रों से देखता है तो भी अन्धहीन के समान लज्जा खोकर भयंकर अपमान सह रहा है।

अन्धभक्तों ! जागो उठो, अरे कुछ तो ध्यान दो तुम्हारे विपक्षी-वृन्द तुम्हारी निन्दा कर रहे हैं, पुरुप क्या स्त्रियाँ तक तुम्हें फटकार रहीं हैं, दूसरे देशों के बच्चे २ तुम्हारे इस अन्धभक्ति को देख २ हँस रहे हैं। कुछ तो आत्मपन धारण कर पापियों का प्रतिकार करो। माँ वसुन्धरा को बचाओ, बहू-बेटियों की रक्षा करो, अबोध शिशुओं को सुधारो ! जागो अरे जागो, वर्तमान ब्रह्मचर्य-प्रवाह से जाते हुये धन-धर्म को बचाओ। अपने जगमगाते हुए नाव के पतवार को स्वयं पकड़ो।

ब्रह्मचर्य के पवित्र नाम को कलंकित करने वाले कामियो ! महन्त, पोप, साधु, संन्यासी, उदासी और वैरागी शब्द की निन्दा कराने वाले नराधमों ! त्याग की मूर्त्ति धारण कर कामिनी

और कांचन ढूँढने वाले ढोंगियों, ब्रह्मचारी का वेश बना विषयों से प्रेम करने वाले प्रमादियों! संसार तुम्हारे कुकृत्यों को तीक्ष्ण दृष्टि से देख रहा है। तुम्हारे स्वयं शरीर के भीतर छिपे हुये विष को तुम्हारे भोले-भाले शिष्यों ने देख लिया है। तुम्हारी आन्तरिक मनोवृत्ति का चित्र तुम्हारे नेत्रों से टपक रहा है। तुम जानते हो कि तुम संसार के आँख में धूल झोंकते हो, परन्तु यह समझना तुम्हारी भूल है।

महन्तों! पोपों! ब्रह्मचारियों! वीर्यपात करना, देव-दासियों के साथ रास रचना, व्यभिचार करना, वेश्याओं का समागम, ब्रह्मचर्यनाशक मादक वस्तुओं का सेवन ही महन्ती है? क्या यही ब्रह्मचर्य का साधन है। सुन्दर बालिकाओं के साथ स्वर्ग जाना, गृह-देवियों का सतीत्व हरण करना, लोगों को धर्म के आडम्बर में डालकर व्यर्थ हैरान करना ही पोपों का कर्त्तव्य है। छोटे-छोटे बच्चों का जीवन नष्ट करना, राम चेलों को अप्राकृतिक व्यभिचार का पाठ पढ़ाना। बहू-बेटियों को भगाना-यही ब्रह्मचारियों का कर्तव्य है। यह असत्य नहीं। आज लाखों नराधम त्यागियों का वेश बना त्याग के पवित्र नाम को कलंकित कर रहे हैं।

बाल्यकाल से ब्रह्मचर्य की शिक्षा के बिना कोई ब्रह्मचारी नहीं बन सकता। वर्तमान ब्रह्मचारियो! अतीत काल के

ऋषियों से शिक्षा ग्रहण करो। अरे ! तुम्हीं देश के सर्वस्व थे। तुम्हीं देश के रक्षक थे, तुम्हीं विद्या के उपदेशक थे, तुम्हीं धर्म के प्रवर्त्तक थे। उठो ! प्रमाद और विषयों को हटाओ ! लज्जा करो, कुछ तो मनुष्यता धारण करो ! तुम्हारी संख्या कम नहीं, यह एक देश क्या ? तुम संसार का सुधार कर सकते हो। आगे बढ़ो और दैवी गुणों से विभूषित हो, विश्व को जगा दो।

सुधार-पीठों का नग्न चित्र

जरा सुधार-पीठों की ओर देखो, ये ही तुम्हें सर्वशक्ति-सम्पन्न बनाने का ठेका लिये हुये हैं। इन्हीं का दावा देश में शिक्षा और सभ्यता फैलाने का है। ये ही संसार को वास्तविक मनुष्य बनाने का ढींग मारते हैं। संसार की उन्नति का गर्व इन्हीं को है। पाठशाला, स्कूल, कालिज, युनीवर्सिटी तथा एक से एक विद्यालय एवं आश्रमों को देखो ! और इन पर विचार करो।

सुधार-पीठों के अन्तरात्मा का वर्णन करते हुये लेखनी थर्रा उठती है। हृदय दहल जाता है। कहाँ वह स्वर्गीय सोपान और कहाँ यह नारकीय जीवन ! कहाँ वह पवित्र हृदय और कहाँ यह कलुषित अन्तरात्मा ! कहाँ वह सदाचार का साम्राज्य,

कहाँ यह विषय-वासना का क्रीड़ोद्यान ! कहाँ वह शान्त तपोवन, कहाँ यह अशान्त नगर, कहाँ वह पर्णकुटियाँ, कहाँ यह अट्टालिकायें, कहाँ वह खुरुहरी चटाइयाँ, कहाँ यह गद्दी पड़ी चमकती हुई कुर्सियाँ, कहाँ वह ब्रह्मचारियों की कौपीन कहाँ यह कोट पैन्ट और हैट का भड़कीला सूट, कहाँ वह कन्दमूल फल और कहाँ यह कचालू और गुपचुप, दही, बरे आदि तमोगुणी आहार । भीषण परिवर्तन !

वर्त्तमान शिक्षालयों को छोड़ो, अंग्रेजी युनिवर्सिटियों के को-एजुकेशन (सह-शिक्षा) को जाने दो, आगे बढ़ो, बड़े २ सुधार पृष्ठों को देखो, उन आश्रमों पर दृष्टि डालो, जिसे ऋषियों के समाज ने लोक-कल्याण के लिये स्थापित किया था, सिद्धपीठों पर दृष्टि डालो, जहाँ से मुक्ति का बीमा कराया जाता था, जहाँ जाने से मनुष्य, मनुष्य बनता था। क्या हुआ ? सुधार पीठ तीर्थों पर चलो, कैसा परिवर्त्तन, भयानक स्थिति, धर्म-सुधारक मठों के निकट जाओ, क्या पाते हो ? कुछ कहो तो ! सर्वनाश !

जहाँ ऋषियों के गृह-सूत्रों का प्रचार था, वहीं अविद्या राक्षसी का साम्राज्य है । जहाँ सदैव वेदध्वनि कर्ण-रन्ध्रों में गूँजा करती थी, वहीं काम—सूत्रों का शब्द सुनाई पड़ रहा है, जहाँ यज्ञ का सुगन्धित धूम्र आच्छादित रहता था वहीं आज

मादक वस्तुओं का अपवित्र नाशकारी धूम्र छा रहा है। जहाँ सदाचार और सद्विचार का प्रचार था, वहीं व्यभिचार और कुविचार का साम्राज्य है। जहाँ कभी ऋषियों के मनोहर उपदेश होते थे, वहीं आज भाँड-भडुओं का अश्लील आलाप हो रहा है, जहाँ कभी हरि-कीर्त्तन होता था, भक्ति के सरस-श्रोत का प्रचार था, वहीं आज अश्लील शृंगार की धार बह रही है, जहाँ लीलामय की तपोभूमि थी, वहीं आज वेश्यायें और लौंडे नाच रहे हैं, जहाँ कभी घी और दूध की धारा बहती थी वहीं आज निरपराधों का रक्त बह रहा है।

वाचकवरों! जहाँ ब्रह्मचारियों का निवास था, वहाँ आज व्यभिचारी लोग ऊधम मचा रहे हैं। जहाँ पुण्यात्माओं का सम्मेलन होता था वहीं पापियों का सङ्ग हो रहा है, जहाँ संस्कारों की रक्षा की जाती थी वहीं व्रात्यों का समुदाय घूम रहा है, जहाँ धर्म की ध्वजायें उठती थीं वहीं आज अधर्म का प्रचार हो रहा है, विधवा-व्यभिचार, बाल-हत्या, भ्रूणहत्यादिक अनेकों कुकृत्य कालरूप धारण कर निर्भय विचर रहे हैं।

गुरुकुलों और ऋषिकुलों को देखो। अनाथाश्रमों को निहारो, विधवा, वनिता तथा इसी प्रकार के अनेकों संस्थाओं को देखो, उनके उद्देश्य तथा कर्म की ओर दृष्टिपात करो, उनके जघन्य कुकृत्यों पर विचार करो, अमानुषिक कर्म करने

वाली बड़ी २ संस्थाओं पर लक्ष्य करो, अभी कुछ ही दिन की बात है, कलकत्ता, पटना, छपरा, काशी, हरिद्वारादि प्रसिद्ध स्थानों की घटनाओं को भूल गये ? नहीं स्मरण होगा।

हाँ! आज भारत के सुधार-पीठों का सर्वनाश हो गया, जहाँ त्यागियों का संघ निवास करता है, वहीं रागियों का जमघट है, जहाँ के अन्न से तपस्वियों तथा बटुकों का जीवन चलता था आज उसी अन्न से कुकर्मियों का काम चल रहा है, जिस धन से देश और समाज की रक्षा की जाती थी आज वही नीचों के हाथ में पड़कर अबोध गोवंश का संहार कर रहा है। जो शक्ति संसार को ज्ञान के प्रकाश में पहुँचाती थी वही आज देश को अन्धकार में डाल रही है जहाँ के लोग समदर्शी होते थे, वहीं के आचार्य्य आज स्त्रियों को काम-दृष्टि से देखते हैं और जहाँ मैथुन शब्द का ध्यान नहीं था, वहीं मैथुन-कृतान्त प्रत्यक्ष स्वरूप धारण किये सदैव खड़ा है।

वर्तमान सुधार-पीठों ने ब्रह्मचर्य का नाश कर दिया, कतिपय आश्रमों ने तो विश्वगुरु वृद्ध भारत के मुँह में कलंक की कालिमा बिना पोते नहीं छोड़ा, व्यक्तिगत करोड़ों आत्माओं ने तो वह अमानुषिक कर्म कर दिखाया है, जिसे दानवों ने भी कभी नहीं किया था। शोक ? आत्मज्ञानियों की सन्तान, शोक!

सुधार-पीठों ! वास्तविक सुधार-पीठ बनो तुम्हारे ही ऊपर देश की दृष्टि है, तुम्हीं भावी सुधारकों को उत्पन्न कर सकते हो, तुम्हीं देश को सुधार सकते हो, तुम्हीं जन्मदा को दुःखों से बचा सकते हो, तुम्हीं कलि की कठोरता को मिटा सकते हो, तुम्हारे ही द्वारा देश में कृत-युग का पुनीत काल उदय हो सकता है। लज्जा करो, परस्पर मिलकर कुरीतियों से रहित हो देश को उठा दो। साधु नामधारी पाखण्डियों को सुधारो, महन्तों को शिक्षा दो, आश्रमों के संचालकों को योग्य बनाओ, तभी कल्याण हो, अरे देर मत करो, पतन के गह्वर में गिरे हुये वृद्ध भारत को शीघ्र उत्थान के शिखर पर बैठाओ।

पाखण्ड का व्यापार

संसार संदिग्ध हो गया, सत्यासत्य का ज्ञान जाता रहा, लोगों न मूल ध्येय को छोड़ दिया, प्रकृति के वास्तविक रूप की छीछालेदर हो गई, सर्वत्र कृत्रिमता का बोलवाला है और जिधर देखो, उधर ही पाखण्ड का व्यापार बढ़ रहा है। जब ईश्वर-भक्ति तक में पाखण्ड घुस गया, तब और विषयों की क्या दशा होगी।

आज ब्रह्मचर्य क्या है ! सत्य धर्म के नाम पर क्या हो रहा है। भक्ति और पूजा का क्या स्वरूप है। तीर्थ, देवालय, कथा, पुराण तथा मन्दिरों की मूर्त्ति-पूजा का क्या रहस्य

है ? श्राद्ध, तर्पण तथा गुरु-दीक्षा में क्या होरहा है ? उपदेश, सुधार तथा परोपकारी कार्य्यों में कौन घुसा है ? एक एक कार्य्य में, एक एक अङ्ग में, देश के कोने २ में कौन अपना जाल बिछा रहा है ?

देश के पतन का कारण क्या है ? वैमनस्य की जड़, अज्ञान का वृत्त, अन्धकार का यंत्र क्या है । धर्म का शत्रु, सत्य का काल तथा वृद्धि का ह्रासक मन्त्र क्या है ? दैवी गुणों का नाशक, आत्मा को कलुषित करने का साधक तथा चतुर्फलों का बाधक क्या है ? एक वस्तु ! एक कर्म, एक नाशकारी तन्त्र । कौन ? यही पाखण्ड ।

पाखण्ड ने भारत को आरत कर दिया इसी ने असंख्यों जातियाँ उत्पन्न कर दीं, इसीने देश की सभी शक्तियों का नाश कर दिया, इसी के द्वारा देश का धन-धर्म नष्ट हुआ । हा ! इसी अधम ने स्वर्ण-भूमि को श्मशान-भूमि बना दिया, इसी दुष्ट ने, वीरभोग्या वसुन्धरा को खण्ड-उर्वी कर दिया । हा ! कहाँ तक कहें, इसी क्रूर नरपिशाच के मूर्ख कामी प्रेमियों ने देश को अज्ञान के प्रबल अन्धकार में डाल दिया । भारतीयों ! आँखें खोल कर देखो । पाखण्ड के प्रलयकारी कृतान्त स्वरूप को देखो, किस प्रकार शीघ्रता से तुम्हारे देश का सर्वनाश कर रहा है ।

घर में पाखण्ड, बाहर भी पाखण्ड, छोटे में पाखण्ड, बड़ों

में पाखण्ड, कर्म में पाखण्ड, धर्म में पाखण्ड, न्याय में पाखण्ड, दया में पाखण्ड, पाप में पाखण्ड, पुण्य में पाखण्ड, ओ हो! जहाँ देखो, वहीं पाखण्ड। सोने में, खाने में, पीने में, हँसने में और रोने में, चलने में, फिरने में, बैठने में, उठने में हाय! हाय आगे भी वही, पीछे भी वही, ऊपर भी वही, नीचे भी वही-समस्त दिशाओं में वही बोल रहा है, वायु उसी को लेकर बह रही है। कोई स्थान इससे वंचित नहीं।

संसार पाखण्ड में ठगा जा रहा है, इसी ने समय को पलट कर कलियुग बनाया, विभु के वास्तविक भक्ति से दूर हटाया, फूट का बीज डाला, मनुष्यता को दूर भगाया, सत्य-अस्तित्त्व को मिटाया। भारतीयों चेतो, अब भी सोचो और पाखण्ड के व्यापार को बन्द करो, तिलक, कण्ठी और माला भक्ति नहीं है, जटाजूटादि वेशभूषा ही वैराग्य नहीं है, काषाय वस्त्र धारण करना ही त्याग नहीं है, कौपीन और दण्ड ही ब्रह्मचर्य नहीं, खान-पान ही धर्म नहीं, यह सब ढोंग है। वास्तव में सत्य वस्तु तो कुछ दूसरी है।

सत्य निरन्तर हृदय में व्यापक है। हम अपनी निर्बलता के कारण पाखण्ड का आश्रय लेते हैं, जिसके द्वारा हम मूल भी खो बैठते हैं। अपने को संसार के सन्मुख वैसे ही प्रगट करो जैसे तुम अन्तर से हो, तभी तुम्हारा निस्तार होगा। सत्य

को अपनाओ, कृत्रिम पाखण्ड पथ से मुँह मोड़ो, तभी तुम सुधरोगे और अपने बिगड़े देश के सुधारने में सफल होगे। भारतीयों! अपना वास्तविक अन्तर रूप संसार को दिखाओ और मन में सत्य धारण कर कार्य्य-क्षेत्र में आगे बढ़ो।

पतित समाज

प्रशस्त और उन्नत समाज पद-दलित हो गया। स्वर्ग भारत नरक बन गया। कुकर्मों के द्वारा विज्ञ देश अज्ञों के समान रो रहा है। दुर्व्यसनों के कारण विद्वान् विश्वगुरु अपनी ज्ञान-शक्ति खो कर ठोकरें खा रहा है, भारी दुर्दशा है। कल्याणकारी आज कल्याण का द्वार ढूँढ़ रहा है, स्वतन्त्रता का प्रवर्त्तक दासता के बन्धनों में जकड़ा जा रहा है वीर-प्रवर भीरु बन रहा है। क्यों, अपने पतित पुत्रों के द्वारा, अपने कुलांगारों के द्वारा, अपने उद्धारक नीच कृतघ्न भक्तों के द्वारा। आज दुर्गुणी समाज पतित हो गया, देखता है सुनता है, फिर भी तृष्णा के ग्रास में पड़ा हुआ पापों की ओर ही दौड़ रहा है, जानता है—कि वहाँ अग्नि की लपटें उठ रहीं हैं तौ भी उसी में जाकर कूदता है, उसे ज्ञात है कि अमुक कर्म के द्वारा मेरा अनिष्ट होगा परन्तु दुर्व्यसनी ज्ञानान्धि मूढ़ न मालूम क्यों बार २ उसी में प्रविष्ट हो अपना अधःपतन करा रहा है। उसे

ऋषियों ने बताया है निज पूर्वजों ने समझाया कि यह अधर्म है, अन्याय है, कुकर्म है, परन्तु उसे चिन्ता नहीं, ग्लानि नहीं। हा ! तनिक लज्जा नहीं, शोक नहीं, पापी ! दुर्व्यसनी समाज, उपदेशों को ठुकरा कर उन्हीं निन्द्य कर्मों को कर रहा है।

तुम्हारे समाज से बढ़कर और कौन पतित होगा? अरे ! संसार में कहीं २ या ३ वर्ष की अबोध बच्चियाँ भी विधवा होती हैं ५, ७ वर्ष के बालक कहीं किसी देश में विधुर होते हैं। ब्रह्मचर्य का वृषोत्सर्ग करनेवाले श्राद्धियों ! सोचो, कितनी बड़ी लज्जा की बात है। विश्वगुरु आत्मज्ञानियों की सन्तान ! संसार के सामने कैसे मुँह दिखा रहे हैं, तेरे सामने तुम्हारे दश दश वर्ष के बच्चे तथा बच्चियाँ काम के कराल मुख में प्रवेश कर रहे हैं, तुम्हारी सहस्रों गौरी और रोहिणियाँ मदनानन्द के लिये चञ्चल हो उठी हैं, तुम्हारी लाखों विधवायें मदन-ज्वाला जाल में जल रही हैं, तुम्हारे करोड़ों कपूत कामी कुत्ते के समान उनकी धर्मरूपी-अस्थि को चूसने के लिये भयानक षड्यन्त्र रच रहे हैं। तुम्हारी लाखों बहुयें जिन्हें अबोध बच्चों के साथ ५, ५, सात ८ वर्ष की अवस्था में व्याह लाये हो, अयोग्य पति मिलने के कारण मनमाना व्यभिचार कर रहीं हैं। तुम्हारे सहस्रों कपूत अपनी सहधर्मिणियों को छोड़ वेश्याओं की सेवा में अपना सौभाग्य

समझ रहे हैं। हाय! आज आँखों के देखते २ तुम्हारे पूर्वजों के नाम पर कालिमा पोती जा रही है, उनके सुयश की धज्जियाँ उड़ाई जा रही हैं।

पापों से पृथ्वी दब रही है, विधवाओं के आर्तनाद से आकाश सिहा रहा है, बाल, भ्रूणादि हत्याओं से दिशायें काँप रही हैं। इतने पर भी शान्ति नहीं, तुम्हारे ही सहस्रों सपूत स्त्रियाँ बन कर तुम्हारे सामने खड़े होते और राम कृष्णादि वीरों की हँसी उड़ाते हैं। अपने कुकृत्यों से पूर्वजों के गौरवों को मिट्टी में मिला रहे हैं।

यह किसका दोष है? सबों का उत्तरदायी धर्मात्मा बना हुआ ढोंगी समाज है। यदि समाज में शक्ति है, बल है, बुद्धि है, ज्ञान हैं और यदि पुंसत्व है तो वीरता से पापों का प्रतिकार करे, प्रायश्चित्त करे तभी शुद्धि होगी और निर्दिष्ट मार्ग पर पहुँच कर पूर्वजों के गौरव की रक्षा करेगा। नहीं तो पूर्वजों की कीर्त्ति के ही साथ यह पतित समाज भी नाश के अनन्त गह्वर में प्रविष्ट हो जायगा।

इसके अतिरिक्त आज सारा देश एक ऐसे भयङ्कर महामारी से ग्रस्त है, जो क्षण-क्षण में माननीय शक्ति का नाश कर रही है। वह इतना संक्रामक है, कि उसके कीटाणु इतने प्रबल शक्तिशाली हैं—जो बड़ी शीघ्रता से संसार को परास्त कर रहे

हैं। मूर्ख, गँवार, पढ़े-लिखे, निर्धन-धनवान, बालक-वृद्ध—सभी इसके चंगुल में फँसे हैं। आज भारत इस महामारी का आखेट हो रहा है वह क्या है ? जानते हैं ? धूम्रपान !

आज छोटे २ बच्चे, ज्ञानवान युवक अनुभव प्राप्त किये वृद्ध—सभी इसके क्रीतदास हो रहे हैं, जहाँ देखो, वहीं इसका शासन चल रहा है भाँग, गाजाँ, चरस, चण्डू, कोकेन, बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, अफीम, शराब आदि प्राणनाशक वस्तुओं से प्रेम कर रहा है। क्यों ? समाज सोचो, पतितावस्था को त्यागो ! अपनी निर्बलता को छोड़ो, अपने शिशुओं को इन विषयों से बचाओ।

तू ही बाल-विवाह वृद्ध-विवाह का भी पक्षपाती है, देश के दुर्दशा का कारण क्या ये नहीं हैं ? फिर भी देख सुनकर अन्धा हो रहा है। समाज क्या वास्तव में तू पतित हो गया ? क्या बारह २ वर्ष की कन्यायें ७० वर्ष के मृततुल्य नराधमों के साथ ब्याह देना धर्म है ? १०, १० वर्ष के बालक बालिकाओं का विवाह कर देना तुम्हारे शास्त्र का उद्देश्य है। मानव-जीवन को पाठ पढ़ाने वाला धर्मात्मा समाज का क्या यही उन्नति का मार्ग है।

तुम्हारे भीतर एक से एक दुर्गुण भरे पड़े हैं जब तक तुम इन सबों से मुक्त न होगे तब तक तुम्हारा सुधार बड़ी दूर है।

अष्ट-मैथुन

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणं ।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च ॥
एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम् ॥

—प्रजापति दक्ष

मैथुनों के विषय मैथुन से संसार का सारा सार बह गया, फिर भी तृष्णा के ग्रास में पड़ा हुआ मैथुनी संसार का मृतकतुल्य प्राणी मैथुन ! मैथुन ! चिल्ला रहा है । बाहर भीतर जहाँ देखो, मैथुन की ही कराला मूर्ति मुँह खोले त्रैलोक्यको ग्रसने के लिये खड़ी है ।

स्त्री-प्रसंग अर्थात् रति-क्रिया को मैथुन कहते हैं । तथा जिन उपायों से वीर्य-नाश होता है ऋषियों ने उसे मैथुन कहा है । मैथुन के द्वारा ही प्राणियों का अमूल्य धन वीर्य, शरीर से निर्वासित होता है । इसीकी उत्तेजना तुम्हें ब्रह्मचर्य से हटाकर दीन-हीन-दुर्बल एवं निःशक्त बना देती है, यही तुम्हारे मानुषी ज्ञान को उलटकर अविद्या के अन्धकार में डाल देती है । हा ! इसी के संसर्ग से यह देव-देह दानवाकृति धारण कर पूर्ण निन्द्य एवं अपयशी हो जाता है ।

मैथुनों ने संसार को मृतकसमान बना दिया । भोगों को

संसार ने नहीं भोगा, बल्कि भोगों ने ही संसार का भुगतान कर दिया। तुमने भोग करने की इच्छा प्रगट नहीं की, बल्कि अपने सुन्दर शरीर के नाश का विचार किया। तुमने अपना इसे इष्ट-पथ नहीं बनाया। समझ लो, दुद्धर्ष मृत्यु मार्ग का अवलम्बन किया। जिसने इसे धारण किया—याद रहे। उसका अभ्युदय-पथ रुद्ध हो गया। उसका उत्थान वहीं पर रुक गया। उसके शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों का द्वार बन्द हो गया। अब और आगे क्या बढ़ेगा। उसकी इति श्री का द्वार सन्निकट है।

ब्रह्मचारियों को इससे बचना चाहिये। मैथुन शब्द का उच्चारण होने से नहीं, केवल ध्यानमात्र से वीर्य चंचल हो उठता है। इस जाल में फँस जाने से ब्रह्मचारी शीघ्र नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है।

शरीर-शास्त्र-आचार्य्य विज्ञ पूर्वजों ने आठ प्रकार के मैथुन बतलाये हैं। इन्हीं अष्ट मैथुनों के प्रभाव से आज हमारा पुनीत धर्म ब्रह्मचर्य पतनावस्था में गिरकर पददलित हो रहा है। जिस कारण हम आज मतिमन्द, गतिहीन एवं मूक परतन्त्र बन कर रो रहे हैं।

स्मरण, कीर्तन, केलि, अवलोकन, गुप्त भाषण, संकल्प, अध्यवसाय और क्रियानिष्पत्ति यही आठ प्रकार के मैथुनों का

वर्णन महर्षियों ने अपनी संहिताओं में किया है। इन लक्षणों के त्यागने पर अर्थात् इनके विपरीत आचरण करने पर ही अखंड ब्रह्मचर्य का समुचित साधन हो सकता है। आदर्श ब्रह्मचर्य की पूर्ति एवं अध्ययन करने में इन मैथुनों का एक भी लक्षण न आना चाहिये। क्योंकि उपरोक्त लक्षणों में से एक भी यदि कहीं उदय हो जाय तो समझ लो कि उसका ब्रह्मचर्य खण्डित हुआ। वह कभी भी अपने व्रत को साङ्गोपाङ्ग पूर्ण नहीं कर सकता।

ब्रह्मचर्य का सबसे प्रधान शत्रु भोग है। भोग रोगों का आलय है। रोग दुःखदायी होते हैं। रोगों के उत्पन्न होने पर प्रकृति विपाक एवं वलहीन हो जाती है, जिसके द्वारा तुम पूर्ण आयु प्राप्त नहीं कर सकते, आरोग्य, सुख, शान्ति आदि सद्गुणों से तुम रहित हो जाते हो। शरीरस्थ पंचभूतों के वलहीन हो जाने पर वना-वनाया उपयोगी संसार विपर्यय वन जाता है। सबसे वड़ी हानि तो तुम्हें यह प्राप्त होती है कि तुम उस अलभ्य वस्तु को प्राप्त करने में सर्वदा असमर्थ हो जाते हो अथवा उस स्वर्ण उद्देश्य को पूर्ण नहीं कर पाते जिसके लिये हमने यह पांचभौतिक शरीर धारण किया है। अष्ट मैथुन ही तुम्हारे सम्पूर्ण पतनों का कारण है। विद्वानों ने उनका वर्णन निम्नप्रकार से किया है।

(१) स्मरण—विषयों के स्मृति वृत्ति का नाम स्मरण है, जिसे पहले कभी चित्र रूप में अथवा प्रत्यक्ष देखा है, जिसकी सुन्दरता का गुण-गान कहीं सुना है या कहीं पढ़ा है। उस स्त्री का ध्यान, चिन्तन एवं स्मरण करना स्मरण मैथुन कहलाता है।

(२) कीतन—कामिनियों के मनमोहक रूप, उनके गुण एवं अंग-प्रत्यंग की सुन्दरता का वर्णन करना अथवा स्त्रियों से सम्बन्ध रखने वाले शृंगारिक गायन (लैला-मजनू, सारंगा-सदावृज, शीरी-फरियाद) कामोत्पादक गजल और शैर दूषित विषरूपी विषय की बरसा करने वाली भ्रष्ट कजली की टेर या काम जगाने वाले कौवालियों की धुन तथा गन्दी-गन्दी अश्लील आलापों को ज्ञानियों ने कीर्तन मैथुन के नाम से पुकारा है।

(३) केलि—मन लुभाने वाली साक्षात् कामरूप नारियों के पास बैठना, उठना, मनोविनोद करना, ताश, शतरंज तथा चौपड़ खेलना, अबीर बुक्का उड़ा २ कर होली का त्योहार मनाना केलि मैथुन के नाम से प्रसिद्ध है।

(४) प्रेक्षण—स्त्रियों को घूरना, नीचतापूर्वक अपसूचक संकेत करना, राह चलती हुई स्त्री को गर्दन उठाकर पाप दृष्टि से बराबर देखना, कामवासना पूर्ति के लिये किसी स्त्री को छिप कर चोर दृष्टि से देखना प्रेक्षण मैथुन है।

(५) गुह्य भाषण—स्त्रियों में बार २ आना जाना, उनके पास बैठकर एकान्त में गुप्त बातें करना, उन्हें कामचेष्टा भरी हुई विपाक्त कथा-कहानियाँ सुनाना एवं शृंगाररस-पूर्ण भ्रष्ट उपन्यास एवं नाटकों की चर्चा करना, गुह्य भाषण मैथुन के नाम से प्रख्यात है।

(६) संकल्प—किसी स्वरूपवती रमणी को प्रत्यक्ष अथवा उसका सुन्दर फोटो देखकर, शृंगाररस-पूर्ण उपन्यास, नाटक तथा सिनेमा के रद्दी कामचेष्टापूर्ण भद्दे अर्द्धनग्न चित्रों को अवलोक कर उनकी कल्पना में लीन रहना, संकल्प मैथुन है।

(७) अध्यवसाय—अप्राप्य तरुणी स्त्री की प्राप्ति के लिये व्यर्थ भावपूर्ण प्रयत्न करना। किसी मनोनुकूल स्त्री के लिये मन में कुत्सित भावों का संचार करना, कटिबद्ध होना तथा निश्चय करना अध्यवसाय मैथुन कहलाता है।

(८) क्रिया-निष्पत्ति—साक्षात् रमणी से रमण करके अर्थात् प्रत्यक्ष भोग के द्वारा वीर्यपात करना क्रिया-निष्पत्ति, अथवा प्रत्यक्ष मैथुन कहलाता है।

यही उपरोक्त अष्ट मैथुन तुम्हारी दीनता की जड़ है। जब तक ये हमारे साथ रहेंगे, हम उन्नतशील नहीं बन सकते। तुम्हारा सिर संसार में कभी ऊँचा नहीं हो सकता। संसार के प्रति-

दुन्द्विता के क्षेत्र में उन जातियों के सामने तुम्हारे देश का मस्तक कभी नहीं उठ सकता जो वीर्य की पूजा करने वाली हैं।

भारतीयों ! मैथुनों के क्रीत दासों ! इसे छोड़ो ! यही तुम्हारे नाश का कारण है। अज्ञानियों ! वीर्य-रक्षा करो, यदि मैथुनों का शासन इसी भाँति रहा तो समझ लो ! नाती पोते कुल परिवारसमेत तुम्हारा संहार हो जायगा। जान लो, इसका एक लक्षण भी तुम्हारे वंश का नाश करने में समर्थ है, इसके आगे तुम क्या ? तुम्हारे देवता गण एक पल भी नहीं ठहर सकते।

अप्राकृतिक व्यभिचार

आज विश्व के विशाल वक्ष पर व्यभिचारों का ताण्डव हो रहा है। प्राचीन शास्त्राचार्य्य विशेषज्ञ महर्षियों ने तो अपने शास्त्रों में आठ ही प्रकार का मैथुन बताया है, परन्तु आज संसार में क्या हो रहा है, कितने प्रकार के व्यभिचार-रूपी मैथुन प्रचलित हैं। प्राकृतिक व्यभिचारों को छोड़ दो, देखो ! देश में कितने प्रकार के अनैसर्गिक एवं अप्राकृतिक व्यभिचार प्रकट हो दावानल के समान चतुर्दिक दहक रहे हैं। जान पड़ता है कि मैथुनों के मृतक पूर्वज अर्थात् मरे बाप-दादे स्वर्ग या नरक से उतर-उतर कर नाना प्रकार के

व्यभिचारों का भयंकर रूप धारण कर पृथ्वी की प्रजाओं को जीते ही जला रहे हैं।

हा ! कैसा दारुण काल है। देखो ! कैसे सत्यानाशी व्यभिचारों के दुःखाग्नि में संसार जल रहा है। व्यभिचारों का समुदाय दहकते अङ्गार के समान किस प्रकार जनता का नाश कर रहा है देखो, अरे देखो ! तुम्हारे आशारूपी चन्द्रमा अबोध शिशुओं पर अप्राकृतिक व्यभिचार-रूपी राहु किस प्रकार आक्रमण कर रहा है। तुम्हारे नवयुवकों का सुन्दर शरीर अप्राकृतिक व्यभिचार के प्रज्वलित अग्नि-ज्वाल में धक-धक करते हुये किस प्रकार भस्मीभूत हो रहा है।

विज्ञ ऋषियों एवं विश्व के विद्वानों ने स्त्री-प्रसङ्ग अर्थात् स्त्री-मैथुन सृष्टि-विज्ञान के अनुकूल माना है। इसके विपरीत अष्ट मैथुनों के अतिरिक्त जितने प्रकार के मैथुन संसार में प्रचलित हैं सभी अप्राकृतिक माने गये हैं। आज उन नाशकारी मैथुनों के द्वारा देश के करोड़ों अज्ञानी युवक अपना वीर्य वहा रहे हैं। उन मैथुनों में तीन प्रकार का मैथुन विशेष-रूप से प्रचलित है, पहला हस्तमैथुन, दूसरा गुद मैथुन और तीसरा पशु मैथुन है। तीनों अत्यन्त घृणित, निन्द्य, जघन्य तथा प्राणनाशक हैं। आज इन्हीं के द्वारा संसार का भीषण संहार हो रहा है। नवयुवक, वृद्ध तथा छोटे २ भोले-

भाले बच्चे इस विषाक्त वायुमण्डल में पड़ते ही अपना अमूल्य जीवन लुटा रहे हैं ।

प्रायः सर्वत्र यह रोग घुस पड़ा है । प्लेग, हैजा, इन फ्लुऐंजा से भी बढ़कर यह महारोग जन-संहार कर रहे हैं। अज्ञानी और अबोधों को जाने दो, यहाँ तो पढ़े-लिखे स्कूल, कालिजों के छात्र, अपटुडेट जैंट्ल्मैन; एफ. ए., बी. ए., और एम. ए., पास इंग्लिश युनिवर्सिटियों के बड़े २ विद्यार्थी आँखों पर उपनेत्र डटाये, बक समान बड़े प्रेम से इसीको देख रहे हैं । बड़े २ धर्मधुरंधर धर्माचार्य्य, व्यास कथावाचक पंडित, पुरोहित, पुजारी, अधिकारी, उपाध्याय और अध्यापकगण लुक-छिपकर जनता से आँख बचाकर इन्हीं काल-कोठरियों के विद्यार्थी बन रहे हैं ।

हस्तमैथुन

आज देश के नवयुवकों में हस्तमैथुन की व्याधि भीषण-रूप से फैली हुई है । इससे प्राणियों का सत्यानाश हो जाता है । इसका आक्रमण क्षय से भी विकट तथा महान् कष्टदायक होता है । देखा गया है कि यह क्रूर दानव अपने प्रेमियों को निर्दयतापूर्वक नष्ट कर देता है । बड़े २ शरीर-विज्ञान-विशेषज्ञ विद्वानों का कथन है कि यह प्रत्यक्ष हलाहल विष

बुझी हुई कुल्हाड़ी है । जिसे अज्ञानी युवक अपने ही हाथों अपने पैरों में मारता है। अंगों के क्षत-विक्षत होने पर जब उसे चेत होता है उस समय उसका शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक बल उससे दूर हो जाते हैं। शरीरस्थ रक्त-वीर्य एवं ओज क्षीण हो जाता है। उसका शरीर निःशक्त एवं निष्प्रभ हो जाता है केशिकायें तथा धमनियाँ बलहीन हो जातीं हैं। स्वयं असाध्य रोगों में पड़कर काल की शेष घड़ियाँ गिनने लगता है।

इस सत्यानाशी दुर्व्यसन का प्रचार विशेषकर नवयुवक, विद्यार्थी तथा अविवाहित पुरुषों में पाया जाता है कहीं २ गृहस्थ विधुर वर्ग भी इसके कराल चक्र में पड़ गया है। मठधारी महन्तों के नवयुवक मनचले चेले, जो लोक एवं समाज के भय से खुल्लम्-खुल्ला व्यभिचार करने में हिचकते हैं, रात्रि में लुक-छिपकर मुष्टि-मैथुन के नाशकारी घर्षण से वीर्यपात कर लिया करते हैं। कुछ कपटी साधुओं एवं स्त्रीयुक्त गृहस्थों में भी यह कुटेव घुस पड़ा है।

यह विनाश का कृत्य है, जो अज्ञानी जीव एकबारगी इसकी परिधि के अन्तर्गत आ जाता है, वह यावज्जीवन इस संहारकारी काल के दुर्भेद्य जाल से नहीं छूट सकता, उस अज्ञानी को तब चेत होता है, जब उसका शरीर, हृदय, बल,

वीर्य, मस्तिष्क, नस, नाड़ियाँ एवं मूत्राशय आदि निर्बल हो जाते हैं। मूत्रकृच्छ्र, मूत्रघात, अश्मरी, स्वप्नदोष तथा प्रमेहादि दुष्ट व्याधियाँ आ घेरती हैं। स्तंभन-शक्ति का नाश हो जाता है। इन्द्रिय के दुरुपयोग से कामदंड छोटा टेढ़ा निर्बल निःशक्त होकर मैथुन के अयोग्य एवं अशक्त हो जाता है बस! और क्या? चाहिये। भोगो भोग, पड़े २ चिल्लाया करो नवयुवती कामनियों के आगे पड़े-पड़े सिसकियाँ भरो, कामदंड पकड़-पकड़ कर मैथुन-मैथुन चिल्लाओ। रोओ, रोओ, खूब रोओ पर इससे क्या होता है? क्या थे, मनचले चलते पुर्जे! क्या होगये नपुंसक, हीजड़े!

मुष्टि-मैथुन का भयंकर परिणाम मिला। सिनेमा के भद्दे चित्रों का ध्यान, करने, बाजार में बिकने वाले नग्न चित्रों को देखने पुस्तकालय की कुर्सी पर बैठकर टेबल पर पड़ी हुयी, सरस्वती, माधुरी, रंगभूमि एवं सुधा की लचकीलि कमर तथा उन्नत उरोज वाली वारांगनाओं के मनमोहक चित्रों पर दृष्टि डालने आदि के कुफल को खूब चखो! मरो, अरे मरो! पिशाचो-क्यों नहीं मरते। पापियों, हतवीर्य हो गये। कामियों, निः-शक्त हो गये। पामरों, षंड हो गये। दुष्टों, क्या हुआ? क्यों चुप-चाप हो? बोलते क्यों नहीं? भरी जवानी में ही क्या बन गये? हीजड़े? क्यों अमूल्य शुक्र को शरीर से पानी की तरह बहा दिया!

दुराचारियों ! कुलांगारों ! प्रकृति ने जघन्य कामों को देख तुम्हें समुचित दंड दिया है । तुम्हारे साथ यही न्यायोचित व्यवहार किया गया है । यदि ऐसा न होता तो तुम्हारी अज्ञान निद्रा अभी तक नहीं टूटती । हाय ! हतभाग्य प्राणी अपना सर्वस्व खो देने पर, तू चेता ?

देख, तेरी नव-विवाहिता सुन्दरी सामने खड़ी है, अब वह अबला विचारी क्या करेगी । तू ने तो मुष्टि-मैथुन करके अपने को इस विषय जंजाल से छुटकारा पा लिया, परन्तु वह विचारी किस प्रकार इस कामजाल से उद्धार पायेगी ? क्या उसके लिये भी कोई अप्राकृतिक व्यभिचार ढूँढ निकाले हो ? अथवा उसे आजन्म ब्रह्मचारिणी या संन्यासिनी बनाओगे ?

जब ऋतुराज की सुरभित, शीतल, मंद और सुगन्धित वायु का झोंका उसकी कामशक्ति को भड़कावेगा, प्रावृत् के गम्भीर मेघों का तुमुल नाद उसके मन के मनसिज को मथेगा, शरद् की ज्योत्स्ना जब उसके शरीर में कामशक्ति को गमगमा देगी, उस समय उस काम के कठिन हिलोरे को कौन रोकेगा । कामदंड तो तुम्हारे पास है ही नहीं, बल वीर्य तो तुम खोही चुके हो । फिर उस मदन के दुर्भेद्य दुर्ग पर कैसे विजय प्राप्त करोगे ? बोलो ! उस समय, उस ज्ञानहीना, कामपीड़िता कामान्ध तरुणी की क्या दशा होगी ?

आत्मज्ञानियों की संतान सोचो ! तुम कैसे सन्तानोत्पत्ति में समर्थ होगे ? तुम्हारे मृतक पुरुषों का कैसे उद्धार होगा ? तुम कैसे संसार में सुखी रहोगे । अरे, मरने के बाद तुम्हारा कहाँ ठिकाना होगा ! पापियों, रौरव भी तुम्हें नहीं अपनायेगा ।

आज स्त्रियों में भी नाना प्रकार का अप्राकृतिक व्यभिचार फैल रहा है । अपने पुरुषों से कामवासना तृप्ति न होने पर स्त्रियाँ अप्राकृतिक रूप से, अथवा अन्यत्र जाकर भ्रष्ट हो जाती हैं । वर्तमान काल में विधवाओं को छोड़कर पुरुष वाली सहस्रों स्त्रियाँ भोग की ज्वाला-जाल में पड़कर देश का सत्यानाश कर रही हैं । फिर भी षंड् सुधारकों की आँखें नहीं खुलती ।

हम पूर्व ही लिख आये हैं कि हस्तमैथुन बड़ा क्रूर पिशाच है, जिसके द्वारा देश का तन मन धन सभी स्वाहा हो रहा है । इस निर्दय राक्षस से इतनी हानियाँ हो रही हैं, जिनका वर्णन करना शक्ति से बाहर है । साधारणरूप से यदि उल्लेख किया जाय तो एक पुस्तक बन जाय । अतएव हम यहाँ पर पाठकों के हितार्थ इस नाशकारी कुटेव के प्रधान-प्रधान दोषों को संक्षिप्तरूप से वर्णन करते हैं ।

यह शरीर को जर्जर बना देने वाला, भीतर-ही-भीतर पैठकर सर्वस्व खा जाने वाला, शरीररूपी वृक्ष में घुन लगा देने वाला, अकाल में काल को बुला लाने वाला प्रकट नाग से भी बढ़कर विषधर है। इसके स्पर्श करते ही शरीर में विष फैल जाता है। उस विष के प्रभाव से हमारे चैतन्य ज्ञान-शक्ति का लोप हो जाता है और हम शनैः २ इस प्राणनाशक कुटेव के क्रीतदास हो जाते हैं।

आत्मज्ञानियों ने इसे अर्थ, धर्म, काम और मोक्षनाशक लक्ष बताया है। आयुर्वेदज्ञ विद्वानों ने इसे शरीर से वीर्यादि धातुओं का विरेचक माना है। नीतिज्ञों ने इसे सुख, शांति का नाशक मनुष्यों का शत्रु जाना है। परन्तु शोक! आज तत्वज्ञानियों की संतान उसे अपना मित्र समझ अपना रही है उसका भीषण परिणाम! देश के कोने २ में कैसा प्रलय कर रहा है।

इससे बल नष्ट हो जाती ह, दृढ़ता जाती रहती ह, मैथुन से कहीं अधिक वीर्य निकल जाता है, इन्द्रिय की नसें निर्बल हो जाती हैं, मस्तिष्क खोखला हो जाता है, चेहरा निस्तेज और कांतिहीन हो जाता है, प्रसन्नता के भाव नहीं रह जाते, सर्वदा चित्त उदास और दुखी रहा करता है।

मंदाग्नि उत्पन्न हो जाती है, शौच शुद्ध नहीं होता,

जीभ नहीं रुकती, हृदय की धड़कन बढ़ जाती है, आँखें धस जाती हैं। शरीर की हड्डियाँ निकल जाती हैं। कपोलों की गुलावी जाती रहती है। उन पर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं। कभी २ देखा जाता है कि उनपर काला दाग भी पड़ जाता है।

अकाल में ही वाल पकने लगते हैं। मूँछों का रंग वदल जाता है। वाल्यावस्था में ही वृद्धता के लक्षण दिखाई देने लगते हैं, शरीर साहसशून्य हो जाता है, किसी काम में मन नहीं लगता, थोड़े ही परिश्रम में जी घबड़ा जाता है, शरीर फूलने लगता है, और छोटा काम भी पहाड़ के समान जान पड़ता है।

नींद नहीं आती, स्वप्नदोष होने लगता है, मूत्र के साथ वीर्य वहने लगता है। मूत्र की वृद्धि हो जाती है, हाथ-पैरों में सनसनी तथा हथेलियों और तलुओं में पसीना आने लगता है। मन पापी हो जाता है, आँखें चंचल हो जाती हैं, हृदय दूषित हो जाता है। रस से लेकर धातु पर्य्यंत समस्त सारभूत पदार्थ विदग्ध हो जाता है। पुरुष किसी योग्य नहीं रहता। अतः भारतीयों! इस अशुभ रूप को दूर करोगे या अपने समाज में इसकी प्रतिमा बनाकर पूजन कराओगे?
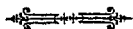
गुद-मैथन ।

यह तो हस्तमैथुन से भी भयानक है, हस्तमैथुन करने वाला नराधम तो स्वयं ही नारकी बनता है, परन्तु गुदमैथुनी तो अपने साथ एक अबोध बच्चे को भी ले डूबता है। आज संसार इस रोग से जर्जर हो रहा है, लाखों कामान्ध अज्ञान बालकों का नाश कर रहे हैं। हा! भीम और अर्जुन बनने वाले सन्तानों के साथ ऐसा अत्याचार! यह नारकीय कृत्य!

शोक! पापी समाज! शोक! डूब जाओ समुद्र में, गल जाओ हिमालय में, पापियों! यह पाप तुम्हारा नाश कर देगा। इसका प्रतिकार नहीं, ब्रह्महत्या से उऋण हो सकते हो। गोवध से छुटकारा मिल सकता है, समस्त महापापादि पापों को तुम पार कर सकते हो, परन्तु यह भयानक पाप कैसे छूटेगा! ओह नारकीय निशाचर! नर-पिशाच! रौरव भी तुम्हें देख डरेगा।

कितना निन्द्य विषय है, लिखते हुये लेखनी लज्जित हो जाती है, परन्तु इससे भी काम नहीं निकलता। दस्यु को दण्ड न देना दोष की वृद्धि करना है। पापियों के पाप को क्षमा कर देना पाप की वृद्धि कर देना है, अधर्म को बढ़ने देना धर्म का नाश करना है। असत्य का प्रचार करना सत्य का लोप करना है।

पापियों को दण्ड देना कर्मवीरों का काम है, दुराचारियों

को महात्मा ही सुधारते हैं, अधर्मियों को धर्मात्मा ही परास्त करते हैं, दुर्दण्डो के दर्प को दमनकारी ही तोड़ते हैं, पथ-भ्रष्टों को पथ-प्रदर्शक ही मार्ग दिखाते हैं।

पतित समाज! तुम्हें क्या योग्य ह? तुम्हारा क्या धर्म है? कैसे तुम इन कुलांगारों को सुधारोगे। मौन रहकर अथवा दण्ड देकर, कैसे अपने अबोध बच्चों की रक्षा करोगे। मौन रहकर अथवा सत्पाठ पढ़ाकर कैसे अपने चरित्रहीन युवकों को पथ पर लगाओगे, मौन रहकर अथवा मार्ग बताकर—

पतित समाज! तुम्हारा सत्यानाश हो गया। मौन ने तुम्हारा विध्वंस कर दिया। फिर भी मौन! मौन, चुप रहो, चुप रहो! मत बोलो।

आज संसार म अप्राकृतिक व्यभिचार बड़ी शीघ्रता से वढ़ रहा है। लोग कामवासना की तृप्ति के लिये पशुओं को भी नहीं छोड़ते, सहस्रों काण्ड नित्य सुनाई पड़ रहे हैं। दिन प्रतिदिन ज्यों २ समाज के उन्नति की आशा की जाती है त्यों २ यह पतित समाज और भी अधिक पाप-पंक में फँसता जा रहा है। बेटा कुकर्म कर रहा है। पिता, उसकी रक्षा करने को कौन कहे, मौन है। उसके उन्नति की आशा रखने वाले सभी लोग शान्त हैं—फिर कैसे वह मनचला नवयुवक सुधरेगा।

महात्माओं! यदि तुम उसे सुधारना चाहते हो, उसके हितैषी हो तो तुम्हें चाहिये कि उसे सदाचार का उपदेश दो, दुराचार के कुपरिणाम का भीषण चित्र उसके सामने रखो और अपने मन के आकर्षण के द्वारा उसके मन को धर्म-कार्य में प्रवृत्त करो। आकर्षण-शक्ति से काम लेने पर एक नवयुवक क्या, तुम संसार को अपनी ओर खैंच सकते हो। एक भारत क्या, सम्पूर्ण विश्व का सुधार कर सकते हो।

आवश्यकता है आकर्षण-शक्ति की-यदि तुम में विद्या है तभी संसार को दान दोगे, यदि तुम में बल है तभी दूसरों का हित करोगे, इसी भाँति जब तुम्हारा मन शुद्ध है, हृदय में सदाचार भाव है तभी तुम दुराचारियों को सुधारने में सफल होगे। अन्यथा तुम भी उनके संसर्ग से पतित हो जाओगे।

देश में घुसे हुये इन कुकर्मों को दूर करने के लिये तुम्हें कटिबद्ध हो जाना चाहिये, इन्हें बिना नष्ट किये तुम्हारे उन्नति का अंकुर पनपने नहीं पा सकेगा। तुम्हें दुराचारियों के ऊपर कड़ी दृष्टि रखना है। उपदेशों के द्वारा, प्रत्यक्ष प्रमाणों को सामने रखकर, साम, दाम, दण्ड, भेदादि के उपयोगों से किसी न किसी प्रकार इस नाशकारी कुटेवों का ध्वंस करना है।

चेतो ?

जब मैं अतीताकाश की ओर देखता हूँ, जब इस विश्वगुरु वृद्ध देश के सच्चे इतिहास को अपने हाथ में लेता हूँ, जब मैं अपने पूर्वज ऋषि-मुनियों के पुनीत चरित्रों का पाठ करता हूँ, जब मैं उनके अलौकिक ज्ञान-शक्ति को देखता हूँ, जब उन बड़े भीषणकर्म-कर्त्ता वीराग्रगण्य वीरों एवं योद्धाओं के असम्भव कृत्यों का अध्ययन करता हूँ, जब मैं उन ऐश्वर्य्यसम्पन्न धन-कुबेरों के अनन्त वैभव की व्याख्या पढ़ता हूँ, तब मेरे शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। शरीर साहस से भर जाता है। रक्तपरि-क्रमण शक्तिशाली हो उठता है, इस भाव के कुछ देर रहने पर चंचल मन गम्भीर मुद्रा धारण कर लेता है।

इसके विपरीत जब मैं वर्त्तमान काल की ओर दृष्टिपात करता हूँ। तब वह वीरोचित भाव और साहस से भरा हुआ हृदय टुकड़े २ हो जाता है। अपने इस घोर परिवर्त्तन तथा अश्रुत-पूर्व अधोगतिको याद करके नेत्रों से अविराम आँसुओं की धारा बहने लगती है। शरीर निष्प्रभ एवं निःशक्त प्रतीत होने लगता है। रक्त-संचालन की गति मन्द पड़ने लगती है। साहस, धैर्य्य एवं बलादि सभी क्षीण बोध होने लगते हैं।

लोगों का कथन है कि उन्नति के पश्चात् अवनति, दिन के

बाद रात्रि तथा सुख के उपरान्त दुःख का होना सांसारिक नियम है। जिस प्रकार जो सूर्य्य मध्यान्ह में अपने पथ के सबसे उच्च मार्ग में स्थित रह कर संसार को तपाता है, वह संध्या के समय दृष्टि से दूर भी हो जाता है। यहाँ ही तक नहीं, उसे निशा राक्षसी अपना ग्रास भी बना लेती है। हमलोगों के पूर्वज ऋषि-मुनि उत्थान की चरम सीमा पर आरुढ़ थे, आज उनकी सन्तान 'हम' अवनति के गड़हे में पतित हैं।

वह उन्नति का समय, जब पूर्वजों ने अपने बाहुबल के द्वारा असम्भव से भी असम्भव कार्य्य को क्षण मात्र में कर दिया था, जब विश्व के बड़े २ कौणयों को समरांगण में बलपूर्वक पटक कर पछाड़ा था, देवों के दुर्द्धर शत्रुओं को एक ही आघात में परास्त किया था, अत्यन्त भयानक दुर्गम से दुर्गम गहन को एक ही बाण में भस्म किया था। जब अगम से अगम जलनिधि को एक ही प्रहार में शोषित किया था, जिस काल के कृत्यों का एक-एक अंक स्वर्णाक्षरों में अंकित है, हमारी धार्मिक पुस्तकें जिस पुनीत काल की उपदेशप्रद गाथाओं से भरी हुई हैं, भगवान ने जिस काल को प्रकृति के वीरोत्पादक अंश से रचा था, तथा जिस काल में वसुन्धरा पर सत्य और धर्म का श्रोत बहता था, वही अतीत काल ब्रह्मचर्य का कृतयुग है।

कृतयुग काल में भारतीय वीरों के गुणों पर मुग्ध हो

यथा किन्नरादि सेवा करते थे, देवता और दानव सहायक रहते थे, अप्सरायें मुग्ध हो प्रसन्न किया करती थीं, त्रिदेव अभीष्ट सिद्धि का वर देते थे, संकट काल में देवेन्द्र स्वयं सहायता के लिये याचना करते थे। वह अतीत काल कैसा था?

उस समय पुरुष ही नहीं, देश की रमणियाँ भी वीर-स्वरूपा थीं। उनके शरीरस्थ-प्रवाहित रक्त में, वीरतारूपी वायु वेगशाली हो परिक्रमण कर रहा था, बाल, वृद्ध एवं प्रत्येक युवतियों में वीरता का संचार था, उस समय कुल-ललनायें तथा वीर बालायें स्वयं खड्ग धारण कर विपक्षियों से संग्राम करती थीं, रणाङ्गण में रिपुओं का रक्त बहा कर मातृभूमि-रक्षा करनेवाली होती थी, देवियाँ, वीरजाया, वीरजननी एवं वीरभगिनी के नाम से विख्यात थीं, यह ब्रह्मचर्य के कृतयुग का प्रताप था।

आज भारत क्या होगया? शोक!

भारतीयों चेतो! अब भी समय है, पूर्वजों का गौरव-रक्षा करो। पापियों! अपने अपने पापों को ज्ञानाग्नि में दग्ध करो, सदाचार के पुनीत मार्ग को पकड़ो, तभी तुम्हारा उद्धार होगा। चेतो! अरे चेतो, अब और मत नाश कराओ! जागृत हो जाओ। संसार तुम्हें देखकर हँस रहा है। उठो आगे बढ़ो! पुंसत्त्वहीन आत्माओं! मूक परतन्त्र मानवों! जीवन का सुधार और समाज का कायाकल्प करो।

ब्रह्मचर्य विवेक

तृतीय खण्ड ।

सत्पथ पर

आज उन्नति का प्रत्येक मार्ग विपाक्त हो गया है। धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों के प्रत्येक पन्थ, जिसे देखिये भयानक दिखलाई पड़ रहा है। कोई अपने लक्ष पर नहीं दिखाता, सत्रों के यथार्थ स्वरूप का परिवर्तन हो गया है। देश का देश कुपन्थ का अनुयायी हो अपने हाथों अपना सर्वनाश कर रहा है।

संसार का प्रत्येक प्राणी सदा सुगम मार्ग का इच्छुक रहता है। सुगम मार्ग का अवलम्बन करने से मनुष्य को कष्ट नहीं होता, उसे धारण करने से अभीष्ट अतिशीघ्र सिद्ध हो जाता है। इसके अतिरिक्त कठिन मार्ग पर चलने से कोई कार्य्य सिद्ध नहीं होता, मनुष्य अपने अभिप्राय से दूर रह जाता है, सिद्धियों का प्राप्त हो जाना कठिन ही नहीं, वरन् असम्भव हो जाता है। साथ ही साथ साधक को भयंकर दुःखों का सामना करना पड़ता है।

वाचकों! आज भारत में सत्पथ कहाँ? वह धर्ममार्ग कहाँ? जिस पर चल कर मोक्ष की प्राप्ति करें। पापात्माओं ने उसे प्रपञ्चपूर्ण बना दिया है, दुष्टों ने उसे दूषित कर दिया है, स्वार्थियों ने उसे व्यापार बना लिया है और कामियों ने उसे

कलुषित कर दिया है। शोक! आज हमारा सत्पन्थ हम से कोसों दूर है फिर भी हम सुधार २ चिल्ला रहे हैं, अपने उन्नति की आशा कर रहे हैं। देश के सुधार के लिये कटिबद्ध हो रहे हैं। पूर्वजों के गौरव की रक्षा के लिये लालायित हो रहे हैं। भीम और अर्जुन बनने के लिये मर रहे हैं। शोक! क्या इन्हीं गुणों को लेकर हम उद्धार करेंगे? क्या वर्त्तमान पन्थों से हमारा अभीष्ट सिद्ध होगा? क्या आधुनिक पन्थों के बल पर हमारा उद्धार होगा? कदापि नहीं। उद्धार क्या? नहीं-नहीं! संहार! सर्वनाश!

इन्हीं पन्थों ने भारत का सर्वनाश किया। फूट का विषम फल इन्हीं के द्वारा देश में बोया गया। हमारी अज्ञता और भ्रष्टता के ये ही आदि कारण हैं। इन्हीं पन्थों ने इसे भीरु और कायर बना दिया, इन्हीं के द्वारा धन-धर्म का नाश हुआ, अधर्म, अत्याचार और व्यभिचार की वृद्धि हुई। कहाँ तक कहा जाय, आँखें खोल कर देखो, सहस्रों वेद-विरुद्ध पन्थ किस प्रकार भारत की दुर्दशा करा रहे हैं। ओह! शोक! जहाँ वाममार्ग, चोलापन्थी तथा सखीदल का सम्प्रदाय बढ़ रहा है, वहाँ उद्धार की आशा क्या की जाय।

सत्पन्थ तो छूट गया, पूर्वजों के आश्रमिक पन्थ तो जाते रहे, प्रकृति का नियम तो निर्वासित हो गया, धर्म रुष्ट

हो विमुख हो गया। कुलांगारों ने अप्राकृतिक, कुपन्थ तथा अधर्माचरणों को अपना लिया, कैसे मानव-जीवन सार्थक होगा। समाज की जीर्ण नैया कैसे कलि के कराल, अशान्त उदधि से सुरक्षित पार होगी। हाय! किस प्रकार इस वृद्ध विश्वगुरु का कायाकल्प होगा।

भारतियों! अज्ञान और प्रमाद को मिटाओ। कुछ चेत करो, सत्पन्थ को पकड़ो, अपने पूर्वजों के पुनीत मार्ग का अवलम्बन करो, वर्त्तमान पन्थों से दूर हटो, इनके नाशकारी चक्र से स्वयं बचो, अपने परिवार तथा इष्ट मित्रों को बचाओ, समाज को सावधान करो तथा देश को जगाओ। धर्म-मार्ग ही तुम्हारे लिये सर्वोत्कृष्ट पन्थ है उसी के शरण में जाओ, उसी को धारण करो तभी तुम्हारा वास्तविक सुधार होगा। धर्म-मार्ग ही पूर्वजों का सत्पन्थ है। वही सच्चा सनातन मार्ग है। ऋषियों ने कहा है कि श्रुति, स्मृति, सदाचार और आत्म-प्रिय कर्म ही धर्म-मार्ग अर्थात् सत्पन्थ हैं। इन्हीं पर चल कर तुम मुक्त हो सकते हो।

धर्म की शरण में

धर्म ही दोनों लोकों के सुखों का कारण है। जैसे सूर्य्य अन्धकार का नाश करता है, उसी प्रकार धर्म पापों को नष्ट कर देता है।

—देवाचार्य्य बृहस्पति

ईश्वर की आज्ञा-पालन का नाम धर्म है। वेदोक्त न्याय से युक्त होकर पक्षपातरहित सदा सत्याचरण तथा असत्य का त्याग ही धर्म कहलाता है, ऋषियों ने प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, एनह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव इन आठ के द्वारा जो निश्चय होता है, उसे ही धर्म बताया है।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

—महर्षि मनु

जिस प्रकार शरीर में दश इन्द्रियाँ हैं, जैसे इन्द्रियों से शरीर बना है, जिस प्रकार गृह के खम्भे आधार होते हैं उसी भाँति धर्मरूपी गृह भी दश खम्भों अर्थात् दश आधारों के द्वारा बना है। आधारों के सुरक्षित रहने पर ही गृह ठीक रीति से रह सकता है, अन्यथा सुन्दर गृह नष्ट हो जायगा। इस लिये यदि सुखपूर्वक रहने की इच्छा है, नर-तन सार्थक करने का विचार है, ब्रह्मचर्य को प्राप्त करने का अभीष्ट

है तो आओ सब से पहले धर्म के दश लक्षणों को अपनाओ। धर्म के ही शरण में जाने पर ब्रह्मचर्य के स्वरूप को पा सकोगे।

धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध ये दश धर्म के अङ्ग हैं। इन्हीं सबों से धर्म का पुनीत रूप बनता है। इन्हीं लक्षणों को धारण करने पर हम धर्म के अविनाशी तत्त्व को समझ सकते हैं। ईश्वर ने इसे ही धारण करने के लिये मुझे भेजा है। मानव-जीवन का उद्देश्य यही है।

(१) धृति—

धैर्य धारण करना धर्म का प्रथम अङ्ग है। इसी के द्वारा संसार दुर्द्धर कार्य्यों को सरल बना देता है। भयानक विपत्तियों में हम इसी के द्वारा अपने को सुरक्षित रख सकते हैं।

धैर्य्य ही जीवन-रणांगण के विजय का कारण है। इसीके द्वारा इष्ट सिद्धि होती है।

विघ्न-बाधायें अनेकों देख घबड़ाना नहीं,
स्वप्न में भी काल का भय भूल कर लाना नहीं।
प्रण से न तुझको मृत्यु भी सचमुच डिगा सकती अहो!
आपत्तियाँ कर्त्तव्य-पथ से क्या भगा सकतीं कहो?
संसार की समरस्थली में धीरता धारण करो,

- चलते हुये निज इष्ट पथ पर संकटों से मत डरो।
दुख शोक जब जो आ पड़े सो धैर्य्यपूर्वक सब सहो,
होगी सफलता क्यों नहीं कर्त्तव्य-पथ पर दृढ़ रहो॥

धैर्य धारण किये इष्ट पथ पर डटे रहो। भयभीत मत हो, धैय को मत छोड़ो, जो धैर्य का स्वामी है, निसन्देह वही संसार के समस्त पदार्थों का स्वामी है।

'सांसारिक और पारमार्थिक उन्नति की जड़ ब्रह्मचर्य ही है'

ब्रह्मचर्य ही जीवन है इसी से सभी लोग इसे श्रेष्ठ मानकर इसकी प्रतिष्ठा करते हैं, इसी के द्वारा मनुष्य दीर्घायु प्राप्त कर सकता है तथा इसी के बल पर इस असार संसार में कराल काल को भी पराजय कर सकता है। इसी ब्रह्मचर्य के प्रताप से मनुष्य देवता होते हैं, यही शरीर का उत्तम तप है, यही अकाल मृत्यु को जीतता है तथा त्रैलोक्य के सर्व सुखों को देता और अपनी अपरम्पार महिमा के द्वारा मानव-जीवन सार्थक करता है। इसीका नाम अमृत है, यही पूर्ण आयु तथा कल्याण-दाता, निरोगता प्रदान करने वाला, मन को प्रफुल्लित रखने वाला और सर्वथा सुख-सौख्य देने वाला है। जो ब्रह्मचारी नहीं हैं उनकी कभी सिद्धि नहीं होती, वे सदा जन्म-मरणादि क्लेशों को भोगते रहते हैं। देखिये! महर्षि गौतम ने कहा है कि—

"आयुस्तेजो बलं वीर्यं प्रज्ञा श्रीश्च महायशः ।
पुण्यं च मतिप्रियत्वं च हन्यतेऽब्रह्मचर्य्यता ॥"

ब्रह्मचर्य के त्याग देने से अर्थात् बिना ब्रह्मचर्य के आयु, तेज, बल, वीर्य, बुद्धि, श्री, धनादि का नाश हो जाता है, इसके बिना कभी अभ्युदय नहीं हो सकता, इसी के ह्रास से समुन्नति के शिखर पर से भी मनुष्यों का पतन हो जाता है तथा स्वस्थ-प्राणी भी दुःखों का शिकारी बन पृथ्वी का भार हो जाता है। अतएव जो मनुष्य शान्ति, सुन्दरता, स्मृति, ज्ञान, आरोग्य और उत्तम संतति चाहता है, वह इस संसार में सर्वोत्तम धन ब्रह्मचर्य का पालन करे।

प्यारे बालकों! पूर्व ही समझा देना अत्यावश्यक है कि ब्रह्मचर्य क्या है? किसे कहते हैं? जब तक इसका अर्थ नहीं बतलाया जायगा तब तक पाठ तथा इसके गूढ भावों को समझने में असुविधा होगी। अतः ब्रह्मचर्य क्या है? किसे कहते हैं? इत्यादि बतलाना है :—

'ब्रह्मचर्य, यह एक ही शब्द नहीं है, परन्तु यह दो शब्दों के योग से बना है। एक 'ब्रह्म' दूसरा 'चर्य'। इस प्रकार 'ब्रह्म' और 'चर्य' मिलकर ब्रह्मचर्य हुआ। इन दोनों शब्दों के भिन्न २ स्थानों पर अनेक अर्थ होते हैं, जो जिस स्थान के उपयुक्त अर्थ होता है, वह वहीं लिया जाता है। 'ब्रह्म'

इस शब्द से ईश्वर, वेद, वीर्य और "चर्य" से चिन्तन, अध्ययन तथा रक्षण का बोध होता है। इन शब्दों के बहुत अर्थ हो सकते हैं, परन्तु हमारे वैदिक साहित्य में तीन ही प्रधान अर्थ हैं। इन्हीं तीनों अर्थों का व्यवहार विशेष रूप से होता है। 'ब्रह्म' शब्द वीर्य, वेद और ईश्वरवाचक है और "चर्य" से रक्षण, अध्ययन तथा चिन्तन का बोध होता है, इस भाँति तीन अर्थ प्रधान समझे जाते हैं—१ वीर्य-रक्षण, २ वेदाध्ययन, ३ ईश्वर-चिन्तन। ब्रह्मचर्य का पहला अर्थ वीर्य-रक्षण किया गया है, दूसरा अर्थ वेदाध्ययन और तीसरा अर्थ ईश्वर-चिन्तन किया है। ब्रह्मचर्य में वीर्य रक्षण और सर्वदा धैर्य का अवलम्बन करना ही मानवों का परम धर्म है। अधैर्य के द्वारा केवल हानि के कुछ लाभ नहीं हो सकता। दुःख और सुख में समानता रखना ही धैर्य कहलाता है, शरीर धारण करने पर दुःख एवं सुखों का अनुभव करना पड़ता है कभी तो सुख ही सुख और कभी दुःख ही दुःख चिरकाल तक भोगना पड़ता है। जब ऐसा ही नियम है तो वृथा दुःख में विशेष व्याकुल क्यों हों और सुख के समय उन्मत्त क्यों बनें। अतः धैर्य के साथ उनकी आवृत्ति और निवृत्ति क्यों न देखें।

जिन्होंने इस रहस्य को जान धर्य का आश्रय ग्रहण किया है वे ही इस असार संसार में वास्तविक सुखी हैं। ऐसे ही

जनों के गले में कीर्ति-देवी जयमाला डालती है, ऐसे ही पुरुषों की संसार पूजा करता है ऐसे ही जन समाज रमणीय माने जाते हैं।

धैर्य की परीक्षा सुख की अपेक्षा दुःख में अधिक समझी जाती है। दुःखों की भयंकरता को देख प्राणियों का विचलित होना स्वाभाविक है किन्तु ऐसे समय में जो च्युत नहीं होते, पथभ्रष्ट नहीं होते तथा संकल्प से विचलित नहीं होते अथवा इष्ट से पृथक् नहीं होते वे नरपुंगव धैर्यशाली कहे जाते हैं।

हम अधीर क्यों होते हैं इसका कारण विचारपूर्वक देखा जाय तो मन की निर्बलता के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। इस बात को प्रायः सभी जानते हैं कि अनित्य संसार में ब्रह्मा से लेकर कृमिपर्यन्त सम्पूर्णतया आज तक कोई सुखी नहीं हुआ, सभी को कुछ न कुछ दुःख अवश्य हुआ है। फिर भी मनुष्य दुःखों के आगमन से व्याकुल होता है तो यह मन की निर्बलता नहीं तो भला और क्या है।

महापुरुषों में हम से कोई विशेषता नहीं, उनमें प्रकट कोई सींग या पूछ चिह्न विशेष नहीं है, वे भी हमारे ही समान देह-धारी हैं; परन्तु उनमें के केवल विशेषता धैर्य की है। इसी गुण के कारण वे जगतबन्धु तथा आदरणीय माने जाते हैं। पाण्डव यदि दुःखों से कातर हो कौरवों के दास बन गये होते तो आज उनको संसार में कौन वीर गिनता, मोरध्वज यदि

पुत्र-शोक से दुखी हो मर गये होते तो आज दिन उनको अतिथि-सत्कार में शिरोमणि कौन गिनता ? हरिश्चन्द्र लोभ से यदि सत्य को त्याग दिये होते तो वर्तमान समय में कौन आदर करता ? श्रीराम वन के दुःखों से भयभीत हो यदि अवध में ही रह जाते तो कौन उन्हें पुरुषोत्तम कहता, राजा शिवि यदि शरीर कष्ट से भयभीत हो कपोत को बाज के गाल में दे दिये होते तो आज उनको अशरणशरण की प्रतिष्ठा कौन देता ? ऐसे २ अद्वितीय धैर्य्यवान पुरुष भी अन्त में कालग्रसित हो गये, परन्तु उनकी अक्षय धीरता यश संसार में आज भी गूँज रहा है, जिनका स्मरण ही धैर्यजनक होता है। यदि हमलोग इस पर विश्वास कर धैर्य्य धारण करें तो क्या वैसे नहीं हो सकते अवश्य हो सकते हैं, धैर्य का फल मधुर है।

(२) क्षमा—

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक दुःखों की प्राप्ति में क्रोध तथा हिंसा न करना ही क्षमा है। इससे उत्तम संसार में कुछ भी नहीं। यही परम धर्म है, इसीसे सच्ची शांति पाकर शरीर मुक्त होता है, ऋषियों का कथन है कि क्षमारूपी धन प्राप्तकर प्राणी परम पद के अधिकारी होते हैं।

नर को भूषण रूप है, रूपहु को गुण जान ।
गुण को भूषण ज्ञान है, क्षमा ज्ञान को मान ॥

वृद्ध गौतम ने क्षमा का वर्णन करते हुये लिखा है—

क्षमा हिंसा क्षमा धर्मः क्षमा चेन्द्रियनिग्रहः ।
क्षमा दया क्षमा यज्ञः क्षमा धैर्य्यमुदाहृतम् ॥
क्षमावान् प्राप्नुयात् स्वर्गं क्षमावान् प्राप्नुयाद्यशः ।
क्षमावान् प्राप्नुयान्मोक्षं क्षमावांस्तीर्थमुच्यते ॥

(३) दम—

मन को अपकर्मों से हटाकर सत्कर्मों में लगा देना ही दम का अभिप्राय है। मन चंचल है, अत्यन्त वेग से गमन करता है, कभी पाप-कभी पुण्य-कभी धर्म-कभी अधर्म, कभी राग-कभी विराग, कभी प्रेम-कभी द्वेष, तथा कभी हिंसा कभी अहिंसा का रूप धारण करता रहता है। कभी स्थिर नहीं रहता। इसे वश में करना योग्य है। मंगल तभी होगा जब मन सुस्थिर रहेगा। मन का एकत्र करना ही योग का ध्येय है। इसीके साधन से सबल इन्द्रियाँ वशीभूत होती हैं। मन रथवान् है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं, बुद्धिमान् सारथी के द्वारा घोड़े शान्त तथा सुशिक्षित रखे जा सकते हैं।

मन को उत्तम कार्यों में लगाना ही इसका अभिप्राय है।

(४) अस्तेय—

चोरी न करना, इससे आत्मा कलुषित हो जाती है, इच्छा-शक्ति का परिवर्त्तन हो जाता है। अतः कल्याण चाहने वाले

प्रेमियों को सदैव इससे बचना चाहिये। यह कायिक, वाचिक और मानसिक तीन प्रकार की होती है।

कायिक—किसी के धन तथा स्त्री आदि पदार्थ को ले लेना।

वाचिक—वचन के द्वारा चोरी करना, अर्थात् सत्य को छिपाना और असत्य भाषण करना।

मानसिक—सिद्धान्त के विरुद्ध कार्य्य करना, मन के विपरीत आचरण।

अतः बुद्धिमानों को इससे बचना चाहिये, मनुष्य इस निकृष्ट कर्म से पतित हो जाता है।

(५) शौच—

पवित्र रहना। शरीर शुद्धि दो प्रकार की है।

(१) बाह्य। (२) अन्तर।

(बाह्य) शरीर-शुद्धि, इन्द्रियाँ एवं त्वचाओं की शुद्धि वस्त्र एवं गृहादि की शुद्धि।

(अन्तर) आभ्यन्तरिक शुद्धि, ईश्वराराधन, विद्याध्ययन तथा वासना और कामादि अवगुणों के त्याग देने पर प्राप्त होती है।

द्विविध शुद्धि ही धर्म का कारण है। ब्रह्मचर्य अर्थात् धर्मेच्छुकों को द्विविध शुद्धि पर ध्यान देना चाहिये।

(६) इन्द्रिय-निग्रह—

इन्द्रियों को बुरे कर्मों से हटाना, सदैव धर्म-मार्ग में लगाना ही इन्द्रिय निग्रह का भाव है। इस विषय पर अन्यत्र विशेष प्रकाश डाला गया है। इन्द्रिय-निग्रह ही प्रधान विषय है। मंगल चाहने वाले धर्म-प्रिय सज्जनों को चाहिये कि वे अपने बलवान् इन्द्रियों को रोकें।

(७) धी

बुद्धि, सात्विक बुद्धि का उपयोग श्रेष्ठ है। जिस प्रकार बुद्धि की उन्नति हो वही कार्य करे। सदा विचारपूर्वक बुद्धि को शुभ कार्य्यों में लगावे। इसे विवेकपूर्ण होने के लिये सदैव प्रयत्नशील रहे। इसके लिये तीन बातों पर ध्यान दे। १ वेद शास्त्रों का विचार करना, २ महात्मा तथा विद्वानों का सत्संग, ३ उत्तमोत्तम गुणों का अध्ययन अर्थात् सीखना। बिना उत्तम बुद्धि के धर्म सांगोपांग पूर्ण नहीं हो सकता।

(८) विद्या

जिससे पदार्थों का सत्य रूप जाना जाय, विद्या से बढ़कर दूसरा मित्र नहीं, इसके विपरीत अविद्या से अधम और कोई शत्रु नहीं, विद्या ही के द्वारा मनुष्य इस संसार में सब प्रकार का सुख भोगता हुआ अन्त में मोक्ष पाता है। विद्या बिना भव-तम का नाश नहीं होता। सदा अविद्या,

अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश नामक पंच क्लेश घेरे रहते हैं।

(९) सत्य—

कभी असत्य व्यवहार न करना। संसार की मर्य्यादा इसी पर स्थिर है। यही मानवों को स्वर्ग भेजता है, सत्य से ही पृथ्वी स्थिर है, सूर्य प्रकाशित होता है तथा वायु बहती है।

नहि सत्यात्परं धर्मो नानृतात्पातकं परम्।
नहि सत्यात्परं ज्ञानं तस्मात्सत्यं समाचरेत् ॥

सत्य से बढ़कर कोई धर्म और असत्य से बढ़कर कोई पाप नहीं है। सत्य से बढ़कर कोई भी ज्ञान नहीं। द्विजातियों का परम धर्म यही है। सब गुणों में यही प्रधान है। यही अमियदाता—कल्याणकारी सम्पूर्ण व्रतों का अधिपति है। अतः सभी अवस्था में यह ग्रहण योग्य है।

(१०) अक्रोध—

प्राणिमात्र पर क्रोध न करना।

क्रोध सम्पूर्ण पापों की जड़ है। क्रोध के वशीभूत होने पर शीघ्र नाश हो जाता है। इसे विजय प्राप्त करना ही ही सर्वोत्तम तप है। वही सच्चा, विद्वान्, महात्मा तथा उदाराशय है, जिसने क्रोधरूपी शत्रु का संहार कर दिया।

भारतीयों ! यही उपरोक्त वर्णित दश लक्षणों के मिलने पर धर्म का स्वरूप बनता है। जिस मनुष्य में ये दश लक्षण पूर्ण रूप से पाये जायँ, वहीं धर्म के सत्य स्वरूप को समझो। अन्यथा वर्तमान धर्म की दुहाई मत दो। धर्म के नाम पर देश को भ्रष्ट करने वाले ढोंगियों ! देखो, धर्म क्या है ? इन दश लक्षणों को अपनाओ, इसके अतिरिक्त तुम्हें और क्या चाहिये। केवल धर्म लक्षणो से ही तुम्हारा उद्धार हो जायगा। केवल उद्धार ही, नहीं तुम इसी से देवत्व प्राप्त कर सकते हो। तुम्हारा अखण्ड ब्रह्मचर्य पूर्ण हो सकता है। देखो ! तुम्हारे पूर्वज इन्हीं धर्मलक्षणों के द्वारा संसार में क्या नहीं किये। धर्मियों की सन्तान ! उठो, धर्म की शरण में पहुँचो ! तुम्हारा निस्तार होगा।

प्रकृति के चरणों में

हमारी प्रकृति जिसके द्वारा यह पंचभौतिक तन स्थित है अत्यन्त न्याय प्रिय है, उसका स्वभाव न तो कठोर ही है और न तो दयालु ही, वह सदैव कर्मों के अनुसार न्यायोचित दण्ड देती है। जो जैसा कर्म करेगा, उसका वैसे ही न्याय करती है। वह कभी क्षमा करना नहीं जानती। सद्विचारी एवं सत्कर्म करने वाले पुरुषों के लिये वह प्यारी माता के समान पालन करने

वाली एक मात्र रक्षिका है। उन्हें इस दुखद संसार के भयानक से भयानक कष्टों से बचा लेती है। जीवन रणांगण में भयंकर विपत्तियों के आने के पूर्व ही उन्हें सचेत कर देती है, जिसके द्वारा सत्पुरुष शीघ्र अपना सुधार कर भावी विपत्ति से बच जाता है।

प्रकृति वास्तव में न्यायमूर्ति, सत्यस्वरूप, परम जननी-रूप व विश्वपालिका है। अनुकूल रहने पर यदि जन्मदातृ माता कभी कुपित हो जाय तो हो जाय, परन्तु प्रकृति जननि अनुकूल रहने पर कदापि रुष्ट नहीं हो सकती, वह भक्तों की रक्षिका सौम्य एवं शान्तिमयी तथा करुणावती है और साथ ही भ्रष्ट एवं दुराचारप्रसित दुर्दण्डों को नष्ट करने वाली निष्पक्ष न्यायकर्तृ देवी है।

लोग बहुधा कहा करते हैं कि दुराचारियों व्यभिचारियों तथा पापियों के लिये प्रकृति काल के समान है। दुष्टों एवं दुर्वृत्तों को वह साक्षात् कृतान्तसमान प्रतीत होती है—परन्तु नहीं। प्रकृति काल के समान नहीं, वह तो शासनकर्त्री है। अपराधी शासक के सन्मुख नत मस्तक हो जाता है। उसके हृदय में एक प्रकार का भय उत्पन्न हो जाता है। भयभीत होने से अपराधी तथा अभियोगी डरा करते हैं। क्योंकि न्याय ही ईश्वर की प्रत्यक्ष प्रतिभा है।

प्रकृति समदर्शिनी है। वह सम्पूर्ण संसार अर्थात् समस्त चराचर भूतों को एक दृष्टि से देखती है। सभी उसी के पुत्र हैं। संसार उसी के द्वारा बना है। समदृष्टि रखना उसका काम है। सत्यासत्य, धर्माधर्म, न्यायान्याय का विवेचन करना तथा तदनुसार फल देना उसका धर्म है।

यदि प्रकृति न्याय न करे, यथोचित वस्तुओं का उपादेय तथा वास्तविक स्वरूप को प्रगट न करे तो संसार नष्ट-भ्रष्ट हो जाय। जगत के जीव अधर्म, अन्याय तथा पापाचरण से न डरें। भूतल के सभी देहधारी मनमाना करने लग जाँय। चोरी, व्यभिचार, हत्या तथा अत्याचार ही तुम्हारे समक्ष दिखाई पड़ने लगे। तब क्या? कुछ ही काल पश्चात् सारथिहीन अश्वों के समान नाश के गह्वर गर्भ में विलीन हो जाय।

तुझे संसार का सत्य मार्ग दिखलाने वाली, पापादि अधर्माचरणों से हटाने वाली प्रकृति देवी ही है। जब तुम कोई अपकर्म करते हो, प्रकृति तत्काल दण्ड देती है। जिससे तुम्हारी अज्ञानरूपी वासना से मुँदी आँखें खुल जाती हैं और बोध हो जाता है कि हमने अमुक अपकर्म किया है—जिसका यह दण्ड मुझे प्रकृति द्वारा मिला है, अब कदापि ऐसा कर्म न करूँगा। प्रकृति सर्वदा सुधारने के लिये दण्ड देती है। बिना ठोकरों के खाये कोई शीघ्र नहीं सुधर सकता। सभी वस्तुओं का सुधार हृदय

से होता है। जब तक हृदय में ज्ञान-ज्योति का प्रकाश नहीं होता, तब तक वास्तविक सुधार की आशा करना नितान्त मूर्खता ही नहीं, वरन् पूर्ण असम्भव है। यह देखते हुये प्रकृति की शरण में जाओ वहीं निस्तार होगा।

प्रकृति के विपरीत आचरण करने वाले दुराचारियों! उठो! अब भी चेत करो, अरे उसकी शरण जाओ। उसका अनादर कर सर्वस्व खोने वाले हतभागियों! आगे बढ़ो। उस देवी का आदर करो, उसकी पूजा करो, उसके चरणों में गिरो। उसीके शरण में पहुँचने पर तुम्हें वास्तविक शान्ति मिलेगी और तभी तुम अपनी खोयी हुई शक्तियों को प्राप्त कर सकोगे।

इन्द्रिय-दमन

चारो आश्रमों के बीच इन्द्रिय-दमन ही उत्तम धर्म है। प्राणियों! ज्ञान के द्वारा विषय-वासना में विचरती हुई इन्द्रियों को अपने अधीन कर सुख की प्राप्ति करो।

महर्षि अष्टावक्र—

प्रथम खंड में इन्द्रियों का वर्णन किया गया है। उन्हीं दश इन्द्रियों के द्वारा मनुष्य शरीरधारी कहा जाता है। संसार के प्रत्येक कार्य्य तथा उत्कृष्ट विचारों के संचालन इसी के द्वारा होते हैं। प्रत्येक अवस्था में शरीरधारी होने पर जीवात्मा को

इन्हीका आश्रय लेना पड़ता है। अतः इन्द्रियों का सन्मार्गारूढ़ होना अनिवार्य्य है।

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम्॥

जिस प्रकार विद्वान् सारथी रथ के घोड़ों को नियम से रखता हैं वैसे ही सांसारिक प्राणियों को विषयों में विचरती हुई, मन और आत्मा को निंद्य कर्मों में आकर्षित करने वाली इन्द्रियों का निग्रह करना चाहिये। क्योंकि शरीररूपी रथ का रथी जीवात्मा इन्द्रियों के द्वारा बड़े २ दोषों का भागी बनता है। बिना इन्द्रियों के वशीभूत किये कभी भी सिद्धि नहीं पाता। भगवान कृष्ण का वचन है कि—विषके द्वारा प्राणी एक वारही मर जाता है परन्तु यह इन्द्रिय–विषयरूपी विष प्राणियों को बार २ मारता है।

ब्रह्मचर्य के लिये सबसे प्रबल साधन इन्द्रियों का संयम है। शरीर के सभी इन्द्रियों के भिन्न २ विषय और काम हैं। प्रत्येक इन्द्रिय अपने प्रकृति स्वभाव के अनुसार नित्य सांसारिक वस्तुओं को ग्रहण करती रहती है। संसार में विषय–सौंदर्य्य और राग-मोहों की कमी नहीं, चंचल, लोलुप इन्द्रियाँ उनकी ओर आकर्षित हो जाती हैं। यदि मनुष्य उस समय ज्ञान से काम न ले तो निश्चय ही इन्द्रियाँ उसे कुपथगामी बना छोड़ेंगी।

अवकाश के समय इन्द्रियों को मत वहकने दो। यही उनके विनाश का समय है, उन्हें पाप मार्ग की ओर न जाने दो, लोलुप इन्द्रियों को इस मोही संसार के आकर्षक विषयों के झाँकने का अवसर मत दो। तुम अपने उन इन्द्रियों को जिनके द्वारा तुम्हारे अनिष्ट की आशंका है, सदैव अच्छे कामों में लगाये रहो, उन्हें अपमार्ग की ओर वढ़ने का अवकाश ही न दो, उन्हें सदैव धर्म-मार्ग का अनुकरणी वनाओ।

इन्द्रियों का दुरुपयोग मत करो, इनका अनुपयुक्त प्रयोग होने पर भी इन्हें उद्दण्ड होने का अवसर मिलता है। हम पूर्व ही लिख चुके हैं—इन्द्रिय-विजय के सम्मुख विश्व-विजय भी तुच्छ विषय है। अतः तुम्हें सावधानी से काम लेना चाहिये। धीरे २ एक एक करके तुम्हें सम्पूर्ण इन्द्रियों को सुधारना चाहिये।

मनोवल।

प्रत्येक साधन की सिद्धि मनोवल पर अवलम्वित है। मन के वलवान तथा सुदृढ़ होने पर हम उन दुर्द्धर क्रियायों को कर सकते हैं जिन्हें लोग असम्भव कह कर छोड़ वैठते हैं, इच्छा शक्ति अर्थात् will power ही संसार में सर्वोत्कृष्ट वस्तु

है। सांसारिक प्रत्येक कार्य्य इसी के द्वारा सुगमता पूर्वक सम्पन्न किया जा सकता है।

'इच्छा शक्ति बलीयसी'

ईच्छा शक्ति ही प्रधान है। यदि हृदय में बल नहीं, दृढ़ संकल्प नहीं, विराट उद्गार नहीं, तथा निश्चल धारणा नहीं— ऐसी स्थिति में कर्तव्य क्षेत्र कैसे संचालित होगा? दुर्गम मार्ग में कैसे विजय पावेंगे? सर्व प्रकार के विजय का रहस्य मन के बलिष्ठ धारणा पर निर्भर है। मनोबल का अधिकारी ही विजय का पात्र है, मनोबल से शून्य हृदय वास्तविक में दीन तथा भिखारी है।

मन के शांत और सुस्थिर होने पर मनोबल की उत्पत्ति होती है। जितना अधिक शरीर में मनावरोध होगा, उतना ही विशेष मनोबल की वृद्धि होगी। मन जितना ही पवित्र और गंभीर होगा, निश्चय है कि उसकी शक्ति भी उतनी ही अधिक सदुपयोगिनी सिद्ध होगी। इसके विपरीत मन के अशान्त और उद्दण्ड होने पर मनोबल का नाश होगा ही। मानसिक शक्तियों का प्रवाह पशुबल के समान हो जायगा। उसके उदय होने पर प्राणी अभीष्ट से गिर जाता है।

भारतीयों! ब्रह्मचर्य की प्राप्ति के लिये, मनोबल उपार्जन करो, मन को बुरे विचारों से रोको, योगियों का प्राण प्रिय योग

'धारणा' को अपनाओ, मन को किसी देश में बाँधो 'देश बंध-श्चित तस्य नाम धारणा, चितवृत्ति को किसी देश में बाँधने का नाम धारणा है। मन को बुरे कर्मों में मत जाने दो, सदैव धर्माचरण में लीन रक्खो। संयम की आवश्यकता है। यद्यपि विषय क्लिष्ट और गंभीर है। तथापि अभ्यास के द्वारा तुम उसे सिद्ध कर सकते हो। क्या संसार में कुछ असंभव है? आओ! मन की साधना करो, संसार मन का ही खेल है, मन के ही साधने से सब सधेगा। जब तक मन तुम्हारा अनुकूल न होगा, तुम कुछ नहीं कर सकते।

सदैव मन को पवित्र रक्खो, इसे निंद्य कर्मों मे मत जाने दो। अवकाश के समय इसे धर्म-कार्य्यों में लगाओ। दृढ़ संकल्प करके इसे आकर्षकान्वित बनाने की चेष्टा करो, ज्ञान के द्वारा कार्य अकार्य के रहस्य को समझकर आवश्यकतानुसार साधना में लीन रहो। अपने अनिवार्य कार्य के अतिरिक्त, शरीर-पोषण काल के पश्चात् एक क्षण भी मन को स्वतंत्र न छोड़ो। यदि तुम्हें अपने उद्धार की इच्छा है, तो तुम पहले मन में तन्मय हो जाओ। पश्चात् देखोगे कि यही मन तुम्हें ब्रह्ममय बना रहा है।

मन को अवरोध करने की उसे ठहराने की कथा रूप में एक सरल युक्ति कहता हूँ। आशा है सुधार चाहनेवाले प्रेमी इसका अनुकरण करेंगे।

एक सेठ था, एक बार वह किसी मेले में घूमने के लिये निकला, दैवात् एक जादूगर की दूकान पर गया, वह एक डिब्बे में बन्द किये हुये एक भूत को बेच रहा। सेठ ने पूछा, यह भूत क्या काम करेगा और इसका क्या दाम है ? जादूगर ने कहा—यह भूत दूनियाँ के सभी कामों को क्षण मात्र में कर देगा, करोड़ों नौकरों से अधिक काम करेगा इसका मूल्य एक लाख मुद्रा है।

सेठ ने स्वीकार कर लिया, उसे लेकर जब चलने लगा तब जादूगर ने कहा—सेठजी ! एक बात है, जब आप इसे काम नहीं देंगे तब यह भूत आप को खा जायगा। सेठ ने उत्तर दिया—चिन्ता नहीं, मेरे पास लाखों भृत्य हैं। सबों को हटाकर मैं इसी से काम लूँगा।

लौटने पर भूत को खाट पर रखकर सेठजी सो गये प्रातःकाल उठते ही उन्होंने डिब्बे के ढक्कन को हटाया। तत्काल एक भयङ्कर रूपधारी प्रेत प्रकट हुआ और बड़े जोर से गर्ज कर बोला—काम ! सेठजी ने कहा—कलकत्ते की कोठी का हाल चाल ले आओ। क्षत्रमात्र में प्रेत अदृश्य हो गया और जब तक सेठ जी नौकर को हुक्का लाने के लिये पुकारते ही रहे कि एकाएक भूत पहुँच गया। वहाँ का सब हाल क्षण मात्र में सुना गया और बोला काम ! सेठजी बोले

वम्बई का संवाद सुनाओ। भूत तत्काल अदृश्य हुआ और सेठजी जब तक हुक्का ही पीते रहे कि पहुँच गया, वहाँ का हाल समझा कर गर्जते हुये कहा काम। सेठ जी ने कहा कानपुर जाओ और रोकड़ का हिसाब लेआओ।

देखते २ भूत लुप्त हो गया। इधर सेठजी ने सोचा, यह तो बड़ा भारी भूत है, अभी क्षणमात्र में आ जायगा। चलो झटपट शौच से निवृत्त हो जाँय। लोटा उठाकर ज्योंही घर से बाहर जा रहे थे कि पहुँचा और सब समाचार सुनाकर बोला काम। उन्होंने एक बार ही उसे ५, ७ काम सौंप दिया। और आप शीघ्रता पूर्वक गाँव के बाहर पहुँच, इतने में भूत प्रगट हुआ। पूर्ववत् सभी बातें समझा कर काम माँगा, सेठजी का लाखों रुपया लोगों के यहाँ बाकी था—उन्होंने तत्काल उन सबों का नाम बताया और कहा शीघ्र रुपये लेकर आओ। क्षणमात्र में भूत पूर्ववत अदृश्य हो गया और सेठजी जब तक एक झाड़ी के निकट पहुँच कर शौचार्थ लोटा रख कर बैठने ही वाले थे कि भूत लाखों रुपये की थैली पटकते हुये प्रकट हो गया औरबोला काम! रुपयों की झनझनाहट और भूत के इस मायावी भयंकर कृत्य से सेठजी भयभीत हो गये, भूत बोला काम! नही तो तुझे खायँगे।

सेठ जी घबड़ाकर भाग खड़े हुए, भूत कर्कशस्वर में खाओ! खाओ! चिल्लाता हुआ उनके पीछे पड़ा। सेठ निकट ही एक

महात्मा के शरण में पहुँच और रक्षा के लिये गिड़गिडाने लगे। महात्मा ने इन्हें आश्वासन दे भूत को कहा ठहरो! इसे क्यों कष्ट देते हो? भूत ने कहा हमसे और इससे प्रतिज्ञा है कि काम न देने पर इसे खा जायँगे। यदि तुम इसे बचाना चाहते हो तो इसका भार तुम लो। महात्मा ने यह दायित्व स्वीकार कर लिया। भूत ने सेठ को छोड़ दिया।

अब वह महात्मा के पीछे पड़ा, बोला काम! महात्मा ने कहा, तुम नर्वदा के किनारे जाकर संगमरमर का एक चट्टान १०० फीट लम्बा और २५ फीट चौड़ा ले आओ। भूत गया और बात की बात में उठा लाया। पश्चात् काम माँगने पर महात्मा ने कहा इसे खूब घसो जब तक यह शीशे के समान न हो जाय। भूत घण्टों घसता रहा, बार बार महात्मा के पास जाता परन्तु वे उसे अनुपयुक्त बता देते थे, इसी भाँति धीरे २ दोपहर हो गया।

पश्चात् भूत के थक जाने पर महात्मा ने कहा इस पत्थर को २५ फीट गाड़ दो, भूत ने वैसा ही किया और काम माँगा। महात्मा ने डाटते हुये कहा इसी पर चढ़ा उतरा कर। भूत ने इसके बाद महात्मा से कहा इसके बाद! महात्मा ने कहा—तू यही काम किया कर—जब सेठजी का कोई काम हो तो कर दिया कर अन्यथा इसी पर चढ़ा उतरा कर महात्मा का यह कार्य्य देख सेठ अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

वाचको ! आपने इस भूत और सेठ की कथा सुनी। हम पूर्व ही लिख आये हैं कि क्या आप इससे कुछ उपदेश ग्रहण कर सकते हैं ? यह केवल कथा ही नहीं है, इसके भीतर सारभूत पदार्थ छिपा है। सुनिये--

आपका शरीर ही वह सेठ है और यह मनरूपी भूत ही उसे हैरान कर रहा है। जब विवेकरूपी महात्मा से संसर्ग हो जाता है, तभी आप मनरूपी भूत के भयंकर जाल से छूट सकते ह।

इसी उपदेश को मानकर संकल्प करो, दृढ़ प्रतिज्ञा करो, मनोबल की वृद्धि करो। सायं प्रातः एकान्त स्थान में बैठकर ध्यान करो। सदैव ठीक उसी भाँति एक स्तम्भ अपने त्रिकुटी में स्थापित करो और अभ्यास के द्वारा मन को उसी पर चढाओ और उतारो। अभ्यास मुख्य वस्तु है, यदि इसी साधन को करते रहे तो कुछ दिनों में देखोगे कि अवकाश के समय में भी मन उसी स्तम्भ पर विराजमान है। मन के स्थिर होने से ही मनोबल की वृद्धि होगी। अतः त्रिकाल इस क्रिया को करो। प्रत्येक सिद्धि के लिये स्थिर मन चाहिये। पहले इसी धारणा से मन को स्थिर करो।

ब्रह्मचर्य्यादि सर्वोत्तमसिद्धियों के लिये दृढ़ प्रतिज्ञा की आवश्यकता है। दृढ़प्रतिज्ञा के बिना कार्य्य में मन का अनुकूल

रहना असम्भव है अतः दृढ़ संकल्प-शक्ति के द्वारा मनोबल की वृद्धि करो। यही चतुर्वर्ग का साधक है। संकल्प ही इच्छा-शक्ति का मूल है। ब्रह्मचर्यप्रेमियों! स्थिर मन स्थिर बुद्धि प्राप्त कर इच्छा-शक्ति को बढ़ाओ, फिर इसके द्वारा क्षणमात्र में तुम्हे आशातीत लाभ होगा। तुम भी ऋषियों के समान वाक्सिद्ध हो सकोगे।

हीन और मलिन विचारों को अपने मस्तिष्क में स्थान मत दो। सदा तेजस्वी भावों का चिन्तन करो जो तुम्हें सदैव उत्साहित कर सके। अपने वायुमण्डल को उत्साहपूर्ण बनाओ। अपने मित्रों में भी वही भाव भरो अथवा उसी प्रकार के प्राणियों से संसर्ग रक्खो। निसन्देह तुम मनोबल प्राप्त कर उस स्थान पर पहुँच जाओगे।

सततोद्योग

उद्योग ही सिद्धि का रहस्य है, संसार के सहस्रों उत्कृष्ट आविष्कार इसी के द्वारा, जन्म धारण कर पूर्ण होने में समर्थ हुये हैं। इसीसे आज मानव-जाति सर्वश्रेष्ठ, पूज्य एवं सर्वगुणसम्पन्न समझी जाती है। वास्तव में संसार उद्योग से ही चल रहा है।

कार्य-सिद्धि के लिये उद्योग करो। कठिनाइयों को देखकर हताश मत हो। उसे असम्भव समझकर छोड़ मत बैठो। कभी भी पुरुषार्थ से मुँह मत मोड़ो। निश्चेष्ट होकर बैठ रहना महा दुष्कर्म है। ईश्वर तुम्हारे साथ है, उद्योगरूपी अमूल्य धन तुम्हारे हृदय में छिपा है, तुम क्यों नहीं उसका सदुपयोग करते उठो प्रयत्न करो। कर्मस्थलि को देख मत डरो, जहाँ तक हो सके आगे बढ़ते जाओ।

आज कल देखने में आता है कि अधिकांश मनुष्य जिन कार्य्यों को आरम्भ करते हैं, उसे सर्वांगपूर्ण बनाने के लिये उद्योग का आश्रय नहीं लेते, हाथ पर हाथ दिये बैठे हैं और उल्टे भाग्य एवं भगवान् को दोषी बनाते हैं। संसार में वे ही मूढ़ हैं—उन्हीं को विपत्तियां घेरती हैं और निश्चय वे ही सम्पूर्ण दुःखों के अधिकारी हैं।

संसार का राज्य उद्योगियों के लिये है, विश्व की सम्पूर्ण सुख-भोग की सामग्रियाँ उन्हीं के लिये बनी हैं। उद्योगी ही सबों पर शासन करता है, वही देश, समाज और जाति की यथावत् रक्षा करता तथा सर्वत्र पूजित होता है। जिसने इसे धारण किया—समझ लो वह मुक्त हो गया। संसार के सारे गुण इसी के पवित्र चरणों में लोटते हैं। उद्योगी क्या नहीं कर सकता!

पर्वतों को काटकर सड़कें बना देता है वह,
जंगलों में हाय! महामंगल मचा देता है वह।

अगम जलनिधि गर्भ में बेड़ा चला देता है वह,
सैकड़ों मरुभूमि में नदियाँ बहा देता है वह ॥

ब्रह्मचारियों! वीर्य-रक्षा के लिये उद्योग करो, कार्य में लीन रहने पर तुम्हें वास्तविक सिद्धि मिलेगी। धैर्य से काम लो, सहस्रों वर्ष की खोई हुई सम्पत्ति को तुम एकाएक नहीं प्राप्त कर सकते, इसके लिये कुछ समय की आवश्यकता है, प्रत्येक कार्य में शीघ्रता करना भारी पाप है।

दृढ़ प्रतिज्ञापूर्वक सङ्कल्पयुक्त उद्योगरत रहो। निश्चल धारणा हो जाने पर मन तुम्हारा उसी के अनुकूल हो जायगा। फिर देखोगे कि सिद्धियाँ कैसे चरणों के निकट लोटती हैं।

संकल्प जिसका सिद्ध है फिर कार्य्य उसका क्यों रुके।
जिसको मिले चिंतामणि सो निर्धनी क्यों हो सके ?
जो हो शरण उद्योग के तो क्यों न पूरण काम हो।
जब रूप होवे काम का तब आपही धन धाम हो ॥

ओ हतोत्साही एवं निरुद्योगी आत्मायें! उठो, पुरुषार्थ करो। भाग्य को कोसने वाली आलसी जाति! उद्योग को अपनाओ, अब समय आ गया, बाँधो कमर और तैयार होओ, तुम्हें इसी उद्योग के बल पर उन्नति के दौड़ में विजय प्राप्त करना है, तुम्हारे पास न धन है न बल है न विद्या है और न ज्ञान

विज्ञान की ही बुद्धि है—केवल एक उद्योग हैं उसे भी अपने आलस्य एवं प्रमादवश छोड़ रहे हैं। इस से पृथक् होने पर तुम कहाँ जा गिरोगे ? ज्ञात है ! चेतो ! अरे चेतो।

संसार उन्नति के क्षेत्र में आगे बढ़ रहा है, उन देशों को देखो जिन्हें तुमने दौड़ने का ज्ञान दिया था। अद्भुत विज्ञान का महत्व सिखलाया था, उन देशों को देखो जिन्हें तुम्हीं ने सभ्य नहीं, नहीं मनुष्य बनाया था। आज तुमसे कितना आगे बढ़े दौड़े जा रहे हैं ? तू हीं सब से पिछड़ा है। उठ ! अभी तुम में नरदेव-सम्भव आत्मज्ञानियों का रक्त विद्यमान है। तु योग-शक्ति के द्वारा आकाश मार्ग से भी गमन कर सकता है। संसार क्या ? इस उन्नति की दौड़ में त्रैलोक्य तुम्हारा सामना नहीं कर सकता।

१
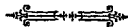
शरीर ज्ञान

और

ब्रह्मचर्य-साधन

तत्वज्ञान ।

यह पूर्व ही बता चुके है कि मानव-शरीर पञ्च तत्वों के द्वारा बना है, यथार्थ परिमाणरूप भूतों के देह में रहने पर भी शरीर आरोग्य रह सकता है—शरीरस्थ तत्वों के शुद्ध रहने पर ही प्रत्येक प्राणी ब्रह्मचर्य का यथावत् पालन कर सकता है— अन्यथा नहीं ।

संयम करो, तप करो, सहस्रों ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करो, तत्व शुद्धि बिना सभी निरर्थक होगा । तत्त्व ही शरीर है यही जीवन है, इसी के विपर्यय होने पर शरीर का नाश होता है इसी के जानने पर तुम शरीरज्ञ हो सकते हैं । इसी को सिद्ध करने पर तुम अपने को 'अयमात्मा ब्रह्म' के अध्यात्मिक क्षेत्र में आगे बढ़ते हो । अतएव तत्त्व-शुद्धि पर ध्यान देना आवश्यक है ।

पञ्च भूत का शरीर है, इसी के पोषण के लिये संसार आहार करता है । पोषक पदार्थों में भी वही है, समस्त खाद्य द्रव्य उसी के द्वारा पचता तथा रस धातु रूप में परिणत हो शक्ति एवं तेज की वृद्धि करता है । अहर्निश, पाँचोतत्व अविराम शरीर में कार्य्य करते रहते हैं—एक क्षण भी नहीं रुकते । सभी अपने २ कार्य्य में लीन रहते हैं ।

भूतों के गुणों को पूर्व ही बता आये हैं। उनके कार्य्य स्थान तथा शक्ति का परिचय पाठकों को दे चुके हैं, अब यहाँ बताना आवश्यक है कि कब कौन तत्त्व हमारे शरीर में काम करता है, तथा बिगड़े हुये तत्त्वों की कैसे शुद्धि की जा सकती है? क्योंकि तत्त्व-शुद्धि बिना शरीर का पूर्ण शुद्ध रहना असंभव है। यही सब से श्रेष्ठ शरीर ज्ञान है, इससे और उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य्य का साधन नहीं हो सकता। क्योंकि जिसने तत्त्वों को जान लिया उसके लिये संसार में कुछ शेष नहीं है। ऋषियों ने इसी शुद्धि अर्थात् तत्वज्ञान के द्वारा समस्त ब्रह्मचर्य्यादि सिद्धियों को प्राप्त किया था।

ऋषियों ने तत्त्व-शुद्धि के लिये षटकर्म का विधान किया है, परन्तु वे कर्म अत्यन्त क्लिष्ट हैं—उन्हें सर्वसाधारण नहीं कर सकते। वर्तमान काल के आचरणहीन वीर्य हीनों से यह उत्कृष्ट साधन नहीं हो सकता। आधुनिक संसार के आलस्यप्रिय, ज्ञानहीनों से यह तप नहीं सध सकता तथा अर्वाचीन भारत के काम व्यक्तियों से यह अमृत-रस नहीं पीया जा सकता। इसके लिये सहिष्णु-प्रिय नर-देवों की आवश्यकता है।

एकाएक तुम कष्ट नहीं सह सकते। योग के कठोर साधनों को नहीं कर सकते। अतः तत्वों की शुद्धि एवं अपनी मुक्ति के लिये जिस पर चल कर तुम सुधर सकते हो—

सरल मार्ग बताता हूँ, इससे श्रेष्ठ तुम्हारा दूसरा सहायक इस पृथ्वी पर नहीं मिल सकता, केवल ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये ही नहीं, बल्कि अष्ट सिद्धियों की प्राप्ति के लिये भी। यह तुम्हें सर्वसम्पन्न बना देगा। तुम असम्भव न समझो। यह वही साधन है जो असम्भव को भी सम्भव कर देता है। तुम्हारे पूर्वजों ने इसीके बल से तीनों लोकों पर विजय प्राप्त किया था। वह साधन क्या है ? तत्त्वों का ज्ञान !

दिन रात पांचो भूत तुम्हारे शरीर में काम करते रहते हैं, कभी आकाश, कभी वायु और कभी अग्नि, कभी जल और कभी पृथ्वी। सब से पहले तुम्हें यह जान लेना चाहिये कि कौन तत्त्व कब हमारे शरीर में काम करता है ? इतना ज्ञान होने पर तुम उसी तत्त्व के अनुसार शारीरिकादि कार्य्यों को करो जो उसके उपयुक्त एवं प्राकृतिक हो। इस भाँति कुछ काल तक अभ्यास करने पर तुम्हारे शरीरस्थ तत्त्व स्वयं ही अनुकूल हो जायँगे। भूतों के परिमित तथा अनुकूल रहने पर तुम सदैव शान्त, दान्त एवं सुखी रहोगे। तत्त्वों के अपरिमित तथा प्रतिकूल होने पर ही प्राणी दुःखों का भागी बनता है।

तत्त्वों के ज्ञान के साधन तुम्हारे पूर्व परिचित तीनों स्वर हैं, उन्हीं के द्वारा तुम्हें इनका यथार्थ रहस्य विदित होगा। जब तुम्हारे स्वासोच्छ्वास की गति नासिका के बाहर

स्पष्ट रूप से न निकलती हो उसका वेग नासिका के अग्र भाग तक पहुँच कर समाप्त हो जाता हो तो तुम्हें समझना चाहिये कि इस समय मेरे शरीर में आकाश तत्त्व कार्य्य कर रहा है, इसका प्रादुर्भाव प्रायः अधिकतर उषःकाल तथा ब्राह्म मुहूर्त्त में हुआ करता है।

आकाश तत्त्व का मानसिक शक्ति से विशेष सम्बन्ध है। शब्द लेना और देना इसीका स्वाभाविक गुण है। इसके उदय होने पर मनुष्य को लेटे नहीं रहना चाहिये, तत्काल अपान वायु को शुद्ध करना चाहिये। अपान वायु के शुद्ध होने से आकाश तत्व शुद्ध रूप से शरीर में काम करता है, जिनका अपान वायु दूषित है, जिन्हें वद्धकोष्टादि व्याधियों ने क्रीतदास बना लिया है निसन्देह उन्हें शिरोरोग तथा मानसिक विचार पीड़ित किया करता है।

परिष्कृत शौच होने से अपान वायु की शुद्धि होती है। अतः ब्राह्म मुहूर्त्त में शौच जाने वाले व्यक्तियों के शरीर में आकाश तत्व नियमित रूप से कार्य्य करता है। यदि तुम्हारे आकाश तत्व में किसी प्रकार की त्रुटि हो, नियम से काम न करता हो, तुम ब्राह्म मुहूर्त्त में उठकर शौचादि क्रियाओं से निवृत्त होकर वाम स्वर चलाया करो कुछ काल में आप ही वह प्रकृति के अनुसार कार्य्य करने लगेगा।

इसके उपरान्त तुम्हारा श्वास ८ अङ्गुल तक बाहर फेकने लगेगा। इस दशा में तुम्हें स्मरण रखना चाहिये कि शरीर में वायु तत्व काम करता है, यही तुम्हारा प्राण है। यह जब चले तुम्हारा नियम होना चाहिये कि तुम श्वास कम लिया करो और बायें स्वर को चलाया करो। वायु तत्व में बायां स्वर शरीर का पोषण कर्त्ता है, जो कुछ दोष अथवा त्रुटि होती है उसे दूर कर देता है। अखण्ड वीर्य-रक्षा के प्रेमियों को यह न भूलना चाहिये।

जिस समय तुम्हारे नासिका से उष्ण श्वास चलता हो, जिसकी दौड़ ४ अङ्गुल पर जाकर समाप्त हो जाती हो, तो तुम्हे समझ लेना चाहिये कि इस समय मेरे शरीर में अग्नि तत्व काम कर रहा है। उसके आगमन होने पर आवश्यकतानुसार अपना दाहिना स्वर चलाओ। अग्नि तत्व में दाहिना स्वर चलने से तुम्हारे शरीरस्थ दोष भस्म हो जायँगे। अग्नि अत्यन्त प्रदीप्त हो जायगी, जिससे तुम्हारे शरीर का भलीभाँति पोषण होगा।

ऐसे समय में जब तुम्हारे नासिका से श्वास १६ अङ्गुल तक दौड़े, उस समय तुम्हें जान लेना चाहिये कि जल तत्व काम कर रहा है। ऐसी स्थिति में तुम वीर्य-रक्षा के लिये इडा का प्रयोग करो, इससे तुम्हें आशातीत लाभ होगा। जल का

ग्रहण तथा परित्याग भी अवश्यकतानुसार तुम इस तत्व में कर सकते हो। जितना अधिक बायां स्वर चलाओगे उतना ही यह तत्व शुद्ध और पवित्र बन कर तुम्हारे शरीर की रक्षा करेगा। उस समय जब तुम्हारे नासिका का श्वास १२ अंगुल तक दौड़ता हो तुम समझ लो कि अभी शरीर में पृथ्वी तत्व का कार्य्य चल रहा है इसका कार्यक्रम प्रारम्भ होते ही पिंगला का प्रयोग करो। यह तुम्हें सर्वसम्पन्न बना देगा कोई परिश्रम नहीं, किसी प्रकार का कष्ट नहीं, केवल अभ्यास की आवश्यकता है। यदि इतना कर सको तो तुम्हें अन्यत्र कहीं जाने की आवश्यकता न पड़ेगी।

ब्रह्मचर्य के इच्छुकों! यदि सुधरना चाहते हो तो ये पाँच बातें स्मरण रक्खो निश्चय तुम्हारा कल्याण होगा। विषाक्त वायु-मंडल में बसे हुये जीवों! आधुनिक संसार तुम्हें नहीं सुधार सकता। कविराजों के रसभस्म तुम में ब्रह्मचर्य का बल नहीं भर सकते, ज्योतिषियों की अर्चना तुम्हें नहीं सुधार सकती, यंत्र मन्त्रों तथा बहुविधि तन्त्रों से तुम्हारी रक्षा नहीं हो सकती, असंभव है। अपने तत्वों को अपनाओ, तभी तुम सुधर सकते हो।

तत्त्व साधन के लिये प्राकृतिक उपायों पर चलना अनिवार्य्य है। भोजन, शयन, तृषा, शौच, विश्राम, व्यायाम

तथा अन्यान्य आवश्यक कार्य जिनकी-शरीर-रक्षार्थ आवश्यकता हुआ करती है सभी प्रकृति के अनुकूल किये जाँय। कोई वस्तु उससे विपरीत न सेवन हो, सदैव उसी के अनुसार चलो, कुछ ही दिन में तुम्हारे तत्व उचित परिमाण में दिखाई पड़ेंगे, तुम रोग और दुःखों से बचे रहोगे।

स्वर-ज्ञान।

आज मैं अपने प्रेमी पाठकों को एक ऐसे विषय की ओर ले चलता हूँ, जिसके आश्चर्य-जनक चमत्कारों का वर्णन करना मानवी शक्ति से परे है। वह ऋषि मुनियों का सर्वोत्कृष्ट उपादेय साधन है, सांसारिक समस्त सिद्धियों का महामंत्र उसी के अन्तर्गत व्याप्त है, उसी के द्वारा बड़े २ तार्किक भविष्य वक्ताओं की देश में उत्पति हुई।

वह अद्वितीय साधन स्वर ज्ञान है, स्वर ज्ञानके विना इस विगड़े हुये वर्तमान संसार में कोई भी दुर्लभ सिद्धियों को नहीं पा सकता, ब्रह्मचर्यादि. क्लिष्ट साधन केवल बाह्य आडम्बरों के द्वारा पूर्ण नहीं होसकते, खड़ाऊँ एवं कौपीन धारण करने से, दण्ड और कमण्डलु के अपनाने से कोई ब्रह्मचारी नहीं हो सकता।

इस विषाक्त वायुमण्डल में शारीरिक प्रयोगों की आवश्यकता है, शरीर ज्ञान की सहायता बिना दण्ड और कौपीन केवल पाखण्ड मात्र है।

ब्रह्मचर्य ये लेखकों ! कवियों ! सम्पादकों ! आज संसार को ब्रह्मचर्य–साधन के लिये, वीर्य रक्षा के लिये, अपनी बलहीन विपर्यय प्रकृति के लिये किन २ बातों की आवश्यकता है ? दण्ड, मेखला, कौपीन की अथवा शरीर ज्ञान की ? आज एक नहीं अनेकों ब्रह्मचर्य साहित्य निकल चुके परन्तु भेडिया घसान ! एक ने जो लिखा, दूसरे और तीसरे ने तत्काल उसका अनुकरण किया ! इससे क्या लाभ ? समाज में जागृति की आवश्यकता है, आलसी जाति में स्फूर्त्ति भरना है, परिश्रम से डरने वाले भीरु निरुत्साही समाज में वीरता का संचार करना है, इतना ही नहीं उस खोये हुये अमूल्य धन को प्राप्त करना है जिसके लिये कौपीन और दण्ड धारण करना बता रहे हो। तुम्हे ऐसे साधन का प्रचार करना है जिस से देश का बच्चा २ ब्रह्मचर्य के तेजोमय महत्त्व को समझ ले,

समाज ने ऋषियों के उपदेशों को ठुकरा दिया, दत्तचित्त होकर महर्षियों के आदेशों का पालन नहीं किया, उनके उत्कृष्ट सिद्धान्तों को नहीं समझा। आज इस बीसवीं शताब्दी के उन्नतिशील काल में करोड़ों नवयुवक जिनमें पाश्चात्य सभ्यता की

गन्ध घुस गई है, उन सिद्धान्तों की हसी उडाते हैं, ऋषि वाक्यों पर विश्वास नहीं करते, सदैव ब्रह्मचर्य २ चिल्लाते है परन्तु ब्रह्मचर्य के शारीरिक प्रयोगों का पालन नहीं करते। फिर कैसे वे उसके अधिकारी हो सकते है? यदि ऋषि मुनियों के आज्ञानुसार चलते तो यह मर्कटी सूरत ही क्यों होती?

आओ! स्वरज्ञान का साधन करो। इसका अभ्यास करने पर तुम्हें निश्चय ही अमूल्य चमत्कार दिखाई पड़ेगा। यदि कुछ दिन अविराम इस कार्य्य को करते रहे तो तुम्हारा शरीर तुम्हारे अधिकार में हो जायगा। इन्द्रियां सदैव सुपथ गामिनी होंगी। मन समाधि में लीन हो जायगा। सर्वदा ब्रह्मात्मैक्य विचार तुम्हारे पवित्र चित्त रुपी भूमि में उदय होगा। तुम निसन्देह ब्रह्मरुप हो जाओगे। इस स्वरज्ञान से तुम्हे विलक्षण लाभ होगा। यदि तुम ब्रह्मचारी नहीं हो, तुम्हारा ब्रह्मचर्य भ्रष्ट होगया है तौ भी तुम मत डरो, तुम्हारे पूर्वज एक से एक ऐसे उपादेय नियम बनाकर छोड़ गये हैं जिनके द्वारा महापतितों का भी उद्धार हो सकता है, मूक में वाचाल की शक्ति उत्पन्न हो सकती है, तथा पङ्गुगिरिवर गमन कर सकता है?

ऋषियों का अलौकिक जीवन स्वरज्ञान पर अवलम्बित

था, उनमे देवत्व शक्तियों का प्रादुर्भाव इसी साधन के द्वारा हुआ था। तुम्हारे पूर्वज गृहाश्रम के कठिन उत्तर दायित्व को इसी के द्वारा सफल करते थे। इसी स्वरज्ञान का प्रभाव था कि पूर्वीय दम्पति वर्ग बलवान, शिष्ठ, तथा विशिष्ठ सन्तान उत्पन्न करने मे समर्थ होते थे।

यह यद्यपि कठिण साधन है परन्तु वर्त्तमान कालानुसार मैं सुगम साधन बताता हूँ, इसे प्रत्येक स्त्री पुरुष एवं बालवृद्ध प्रसन्नतःपूर्वक कर सकते हैं। किसी अवस्था मे रहो, सदैव श्वासों का नियन्त्रण करते रहो। यही तुम्हारे जीवन का रहस्य है।

इडा पिंगला सुषुम्ना च प्राणमार्गे समाश्रिताः।

नासिका द्वारा स्वांस की तीन प्रकार की गति है। कभी दाहिना, कभी बायां और कभी दाहिना बांया दोनों मिलकर अर्थात् इडा पिंगला और सुषुम्ना।

इडा वामे च विज्ञया पिंगला दक्षिणे स्मृता।
इडा नाडी स्थिता वामा ततो व्यस्ता च पिंगला॥

इडा नाडी शरीर के वामभाग में है और पिंगला शरीर के दक्षिण भाग में स्थित है दोनों का एक साथ संयोग ही सुषुम्ना का रूप है।

इडा नाडी अमृत रूप है, शरीर को पुष्ट तथा विकार

विहीन करती है, पिंगला अग्नि रूप पाचन तथा प्रबन्धादि शक्तियों की वृद्धि कर बल वीर्य उत्पन्न करती है। दोनों के मध्य में रहने वाली सुषुम्ना नाड़ी सभ्य साधारण के लिये उपयोगी नहीं है।

ब्रह्मचर्य के उपासकों तथा वीर्य के प्रेमियों को चाहिये कि वे ब्रह्मचर्य के सहस्रों उपायों को छोड़ कर केवल स्वर के अनुकूल दो कार्य किया करें, एक भोजन और दूसरा जल ग्रहण, यदि कुछ काल तक इसका अभ्यास कर ले जायेंगे तो उनकी प्रकृति के प्रत्येक कार्य-स्वयं ही स्वरानुसार होने लगेंगे।

भोजन सदैव दक्षिण स्वर में किया करो, भूल कर भी वायां स्वर अथवा ऐसे समय में जब दोनों स्वर चल रहे हों मत करो। दक्षिण स्वर का भोजन प्राकृतिक है, अग्नि तत्व का विकाश-संकेत दक्षिण स्वर है, पित्तोदय अर्थात् जठराग्नि प्रदीप्त होने पर ही पुरुषों की सूर्य अर्थात् पिंगला नाड़ी की गति तीव्र होगी, ऐसी स्थिति में तुम जो कुछ उदर देव को दोगे, उसे वह भली भांति परिपक्व कर उत्तम रस बना देगा। तथा उसके मलों को भी प्राकृतिक काल अनुसार शरीर से निर्वासित करेगा।

भोजन के उपरान्त जब वायां स्वर चले तब आवश्यकतानुसार जल ग्रहण करो, भोजन के साथ ही एकाएक पानी

पीना अप्राकृतिक है, बायें स्वर में जल पीना अमृत का काम करता है।

भोजन और जल स्वर के अनुकूल कुछ दिन सेवन करते रहने पर, शौच और लघुशंकादि क्रियायें प्राकृतिक रूप से होने लगेंगी। रस-रक्तादि धातुओं की क्रियायें नियमित रूप से होकर सारभूत धातु पूर्ण परिपक्व तथा ओजयुक्त होने लगेगा, जिससे वीर्यहीन, भ्रष्ट प्रकृतिवाले, जो ब्रह्मचर्य को खो चुके हैं वे भी वीर्यधारी बन जायँगे।

वीर्य-रक्षा के प्रेमियों! इसे अब कदापि न भूलना। तुम्हारे जीर्ण शरीर के लिये इससे श्रेष्ठ कायाकल्प नहीं, तुम्हारे दुराचार की इससे उत्तम कोई और महौषधि नहीं, तुम्हारे सुधार के लिये इससे उत्कृष्ट और कोई साधन नहीं। यदि तुम सुधरना चाहते हो, अपने को नाश से बचाना चाहते हो तो उठो और स्वरों का साधन करो। इडा में पानी पीओ और पिंगला में भोजन करो।

जब क्षुधा लगे, भूख जान पड़े, तब नाक से श्वाँस फेंको और अपने हाथ के द्वारा पता लगाओ कि कौन स्वर चल रहा है। यदि दाहिना चलता हो तो विलम्ब न करो, तत्काल भोजन कर लो। यदि वाम स्वर चलता हो तो ४,५, मिनट बायें करवट लेट जाओ, अथवा बायें हाथ को पृथ्वी में टेककर लेट

जाओ। थोड़ी ही देर में दाहिना स्वर चलने लगेगा।

भोजन के १ घंटा बाद जब जल पीने की आवश्यकता बोध हो, तब भी पूर्ववत् अपने श्वाँसों का निरीक्षण करो। यदि बायाँ चलता हो तो जल पीओ अन्यथा दक्षिण स्वर चलने पर दाहिनें करवट लेट जाओ। ४, ५ मिनट में बायाँ स्वर चलने लगेगा। इसी भाँति शरीरस्थ वीर्य-रक्षा के लिये उपरोक्त दोनों क्रियाओं को करो। आशा है ४, ६ माह सेवन करने पर तुम्हें आशातीत लाभ होगा। यह ऋषियों का अनुभूत प्रयोग है। तुम इसे धारण कर अपनी खोई हुई शक्तियों को प्राप्त कर लोगे।

२
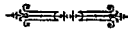
आयुर्वेद

और

ब्रह्मचर्य-साधन

स्वास्थ्य-रक्षा

ब्रह्मचारियों ! जिस मनुष्य के वातादि दोष, अग्नि, रस, धातु, मल और पाचन तथा प्रबन्ध क्रिया समान हो, जिसकी इन्द्रियाँ पुष्ट, आत्मा और मन प्रसन्न हो उसे स्वस्थ कहते हैं।

—महर्षि भेल

स्वास्थ्य ही जीवन का सर्वस्व है, इसीके द्वारा मनुष्य समस्त सिद्धियों को प्राप्त करता है। आरोग्यता से ही सांसारिक सुखों की प्राप्ति होती है। इसीसे मनुष्य का चित्त प्रसन्न रहता, बुद्धि तीव्र होती तथा शरीर और मस्तिष्क बलिष्ठ रहता है। इसी की वृद्धि से ओज की शक्तियों का प्रादुर्भाव होता है जिसके द्वारा सांसारिक प्राणी अद्भुत चमत्कार दिखा विश्व को चकित कर देते हैं।

धर्मार्थकाममोक्षाणां आरोग्यं मूलमुत्तमम् ।
रोगावस्थाऽपहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च ॥

विश्व में चारो पुरुषार्थों का मूल कारण स्वास्थ्य ही है और रोग उन चारों का विनाश कर देते हैं। इतना ही नहीं, जीवन का सर्वनाश कर देते हैं। ऋषियों का कथन है कि स्वास्थ्य ही जीवन की वास्तविक सम्पत्ति है जिस मनुष्य ने इसे

स्वरक्षित रक्खा है संसार में वही भाग्यवाण प्राणी है। उसके सामने कोई आपत्ति नहीं आ सकती। वह विघ्न-बाधाओं से भय-भीत नहीं हो सकता और न कोई उसे इष्ट-पथ से हटा ही सकता है उसका शरीर साहस और उद्योग से पूर्ण रहता है। आलस्य और भीरुता उसके कर्मनिष्ठता से भयभीत हो भाग जाते हैं फिर कौन शक्ति उसे रोक सकती है? जीवन–रणांगण में उसी की विजय होती है।

आज भारत में स्वास्थ्य कहाँ? बल कहाँ? बुद्धि कहाँ? सबों ने वीर्य बहा-बहा कर खो दिया। देश गया, धन गया, विद्या गई, बुद्धि गई, विज्ञान गया, ज्ञान गया। शोक! आज भारत से स्वास्थ्य-धन भी जाता रहा। देश बलहीन और निरुपाय हो गया, स्वास्थ्य की हड्डियाँ और पसुलियाँ निकल आई, मांस और रक्त शोषित हो गया, स्वरूप कंकाल का बन गया। कुछ भी शक्ति नहीं, साहस नहीं, श्वाँस आता जाता है। शरीर पंजर भूभार है।

आज भारत में निन्नानवे प्रतिशत स्वास्थ्य नहीं। कारण प्रमाद, विषय, दुर्गुण, अनाचार, अविचार, व्यभिचार, अत्याचार, अप्रा-कृतिक व्यभिचार, दुर्व्यसन और माता-पिताओं का अन्धापन अर्थात् अन्याय। संसार, उदाहरण है, देखो आज लाखों भारतीय स्वास्थ्य-धन खोकर कीड़ों की मौत मर रहे हैं। सहस्रों

व्यभिचार की अग्नि में अपने सुन्दर शरीर को नष्ट कर रहे हैं। करोड़ों आत्मायें पाप की वासना में पड़कर चिल्लाते हुये बेमौत मर रहे हैं। देखो, सहस्रों दुर्व्यसन के दावानल में जल रहे हैं तथा अनेकों हिम में गल रहे हैं।

शरीर-शुद्धि
और पंचकर्म

शरीर-शुद्धि ही जीवन का लक्ष है, इसीके पवित्र रहने पर सभी क्रियायें सफल होतीं हैं। शरीर का निर्दोष रहना प्रत्येक साधना के लिये आवश्यक है। इसी के आरोग्य रहने पर हम सभी सिद्धियों को पूर्ण कर सकते हैं।

संसार विदग्ध होगया है। वातावरण विषाक्त हो उठा है। शरीरस्थ पंचभूत विपर्यय बोध हो रहे हैं। त्रिगुण शरीर अपने गुणों के विपरीत आचरण धारण कर कलुषित हो चुका है। सृष्टि का सात्त्विक वातावरण आज ब्रह्मचर्य के पतन में तामस रूप में परिवर्त्तित हो चुका है। इसका अणु २ दोषों से पूर्ण दिखा रहा है, ऐसी स्थिति में क्या करना योग्य है? कैसे हम अपने को ब्रह्मचर्य्य के पथ का पथिक बना सकते हैं?

इन्द्रियाँ निःशक्त हैं, शरीर निस्तेज है, देह में बल नहीं, शक्ति नहीं, विवेक नहीं, बुद्धि नहीं, वीरत्व शोणित नहीं, बलिष्ठ अस्थि नहीं और वह उन्नत मस्तिष्क नहीं। कैसे हम उसे अपनावें। हाय! ग्रहणी विषाक्त हो चुकी, मलोष्ण एवं मंदाग्नि ने शरीर पर अधिकार जमा लिया, कोई भी धातु परिपक्व प्रस्तुत नहीं होरहा है। वीर्य विकारयुक्त होकर शरीर को निर्बल बना दिया है। धमनियाँ एवं पेशिकायें शक्तिरहित होती जाती हैं। कुछ भी समय अवशेष है कि वीर्यवाहिनी नाडियाँ वीर्य से हीन होने वाली हैं। रक्त शरीर से निर्वासित होने वाला है। जान पड़ता है कि शोषरूपी रोगकारी व्याधि ने मेरे शरीर को पूर्ण रुग्ण, अस्वस्थ, दोषपूर्ण एवं कलुषित बना दिया है। हाय! हम कैसे ब्रह्मचर्य का पालन करें।

सब से प्रथम मुझे शरीर-शुद्धि पर ध्यान देना चाहिये। शरीर-शुद्धि हो जाने पर पुनः हम शक्ति प्राप्त कर सकते ह। शरीर-शुद्धि के उपरान्त मनोबल तथा प्रकृति सहकारी वस्तुओं के उपयोग के द्वारा हम अपने को पूर्ववत् बल एवं शक्तिसम्पन्न कर सकते हैं।

भारतियों! बलहीनों! निःशक्तों! क्या तुम्हें पुनः ब्रह्मचर्य को अपनाने का विचार है? पूर्वीय गौरव की रक्षा करना चाहते हो? क्या अपने इन नारकीय दुःखों से

मुक्ति पाना चाहते हो ? सदाचारी बनने का अभीष्ट है ? कुलदीपक बनकर संसार में प्रकाश करने का विचार है ? तो कलुषितों आओ। पहले अपने इस पापी शरीर की शुद्धि करो। अपने स्वास्थ्य को सुधारो, खूब वीर्य बढ़ाओ, पश्चात् रासायनिक शक्ति उत्पन्न कर इस जीर्ण शरीर का कायाकल्प करो।

शरीर-शुद्धि ही आरोग्यता का मूल रहस्य है। इसके लिये आयुर्वेदज्ञ ऋषियों के उपदेशों का अनुकरण करो। उन आयुर्विद्याविशारद ब्रह्मर्षियों के शरण में चलो। उनके पवित्र नियमों का पालन कर अपने दोषपूर्ण देह को एक बार दोष-रहित अत्यन्त शुद्ध बनाकर संसार को कुछ नवीन चमत्कार दिखाओ, तभी कल्याण होगा। अन्यथा यह जराव्याधिग्रसित वृद्ध भारत शीघ्र काल-कवलित हो जायगा।

शरीर शुद्धि के लिये पंचकर्म करो।

१ पित्तविरेचन २ मलविरेचन ३ मूत्रविरेचन ४ वायु-विरेचन ५ प्रस्वेदविरेचन।

पित्तविरेचन के द्वारा हृदय से कंठ तक शुद्ध करो। मल-विरेचन द्वारा मलाशय, रसाशय तथा मूत्रविरेचन द्वारा मूत्राशय और शुक्राशय की शुद्धि करो। वायुविरेचन के द्वारा दूषित

वायु को देह से निकालो। पश्चात् वाष्प-क्रिया के द्वारा अपने रक्त, वसा, अस्थि, मज्जा एवं त्वचा के दोषों को दूर करो।

यह क्रिया चैत्र तथा आश्विन में आरम्भ करे इन्हीं दोनों मासों में दोष स्वाभाविक रूप से स्वयं प्रकट हो जाते हैं अतः उनके निकालने में सुविधा होती है। अन्य माहों में वमन एवं विरेचन क्रियायें परिष्कृत नहीं होतीं, अतः साधक को चाहिये कि ऋतुओं के परिवर्तन काल में ही इन क्रियाओं को करके ब्रह्मचर्य साधन में लवलीन हो।

(१) वमन—जिस क्रिया के द्वारा वान्त हो, उसे वमन कहते हैं। इस क्रिया के करने के दो तीन दिन पूर्व मधुर एवं लघुपाकी खाद्य वस्तु उपयोग करना चाहिये। इस बात का ध्यान रहे कि भोजन के पदार्थों में स्नेहन का भाग भी हो। इस प्रकार इस क्रिया के योग्य होजाने पर किसी दिन प्रातः-काल में मैनफल का प्रयोग करे। योग्य पूर्णवयस्क व्यक्तियों के लिये इसकी मात्रा ३ माशा से ६ माशातक हो। वमन हो जाने पर थोड़ा उष्ण जल लवणसंयुक्त पी लेना चाहिये।

(२) विरेचन—जिसके द्वारा शरीर से मल बाहर निकले, उसे विरेचन कहते हैं। इसके उपयोग करने के दो तीन दिन पूर्व मलों को फुलाने के लिये अनुलोमन वस्तु का उपयोग करना नितांत आवश्यक है। जो लोग एकाएक विरेचक

औषधियों का उपयोग कर लेते हैं वे बड़ी भारी भूल करते हैं। जयपाल आदि तीव्र विरेचक वस्तुओं से मनुष्यों को दूर रहना चाहिये। दो तीन दिन अनुलोमन पदार्थ के सेवन से मल फूल जायगा। उसकी सहायता के लिये लघुपाकी स्नेहन खाद्य सेवन करो। नित्य शरीर में तैल मर्दन करना आवश्यक है।

इस प्रकार क्रिया के योग्य होने पर निशोत, कालादाना, सनाय, शुद्ध रेंडी का तेल तथा इसीके समान कोई अन्य विरेचक वस्तु अपनी शक्ति के अनुसार सेवन करे। स्मरण रहे कि विरेचन के दिन अभ्यासी स्नान न करे। शयन एवं वायु सेवन से भी बचा रहे अन्यथा वायुवृद्धि होने का भय रहता है।

(३) इन्द्रिय–विरेचन—शरीर से मूत्र विकार निकालने वाली क्रिया को इन्द्रिय–विरेचन कहते हैं। इसके सेवन के पूर्व–शीतल पदार्थों का उपयोग करना आवश्यक है। दो तीन दिन पूर्व से शीतलचीनी, बिहीदाना, चन्दन, उशीर, मिश्री एवं गोदुग्ध का प्रयोग करे पश्चात् कल्मीशोरा, जवाखार, गुजराती गेरु और भुनी फिटकिरी समान मात्रामें १ तोला १ सेर पानी में डाल कर अच्छी तरह फेंटे पश्चात् २-३ बार में पी जाय। बाद घण्टे घण्टे पर शीतल जल पीये, इस प्रकार २-३ दिन में मूत्राशय की गर्मी दूर हो जायगी।

(४) वायु–विरेचन—शरीरस्थ दूषित वायु को जिस

क्रिया के द्वारा हम शरीर से वाहर निकालें तथा नष्ट कर दें उसे वायु-विरेचन कहते हैं। इस क्रिया के पूर्व वायुवर्द्धक पदार्थ त्याग देना चाहिये। गरिष्ठ भोजनों से दूर रहे। तीन दिन तक शुष्क पदार्थों का वायुनाशक अनुपानसंयुक्त सेवन करे। तदनन्तर क्रिया के दिन शुद्ध हींग, शुद्ध सुहागा, काला नमक, वायविडंग, शुद्ध पपड़िया नौसादर समान मात्रा १ माशा निर्गुंडी के स्वरस में किंचित् उष्ण कर पान करे। २ या ३ घंटे के पश्चात् अजवायन का एक छटाँक काढ़ा पीवे। वाद लघुपाकी भोजन करे। इस भाँति निरन्तर ३ दिन करने पर वायु की शुद्धि होगी।

(५) प्रस्वेद-विरेचन—जिस क्रिया के द्वारा शरीर से प्रस्वेद निकले, उसे प्रस्वेदन कहते हैं। इस क्रिया के करने में खूब संयम करे। इसे ऋषियों ने वाष्पस्नान के नाम से पुकारा है।

जमीन पर एक कोयले का जलता चूल्हा रखे, उसपर एक जलपूर्ण मृत्तिका पात्र रखे और जल में थोड़ा अजवायन डाल दे। जब दक्षिण स्वर चलने लगे तब आप स्वयं एक ऊँचे खाट पर बैठे जो उस हंडी से १-१॥ हाथ उंचा हो। यह ध्यान रहे कि हंडी ठीक गुदा के नीचे रहे। थोड़ी देर में जब जल का वाष्प उठने लगे तब साधक एक काला कम्बल ओढ़कर बैठ जाय। साधक का नग्न रहना आवश्यक है। कम से कम इस क्रिया को ३० मिनट तक

करे। जब शरीर प्रस्वेद पूर्ण होजाय, तो शुष्क वस्त्रों से उसे भीतर ही भीतर सुखा ले। इस भाँति तीन दिन क्रिया करनी चाहिये। यदि ताप बोध होने लगे। कंठ में शुष्कता जान पड़ने लगे तब धीरे २ हंडीसंयुक्त कोयले का चूल्हा खटिये के नीचे से खैंच कर बाहर निकाले। परन्तु साधक दत्तचित्त स्थिर रहे, शरीर में वायु न लगने पावे, एक घड़ी के पश्चात् जब शरीर प्रस्वेदहीन हो जाय तब सबसे पहले सिर खोले पश्चात् धीरे २ सर्वांग।

इसके पश्चात् वस्त्र पहिन ओढ़ कर साधक निर्जन स्थान में टहले। रात्रि में पेय पदार्थों का पान करे। इस क्रिया के करते समय वायु से बचना चाहिये।

इस भाँति पंचकर्मों को करे। इसके लिये गुरु की आवश्यकता, शरीर-विद्याविशारद विज्ञ के बिना यह सफल नहीं हो सकती। अतः किसी विधान के द्वारा पंचकर्मों के द्वारा शुद्ध हो आगे का कार्य-क्रम चलावे।

दीपन-पाचन

पंचकर्मों के करने के उपरान्त, जठराग्नि को दीप्त करने का उपाय करना चाहिये। तुम्हें उन उपायों का अवलंबन करना होगा जिनके द्वारा तुम्हारे शरीर में दीपन और पाचन

शक्ति की वृद्धि हो। शरीर शुद्ध होने पर, मल एवं दोषों के वाहर हो जाने पर शरीर को जैसा चाहे मनुष्य बना सकता है।

शरीर दीपन और पाचनशक्ति के ऊपर टिका है। यदि प्रदीप्त अग्नि और वलिष्ट पाचन-क्रिया न हो, तो भोजन का परिपक्व रस प्रस्तुत नहीं होगा। रस के अपरिपक्व प्रस्तुत होने पर शरीरस्थ कोई धातु शुद्ध नहीं वन सकते। उनमें यथार्थ शक्ति का समावेश नहीं हो सकता। फिर कैसे इस शरीर का पोषण हो सकता है। कदापि नहीं।

पाचन-क्रिया के न्यून होने पर मनुष्यों को अजीर्ण नामक रोग उत्पन्न होता है। भोजन नहीं पचता, उदर में उष्णता वढ़ जाती है, प्यास की मात्रा वढ़ जाती है, पेट जलने लगता है, कभी २ दोषों के वढ़ जाने पर विष्टंभ तथा अफरादि रोग उदय होकर कष्ट देने लगते हैं।

मनुष्यों की अग्नि चार प्रकार की है—

मन्दस्तीक्ष्णोऽथ विषमः समश्चेति चतुर्विधः।
कफपित्तानिलाधिक्यात्तत्साम्याज्जाठरोऽनलः॥

मन्द, तीक्ष्ण, विषम और सम नामक जठराग्नि चार प्रकार की है। मनुष्य के शरीर में कफ की अधिकता से मंदाग्नि, पित्त की अधिकता से तीक्ष्णाग्नि, वात की अधिकता से विषमाग्नि तथा तीनों की समानता से समाग्नि का प्रादुर्भाव होता है।

अर्थात् विषमाग्नि वातज रोगों को उत्पन्न करता है, तीक्ष्णाग्नि के द्वारा पित्त की उष्णता हमारे शरीर में बढ़ती है, शरीर में मंदाग्नि उत्पन्न होने पर मुझे कफों के उपद्रव का सामना करना पड़ता है। समाग्नि हमारे लिये एक मात्र रक्षिका है।

आयुर्वेदज्ञ तथा शरीरविद्याविशारद ऋषियों ने चतुर्विध जठराग्नि का निम्न प्रकार से वर्णन किया है----

जिसके द्वारा मनुष्यों के यथोचित आहार के पदार्थ भली भाँति परिपक्व होजाँय उसे समाग्नि कहा है। जिस अग्नि के द्वारा प्राणियों में आहार द्रव्य, स्वल्पमात्रा में होने पर भी न पचें उसे मंदाग्नि कहते हैं। जिसके द्वारा खाद्य पदार्थ किसी दिन पच जाय और किसी दिन न पचे उसे विषमाग्नि कहते हैं और जिस अग्नि के द्वारा विशेष भोजन किया हुआ भी शीघ्र पच जाय उसे तीक्ष्णाग्नि एवं भस्माग्नि कहते हैं। इन चतुर्विध अग्नियों में समाग्नि श्रेष्ठ है।

स्वास्थ्य-रक्षाके लिये, दीपन एवं पाचन-शक्ति का रक्षाके लिये समाग्नि का साधन करना चाहिये। समाग्नि प्राप्त करने के लिये विशेष जल नहीं पीना चाहिये। विषम भोजन त्याग देना चाहिये। मल मूत्रों के वेग को नहीं रोकना चाहिये। दिन में सोना, रात्रि में जागरण, शीतल वायुवर्द्धक द्रव्यों से बचे रहना चाहिये। भय क्रोध लोभ शोक क्षोभ दीनता और मत्सरता के निकृष्ट प्रक्रिया के द्वारा भी अग्नि नष्ट हो जाती है अतः इनसे

मनुष्यों को बचे रहना चाहिये। चटपटे, खट्टे तथा रूक्ष पदार्थ भी वर्जित हैं।

मंदाग्नि एवं विषमाग्नि से बचने के लिये मनुष्यों को अग्निवर्द्धक वनस्पतियों (औषधियों) को सेवन करना चाहिये। चित्रक और कालानमक, हरड़ सोंठ कालानमक, सौंफ नागकेशर तथा आदी का समयानुसार उपयोग करना चाहिये। अथवा अग्निकुमार, हुताशन, ज्वालानल आदि शास्त्रोक्त औषधियों का नियमपूर्वक सेवन करे। साथ ही आहार विहार का उचित ध्यान रखे क्योंकि आहार ही मुख्य वस्तु है।

जब शरीर और मन में उत्साह हो, डकार शुद्ध आवे, शरीर हल्का हो, यथोचित क्षुधा और तृषा एवं मल-मूत्रों का भलीभाँति प्रवर्त्तन हो तो समझ ले कि विषमाग्नि एवं मंदाग्नि तथा तीक्ष्णाग्नि जीर्ण हो गये और शरीर में समाग्नि का प्रवेश हो चुका है।

शरीर-रक्षा के लिये, जीर्ण शरीर का पुनरुद्धार करने के लिये, समाग्नि धारण कर दीपन तथा पाचन क्रिया की वृद्धि करो, जिससे तुम्हारे भोज्य पदार्थों का परिपक्व रस बन कर तुम्हारे सप्त धातुओं की वृद्धि करे, जिससे तुम वीर्यवान हो अपने को पतन से बचाओ।

अर्थात् विषमाग्नि वातज रोगों को उत्पन्न करता है, तीक्ष्णाग्नि के द्वारा पित्त की उष्णता हमारे शरीर में बढ़ती है, शरीर में मंदाग्नि उत्पन्न होने पर मुझे कफों के उपद्रव का सामना करना पड़ता है। समाग्नि हमारे लिये एक मात्र रक्षिका है।

आयुर्वेदज्ञ तथा शरीरविद्याविशारद ऋषियों ने चतुर्विध जठराग्नि का निम्न प्रकार से वर्णन किया है—

जिसके द्वारा मनुष्यों के यथोचित आहार के पदार्थ भली भाँति परिपक्व होजाँय उसे समाग्नि कहा है। जिस अग्नि के द्वारा प्राणियों में आहार द्रव्य, स्वल्पमात्रा में होने पर भी न पचें उसे मंदाग्नि कहते हैं। जिसके द्वारा खाद्य पदार्थ किसी दिन पच जाय और किसी दिन न पचे उसे विषमाग्नि कहते हैं और जिस अग्नि के द्वारा विशेष भोजन किया हुआ भी शीघ्र पच जाय उसे तीक्ष्णाग्नि एवं भस्माग्नि कहते हैं। इन चतुर्विध अग्नियों में समाग्नि श्रेष्ठ है।

स्वास्थ्य-रक्षाके लिये, दीपन एवं पाचन-शक्ति का रक्षाके लिये समाग्नि का साधन करना चाहिये। समाग्नि प्राप्त करने के लिये विशेष जल नहीं पीना चाहिये। विषम भोजन त्याग देना चाहिये। मल मूत्रों के वेग को नहीं रोकना चाहिये। दिन में सोना, रात्रि में जागरण, शीतल वायुवर्द्धक द्रव्यों से बचे रहना चाहिये। भय क्रोध लोभ शोक क्षोभ दीनता और मत्सरता के निकृष्ट प्रक्रिया के द्वारा भी अग्नि नष्ट हो जाती है अतः इनसे

मनुष्यों को बचे रहना चाहिये। चटपटे, खट्टे तथा रूक्ष पदार्थ भी वर्जित हैं।

मंदाग्नि एवं विषमाग्नि से बचने के लिये मनुष्यों को अग्निवर्द्धक वनस्पतियों (औषधियों) को सेवन करना चाहिये। चित्रक और कालानमक, हरड़ सोंठ कालानमक, सौंफ नागकेशर तथा आदी का समयानुसार उपयोग करना चाहिये। अथवा अग्निकुमार, हुताशन, ज्वालानल आदि शास्त्रोक्त औषधियों का नियमपूर्वक सेवन करे। साथ ही आहार विहार का उचित ध्यान रखे क्योंकि आहार ही मुख्य वस्तु है।

जब शरीर और मन में उत्साह हो, डकार शुद्ध आवे, शरीर हल्का हो, यथोचित क्षुधा और तृषा एवं मल-मूत्रों का भलीभाँति प्रवर्त्तन हो तो समझ ले कि विषमाग्नि एवं मंदाग्नि तथा तीक्ष्णाग्नि जीर्ण हो गये और शरीर में समाग्नि का प्रवेश हो चुका है।

शरीर-रक्षा के लिये, जीर्ण शरीर का पुनरुद्धार करने के लिये, समाग्नि धारण कर दीपन तथा पाचन क्रिया की वृद्धि करो, जिससे तुम्हारे भोज्य पदार्थों का परिपक्व रस बन कर तुम्हारे सप्त धातुओं की वृद्धि करे, जिससे तुम वीर्यवान हो अपने को पतन से बचाओ।

पथ्यापथ्य

आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।
स्मृतिलब्धे सर्वे ग्रन्थीनां विप्रमोक्षः ॥

छान्दोग्योपनिषद

आहार की शुद्धि से सत्व की शुद्धि होती है, सत्वशुद्धि से वुद्धि निर्मल और निश्चयी वन जाती है, और पवित्र तथा निश्चयी वुद्धि से मुक्ति भी सुगमता से प्राप्त होती है।

ब्रह्मचर्य-साधन के लिये पथ्यापथ्य पर विचार रखना अनिवार्य्य है। आहार ही जीवन का प्राण है। इसीके दुरुपयोग से मानवों का संहार होते हुये देखा गया है। ऋषियों ने आहार को शरीर का सर्वस्व माना है। यही कारण है कि ब्रह्मचर्य का इससे अत्यन्त घनिष्ट सम्वन्ध होगया है।

जिन्हें ब्रह्मचर्य धारण करना है, पवित्रात्मा वनना है, जो कामक्रोधाग्नि से मुक्त होना चाहते हैं, वलवान इन्द्रियों पर जिन्हें विजय प्राप्त करना है, जो चंचल मन को वशीभूत रखना चाहते हैं, जिनका विचार चित्तवृत्तियों के निग्रह करने का है, उन्हें चाहिये कि आहार पर ध्यान दें। नित्य नियमित सात्विक, लघुपाकी स्वल्पाहार करें कभी भूल कर भी गरिष्ठ, वायुवर्द्धक कफकारक, रजोगुणी तथा तमोगुणी आहार के निकट न जाँय।

जीवन का आहार ही मुख्य पदार्थ है। इसीसे यह शरीर चल रहा है। आहार के बिना संसार का पालन नहीं हो सकता। शरीरज्ञों ने शरीर-रक्षा का कारण आहार ही माना है। यही कारण है कि शरीर को जैसा आहार दिया जाता है, उसी के अनुसार उसमें गुणदोषों का उदय होता है। अर्थात् जैसा मनुष्य खाता ह वैसा ही वन जाता है। यदि कुछ दिनों तक तमोगुणी पदार्थों का सेवन करे तो उसकी बुद्धि तमोगुणी हो जायगी। इसके विपरीत यदि कुछ दिनों तक सात्त्विक आहार सेवन करे तो आपसे आप उसकी कुबुद्धि का नाश हो जायगा और सात्त्विक गुणों का तेज प्रकट होने लगेगा।

आहार तीन प्रकार का है—सात्विक, राजस और तामस।

१–सात्त्विक आहार–आयु, सात्विकवृत्ति, बल, आरोग्य, सुख, प्रीतिवर्द्धक, रसीले, चिकने, स्थिर और आनन्ददायक भोजन सात्विक आहार है। ऋषियों ने ऐसे लघुपाकी, अत्यन्त स्नेहन रसयुक्त, मधुर एवं प्रिय आहार को सात्विक कहा है, जिनके सेवन से मनुष्यों की वृत्ति सतोगुणी हो जाती है। आहार में यव, मूँग, शालि, गेहूँ, सांठी, चणक, अरहर, गोदुग्ध, गोघृत, चीनी, सैंधव, लघुपाकी शाक तथा शुद्ध पके हुये मधुर फल सात्त्विक पदार्थ हैं, इनके सेवन से सतोगुणी वृत्ति उत्पन्न होती है।

२–राजसी आहार—कड़वे, खट्टे, नमकीन, अत्यन्त उष्ण,

तीखे, रुखे, चरपरे तथा दुःख, शोक और रोग उत्पन्न करने वाले भोजन राजसी आहार हैं। शरीरविज्ञों ने अत्यन्त उष्ण, आवश्यकता से अधिक मीठा, कडुवा, तीता, नमकीन, रुखा, चरपरा, खट्टा, दोषयुक्त पदार्थ, गंदी अर्थात् अपवित्रता से बनी हुई सामग्री, गरिष्ठ (पूड़ी कचौड़ी मालपूआ हलुआ) प्याज, लहसुन, गाजर, उड़द, मसूर, सरसो, मांस, मछली, अंडा, कवाब, चाय, काफी, कोको, सोडा, लेमन, तैल, हींग, मसाला, पान, तम्बाकू, गांजा भाँग, चरस, चण्डू, कोकेन आदि को राजसी आहार कहा है, इनके सेवन से मनुष्य रजोगुणी हो जाता है ।

३—तामसी आहार—देर का रखा हुआ, रसहीन, दुर्गंधयुक्त, जूठा और अपवित्र भोजन तामसी आहार कहलाता है । इसमें राजसी आहार की वस्तुयें भी सम्मिलित हैं । यह आहार अत्यन्त घृणित, निन्ध एवं निकृष्ट है । संसार को सदैव इससे बचना चाहिये । इससे मनुष्य पूर्ण तमोगुणी बन जाता है । मनुष्य-शरीर पर इसका बड़ा बुरा परिणाम प्रगट होता है । यह निकृष्ट आहार मानवीय अन्तःकरण में दानवी वृत्ति उत्पन्न कर देता है। इसका प्रेमी सदा रोगी, दुःखी, बुद्धिहीन, लोभी, क्रोधी, कामी, मोही, व्यभिचारी, अविचारी तथा दरिद्री हो जाता है । निसन्देह—शीघ्र अल्पायु हो अकाल मृत्यु का कीट बन नरकगामी हो जाता है ।

राजसी आहार शरीर में रजोगुण उत्पन्न करता है । इसके

सेवन से स्थिर वृत्तियाँ भी चंचल हो उठती हैं, इससे विषयों की ओर इन्द्रियाँ दौड़ जाती हैं जिससे मनुष्य कामी और पापी बन जाता है। चित्त का वातावरण चंचल हो उठता है। मन शक्ति के बाहर हो मनमाना करने लगता है जिससे रोग और शोक बढ़ने लगते हैं। आयु, तेज, बल, सामर्थ्य, सौन्दर्य और सौभाग्य घटने लगते हैं। तामसी आहार वाले के समान राजसी आहार वाला भी ब्रह्मचर्य का अधिकारी नहीं हो सकता।

आहारों में सात्विक आहार श्रेष्ठ है, अतः जिन्हें ब्रह्मचर्य का पालन करना है, जो अपना उद्धार करना चाहते हैं, जिन्हें अपने शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बल की उन्नति अभीष्ट है, जो अपने शरीर में सौन्दर्य्य, बल एवं सामर्थ्य बढ़ाना चाहते हैं तथा जिन्हें अपने पतितावस्था पर ध्यान है—उन्हें चाहिये कि राजसी और तामसी आहार छोड़ कर सुख शान्ति देने वाला सात्विक आहार सेवन करें।

वीर्य-रक्षा के प्रेमियों को सूक्ष्म आहार करना चाहिये। सात्विक आहार भी विशेष हो जाने पर राजसी हो जायगा। ऐसा भोजन करो कि तुम आहार को खाओ, ऐसा न हो जाय कि आहार ही तुम्हें खा जाय। विशेष भोजन करने से बुद्धि का नाश हो जाता है। बुद्धिहीन हो जाने से मनुष्य सहज ही में पाप-पंक में फँस जाता है। अधिक भोजन करना ही बाह्य एवं अन्तर

व्याधियों का कारण है। अधिक भोजन करने से ही अजीर्ण, मंदाग्नि, शूल, अतिसार, ग्रहणी, विषूचिकादि भयंकर रोग प्रगट होकर तुझे अकाल में हीं नष्ट कर देते हैं। कामक्रोध का इसी से प्रादुर्भाव होता है। इसीसे इन्द्रियाँ चंचल होती हैं। मन कामलोलुप बन जाता है। सम्पूर्ण पापों की जड़ यही है।

अनारोग्यमनायुष्यं अस्वर्ग्यं चाऽतिभोजनम्।
आयुघ्नं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत्॥

अधिक भोजन रोगों को बढ़ाने वाला, आयु को कम करने वाला, नरक में भेजने वाला, पापों को कराने वाला और सब लोकों में निन्दित करने वाला है—अतः बुद्धिमान को चाहिये कि—अति आहार का त्याग करें और सदा सात्त्विक स्वल्पाहार किया करें।

प्राणियों! भोजन प्राण-पोषण के लिये सेवन करो, प्राण-नाश के लिये नहीं। आहार स्वास्थ्य के लिये खाओ, रोगों को उत्पन्न करने के लिये नहीं। जो कुछ प्रयोग करो जीने के लिये, मरने के लिये नहीं।

मानवों! अधिक अन्न पेट में मत भरो, फुटबॉल के वायु के समान, पेट में खूब ठूँस-ठूँस कर आहार मत भरो, नहीं तो पछताना पड़ेगा। जिस प्रकार विशेष वायु भरने से फुटबॉल फट जाता है उसी भाँति विशेष आहार से तुम भी नष्ट हो जाओगे।

फिर पेट पर खाना क्या ? तुम एक ग्रास भी पेट में नहीं उतार सकोगे। अरे अज्ञानियों! भोजन सुख के लिये खाया जाता है, रोग या दुःख-प्राप्ति के लिये नहीं। भोजन ही रक्षक है परन्तु याद रहे--विपरीत होने पर भक्षक बन जाता है। पेटू जीते जी मुर्दा के समान हैं। पेटुओं की मनोवृत्ति निशाचरी हो जाती है। दरिद्रदेव उसका पिंड नहीं छोड़ते। आयुर्वेदज्ञों ने लिखा है--

अनात्मवन्तः पशुवद् भुञ्जते येऽप्रमाणतः।
रोगानीकस्य ते मूलमजीर्णं प्राप्नुवन्ति हि॥

जो लोभी मनुष्य जिह्वा के वश होकर पशु के समान वे प्रमाण भोजन करते हैं, उनके सब रोगों का कारण अजीर्ण रोग शीघ्र उत्पन्न हो जाता है।

पेटू मनुष्य ही संक्रामक रोगों के घर हैं। उन्हीं लोगों के द्वारा देश में महामारियाँ फैलती हैं। वे ही अकाल में काल को बुलाते हैं, प्लेग और कालरा के आदिकारण वे ही हैं, जिनके पेट में हाय घुसी है, कमाना खाना और शौच की निवृत्ति ही उनका काम है। पेटुओं से सदैव बचे रहना चाहिये। भगवान धन्वन्तरि का कथन है--

न तां परिमिताहारा लभन्ते विदितागमाः।
मूढास्तामजितात्मानो लभन्तेऽशनलोलुपाः॥

जिस अज्ञानी को भक्ष्याभक्ष्य का ज्ञान नहीं, जो अजितेन्द्रिय

और आहार का लोभी अर्थात् पेटू है निश्चय ही उसे विषूचिका रोग उत्पन्न होता है । आवश्यकता से अधिक खाने वाले कभी सुखी नहीं देखे गये । उनके शरीर में बल, वीर्य, स्फूर्ति और शांति नहीं मिल सकती, वे सदा दुखी, रोगी, आलसी और अल्पायु होंगे । उनका शरीर उदास, मन चिड़चिड़ा और क्रोधी हो जाता है । मंदाग्नि और अजीर्ण उनके शरीर में डेरा डाल देता है, उनके नेत्रों की ज्योति क्षीण पड़ जाती है, दाँत शीघ्र टूट जाते हैं और शरीर की त्वचायें सिकुड़ जाती हैं । पेटू युवावस्था में ही वृद्धता के दुःखों का अनुभव करने लग जाता है ।

अत्यन्त गरिष्ट आहार भी शरीर का काल है, अधिक मात्रा में घी, दूध, बादाम, मालपुआ, हलुआ और मोहनभोग उड़ाने वाले भी कभी सुखी नहीं रह सकते, हड्डी चूसने वाला कुत्ता जब कामान्ध हो जाता है—फिर यह मोहनभोग नित्य ठूँस-ठूँस कर भरने वाला फुटबॉल कैसे रुका रहे । यही कारण हैं कि यह बारहों महीना कामान्ध रहता है । नित्य हलुआ पूड़ी तथा मद्य मांस सेवन करने वाला चाहे कोई हो, भिखारी या राजा, साधक या सिद्ध इस कामरूपी फुटबॉल को सुरक्षित रख सकता है ?

ब्रह्मचर्य-व्रतधारियों ! गरिष्ठ पदार्थों को आवश्यकता से

अधिक मत खाओ। उत्तेजक भोजनों से दूर रहो, नहीं तो संडे मुसंडे महन्तों और बने हुये धूर्त ब्रह्मचारियों की तरह तुम्हारे वीर्यदेव भी उत्तल पड़ेंगे। सम्पूर्ण गरिष्ठ पदार्थ पातली यन्त्र के समान पेट से चू चू कर इन्द्रिय मार्ग से बहिर्गत हो जायँगे। सम्हलो! क्या उसी समय चेतोगे जब आहार सीधा अधोमुखी हो अपान वायु की प्रेरणा से शरीर में बिना रुके ही गुदा मार्ग स निकलने लगेगा। देखो! तुम्हारे पूर्वजों ने कहा है--गुरुपाकी, अत्यन्त स्निग्ध, शीतल, मधुर एवं पिच्छिल पदार्थों के विशेष आहार से, भोजन के ऊपर भोजन करने से, तथा दिन में सोने से कफ कुपित होकर जठराग्नि को नष्ट कर देता है। जिससे खाद्य पदार्थ अत्यन्त कष्ट से पचता है, उचकाई, वमन, अरुचि, मुख में कफ की लिसता आदि व्याधियाँ धर दबोचती हैं।

ब्रह्मचर्य के इच्छुकों को चाहिये कि सदैव सात्विक आहार सेवन करें। सादा और स्वच्छ भोजन उपयोगी होता है। दिन में दो बार अथवा एक बार ही भोजन किया जाय। आहार खूब क्षुधा लगने पर किया जाय। इस बात का सदैव ध्यान रखें कि भोज्य पदार्थ अत्यन्त उष्ण न हो। अत्यन्त उष्ण आहार वीर्य को पतला कर देता है, नाडियों म शुष्कता उत्पन्न करता तथा दाँतों में अनेक प्रकार के रोगों को बढ़ा कर उन्हें निर्बल

बना देता है। भोजन किंचित् उष्ण उपयोग करना ठीक है।

तुम्हें प्रकृति के अनुसार चलना चाहिये। प्राकृतिक भोजन ही तुम्हारे लिये उपयोगी होगा। यदि तुम अपने रसना को वश में कर लो तो निश्चय ही तुम अपने मन और इन्द्रियों पर आनायास अधिकार जमा लोगे। सभी रस एवं गन्धादि तुम्हारे अनुचर हो जायँगे। रसना ही रसों की उद्भवकर्त्री है। निसन्देह इसी के द्वारा सम्पूर्ण रसों की उत्पत्ति हुई है। इसीके द्वारा, तुम रसाधिपति होकर अपने को ब्रह्मचर्य के मार्ग पर बढ़ा सकोगे।

बढ़िया चटपटी अर्थात् स्वादिष्ट भोजन होने पर भी विशेष न खाओ। जितना तुम्हारी समाग्नि भली भाँति पचा सके, उतना ही आहार इस थैले में डालो। विशेष होने पर जठराग्नि उसे भली-भाँति नहीं पचा सकती। उदर में अपरिपक्व अन्न रहने पर असंख्यों विकार उत्पन्न होंगे। अतः जिह्वा को वश में करके स्वल्पाहार से सन्तुष्ट रहो। कभी रूखे, कषैले, चरपरे और विशेष कड़वे पदार्थों को मत खाओ नहीं तो कोष्ठ-स्थित वायु कुपित होकर उदावर्त्तादि भयंकर रोगों को उत्पन्न कर देगा। जिसका दुःखदायी परिणाम तुम्हें भोगना पड़ेगा।

भोजन ही सर्वस्व है। इसी लिये विश्वगुरु-ब्रह्मर्षियों ने इसकी खूब छान-बीन की थी। वन में रहते हुये इसका आद्योपांत

अनुसंधान किया था। उन लोगों ने जो कुछ अपने अनुभव के द्वारा प्राप्त किया है वह अक्षरशः उपादेय है। यदि तुम उसका अनुकरण करो तो अवश्य कुछ ही दिनों में तुम्हारा कायाकल्प हो जायगा। तुम्हारी यह जीर्णता, मलीनता, दीनता और हीनता नहीं रह जायगी। तुम मनुष्य नामधारी कहला सकोगे।

भगवान बुद्ध का कथन है—

एक वार सात्विक लघुपाकी आहार करने वाला महात्मा है। दो वार साधारण सात्विक आहार करने वाला बुद्धिमान तथा भाग्यवान है। इसके विपरीत अधिक अनुपयुक्त भोजन करने वाला महामूर्ख तथा पशु से भी निकृष्ट है।

भोजन करने के पूर्व हाथ, पैर और मुँह को अच्छी तरह साफ कर लो, इससे तुम्हें वड़ा लाभ होगा, पाचन क्रिया वलवती रहेगी। पूर्वजों का यह धार्मिक सिद्धान्त विज्ञान का चरम अनुसंधान है जिसका अनुभव आज वड़े २ वैज्ञानिकों को हो रहा है। पित्तोदय होने पर, जव क्षुधा खूव लगे तभी भोजन करो। आहार सेवन करते समय एकदम शान्त रहो, भोजन करते समय व्यर्थ हँसी मजाक तथा वार्त्तालाप करना ठीक नहीं, इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। भोजन के समय जैसी तुम्हारी मनोवृत्ति रहेगी, वैसा ही उस खाद्य द्रव्य से गुण उत्पन्न होगा। इस समय सदैव प्रसन्न रहना आवश्यक है। क्रोध एवं चिन्ता

रहने पर भी सात्विक आहार राजसी आहार का गुण शरीर में उत्पन्न करेगा। सात्विक आहार यदि बासी होगया हो, उसे त्याग दो।

आहार काल में प्रत्येक ग्रास को खूब चबा २ कर पेट में जाने दो। वैज्ञानिकों का कथन है कि भोजन करने में शीघ्रता करना अपना नाश करना है। प्रत्येक ग्रास को कम से कम बत्तीस बार कुचलने का अभ्यास करो। जो ग्रास इस प्रकार कुचल २ कर खाया जाता है, वही भली भाँति परिपक्व होता है। वही यथेष्ट हितकारी होता है, उसीसे शरीर की उन्नति होती है।

भोजन करते समय बार २ जल न पीओ, आवश्यकता-नुसार एकाध घूँट पी सकते हो परन्तु यह अप्राकृतिक है। भोजन के १ घंटा बाद जल पीना हितकारी होगा।

आहार कर चुकने पर पूर्ववत् हाथ-पैरों को अच्छी तरह धो लो। हाथ धोते समय दोनों हाथों की हथेलियों को घस कर आँखों में लगाना हितकारी होगा। भोजन एक बार ही करो, यदि आवश्यकता प्रतीत हो तो दो बार करो। प्रथम दिन में १०-११ बजे और द्वितीय रात्रि में ८-९ बजे तक भोजन के पूर्व तथा पश्चात् १ घण्टा तक परिश्रम से बचो। भोजन नियमित समय पर करो।

जल सम्बन्धी शास्त्रीय नियम

जल को विज्ञों ने जीवन के नाम से पुकारा है। वास्तविक में जल बड़े काम का पदार्थ है, वायु के पश्चात् पोषक वस्तुओं में जल का दूसरा स्थान है। जल निर्गन्ध तथा विमल होना चाहिये। जिस पर सूर्य का प्रतिबिंबित प्रकाश पड़ता हो जो ठंडा तथा बहता हुआ हो। नदी या गाँव के बाहर के कूप का हो उसका उपभोग करना चाहिये।

ताजे जल में प्राण-शक्ति रहती है। प्राण धारण के लिये मुझे शुद्ध ताजे जल की आवश्यकता हुआ करती है। आहार से जल का महत्व अधिक है। ऋषियों ने जल के द्वारा सहस्रों वर्ष तक इस शरीर को जीवित रखा है। स्वास्थ्य-रक्षा के लिये जल के शुद्धाशुद्ध का विशेष विचार रखना चाहिये।

(१) जल अत्यन्त स्वच्छ हो, कम से कम तीन सेर पानी नित्य पीओ। इतना ही तुम्हारे शरीर पोषण के लिये यथेष्ट होगा, अधिक जल पीना हानिकारक है, ऋतु काल के अनुसार जल की मात्रा आवश्यकतानुसार न्यूनाधिक करना पड़ता है।

(२) पानी साफ कपड़े से छान कर पीना चाहिये। जल में अनेक प्रकार के कृमि उत्पन्न होजाते हैं।

(३) संक्रामक रोगों से बचने के लिये, विशेषकर महामारियों के समय में पानी उबाल कर छान कर पीओ।

(४) जल धीरे धीरे पीओ गटा गटा लोटा भर मत चढ़ा जाओ।

(५) प्यास मत रोको और विना तृषा के शरीर के अन्तर्गत जल मत डालो। दोनों अवस्थाओं में हानि होने की आशंका है।

(६) तृषा तृप्ति के लिये बराबर जल का ही प्रयोग करो। कभी भूल कर भी अप्राकृतिक के वस्तुओं के द्वारा प्यास मत बुझाओ।

(७) भोजन के समय जल मत पीओ। भोजन के वाद १ घंटा पश्चात् जल पीआ करो। भोजन के १ घंटे बाद पानी पीने से अधिक लाभ है।

(८) खड़े २ चलते २ पानी मत पीओ।

(९) रात्रि में सोने के पूर्व थोड़ा जल पी लो।

(१०) प्रातःकाल सूर्य्योदय के पूर्व का जलपान अमृत का काम करता है।

दुग्धाहार

दुग्ध मानव-जीवन को पोषण करने वाला सर्वश्रेष्ठ पदार्थ है। यही संसार का अमृत है। मानव जीवन को धारण करने के सभी उपयोगी उपादान गोदुग्ध में विद्यमान हैं। संसार के जीव माता के गर्भ से एक दिन चैतन्यविशिष्ट जड़पिंडवत् भूमिष्ठ हुये थे, दुग्ध ही से उनका विकाश हुआ तथा वे बल-शक्तिसम्पन्न हो योद्धा और वीर कहलाये।

सब दुग्धों में गोदुग्ध उत्तम होता है गौओं में भी काली गाय का दूध सर्वोपरि माना गया है। धारोष्ण (तुरत का दुहा हुआ) दूध विशेष उपयोगी होता है वीर्य और बल बहुत शीघ्र बढ़ता है और मन भी प्रसन्न रहता है तथा शरीर को प्रापण भी भली भाँति होता है।

गोदुग्ध ब्रह्मचारियों के लिये उपयोगी खाद्य है। साधन काल में गोदुग्ध सेवन करना ऋषियों ने कहा है, स्वयं वनवासी महर्षिगण गौओं का पालन और उसके दुग्ध के द्वारा कालयापन करते थे।

दुग्ध बलपुष्टि मेदा (बुद्धि) वायुवर्द्धक, जराविनाशक तथा रक्तपित्त और त्रिदोषनाशक है, इसके सेवन से शीघ्र शरीर में स्फूर्त्ति आती है, बल और वीर्य की वृद्धि होती है, मन को शांति मिलती है, साहस का विकाश होता है, मानसिक शक्ति जागृत होती है, आलस्य सो जाता है, बुद्धि पवित्र बन जाती है,

हृदय पुष्ट हो जाता है, मानसिक वृत्तियाँ विमल हो जाती हैं एवं शरीर के समपूर्ण विकार शनैः २ दूर हो जाते हैं।

दूध ताज़ा ही पीना अच्छा है, देर करने पर पीने के उपयुक्त नहीं रहता दोषपूर्ण हो जाता है। ठंढा दूध उबाल कर पीना चाहिये, किंचित् उष्ण रहने से पीने पर लाभकारी होता है। सबसे बड़ा लाभ तो यह होता है कि ऐसा दूध कोष्ठ-शुद्धि में सहायक होता है। दूध धीरे २ पीना चाहिये नहीं तो पेट में जाकर नाना प्रकार के विकार उत्पन्न करता है। शीघ्रतापूर्वक पीने से पेट में जाकर जम जाता है, जिससे पाचन-क्रिया में कठिनता पड़ती है।

दुग्ध सेवन करने के पूर्व गौ के आहार पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है, जैसा उनका आहार-विहार तथा उनके रहन सहन होंगे वैसे ही उस दूध में गुणावगुण होंगे। रोगी को अशुद्ध पदार्थ खानेवाली गाय, भैंस या बकरी का दूध पीने से पशुवाले वे रोग हो जायँगे अतः दूधवाली गाय, भैंस या बकरी पूर्ण स्वस्थ होना चाहिये।

दूध के प्रेमियों को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि दूध शुद्ध हो, दूध जीवनदाता है परन्तु अशुद्ध दूध जीवन का नाश किये बिना नहीं रहता। बाजारू दूध पीने से भी मनुष्य रोगी बन जाता है, बाजारों में हलवाइयों के दूकानों पर रखे हुये

दूध धूल एवं अशुद्ध वायु के संसर्ग से दूषित हो जाते हैं उनमें दूषित वायु के कारण विषैले कीटाणु पड़ जाते हैं।

प्रायः देखा गया है कि उनमें अनेकों मक्खियाँ, बर्रे, चूटे जा जा कर मर जाते हैं। हलवाईदेव उन्हें निकाल २ कर फेंकते रहते हैं। दूध के प्रेमी वही दूध लेकर गटागट गले के नीचे उतारते हैं। कहो, कैसे इस दूध से मनुष्य आरोग्यसम्पन्न तथा दीर्घायु बन सकता है।

दूध से मक्खन और घी बनाया जाता है यह बड़े काम की चीज है। दोनों अत्यंत शुक्रवर्द्धक एवं दाह व पिपासा नाशक वस्तु हैं। केवल दुग्ध, नवनीत और घृत से ही मनुष्य हृष्ट पुष्ट बलवान एवं रोगरहित हो सकता है।

फलाहार

फलाहार को ऋषियों ने सर्वोत्कृष्ट आहार माना है, यही वास्तविक में प्राणशक्ति से परिपूर्ण प्राकृतिक आहार है। फलों में संसार के सभी खाद्य पदार्थों से विशेष प्राणपोषक जठराग्निवर्द्धक सत्व तथा मलशोधक परमाणु रहता है, यही कारण है कि फलाहारी सदा निरोग देखे जाते हैं। फलों से अत्यन्त लाभ होता है। ब्रह्मचारियों के लिये ये सञ्जीवनी शक्ति का काम देते हैं। फलों के निम्नांकित लाभों को पाठक देखें।

(१) अत्यन्त वर्द्धक होता है, वीर्य-रक्षा एवं पुष्टि के लिये सेवन करना चाहिये।

(२) फलाहार से बुद्धि अत्यन्त तीव्र होती है, स्मरण शक्ति की वृद्धि होती है।

(३) आयु की वृद्धि होती है, स्वास्थ्य ठीक रहता है।

(४) कांति बढती है, शक्ति की वृद्धि होती है, शरीर हृष्ट-पुष्ट होजाता है।

(५) जठराग्नि प्रबल रहती है, मन्दाग्नि नहीं होती, मलावरोध नहीं होता, शौच परिष्कृत होता है।

(६) बुद्धि निर्मल होती है, कामविकार दब जाते हैं, मन से बुरी वासनायें निकल जाती हैं, सुन्दर भावनायें उत्पन्न होती हैं, कामक्रोधादि विकार दूर हो जाते हैं, अशान्त चित्त शान्ति धारण करने लगता है।

(७) प्राकृतिक आहार है, प्रकृति ठीक रहती है, रोगों का नाश हो जाता है, भविष्य में रोगों के होने की आशा नहीं रहती।

ब्रह्मचर्य साधन काल में फलाहार ही सच्चा आहार है। हमारे पूर्वजों ने इसी आहार के बल से इस उग्रव तप को साधा था, इसी के द्वारा वे इतने तेजस्वी, ओजस्वी, बुद्धिमान, शान्त, तथा दैवी सामर्थ्य से सम्पन्न हुये, इन्हीं कन्दमूलों को खाकर

भारत का अतीत इतना उन्नतशील बना, महर्षियों ने फलाहार के द्वारा ही समस्त सिद्धियाँ प्राप्त की थीं। हलुआ, पूड़ी, मोहन-भोग उड़ाने वाले रसना के क्रीतदासों,, सोचो! उस अतीत के फलाहार के अपूर्व शक्ति को और विचारो अपने मोहन-भोग के नाशकारी कुकृत्य को।

अतः जिसे अपने पूर्वजों के चरित्रों को अपनाना है, जो धीर-वीर गंभीर एवं रणधीर बनना चाहता है, जिसके भीतर सुधरने का भाव है, जो सदाचारी,ब्रह्मचारी, सद्‌विचारी, सुबुद्धिधारी तथा प्रविचारी बनना चाहता है उसे चाहिये कि वह प्राकृतिक आहार करे।

अन्न एवं दुग्ध के साथ फलों का उपयोग करना चाहिये। ऐसी स्थिति में फल भोजन के उपरांत सेवन किये जायँ तो सर्वोत्तम हो। अन्नाहार करते हुये जीव के लिये भोजन के पूर्व फल विशेष लाभदायक नहीं होते। फलो में अंगूर, संतरा, पपीता, अमरूद, आम, नासपाती, सेव, वेल, शरीफा मीठा तथा खट्टा नीबू, किसमिस, बादाम, पिस्ता, अखरोट, काजू, गरी, मुनक्का, छुहारा और अंजीर उपयोगी हैं। ये अन्न से अधिक सुस्वादु तथा बलवर्द्धक हैं। हनुमान ने इसे ही खा-खाकर लंका को जला दिया, लक्ष्मण ने इन्हीं फलों को चौदह वर्ष अपना कर इन्द्रजीत को मारा था, शंकर ने इसे ही धारण कर कठिन तपश्चर्य्या की थी।

अतः फलों को अपनाओ, प्रकृति को सुधारो और पूर्वपुरुषों के उच्च आसन की लालसा मत करो, पहले मनुष्य बनो।

मांसाहार

मांसाहार को ऋषियों ने सबसे निकृष्ट, अधम तथा निशाचरी पैशाचिक आहार माना है। यह वास्तविक में अपने प्रेमियों को पिशाच बना देता है। मांसाहार मनुष्य का आहार नहीं यह जंगली, हिंसक, दुष्ट तथा निर्दय पशुओं और घोर तमोगुणी निशाचरों का खाद्य पदार्थ है। मांसाहारी कभी ब्रह्मचारी नहीं हो सकता।

आज संसार अंधा हो रहा है। पाँच घंटे में पचने वाला पोलाव खूब उड़ायेंगे, परन्तु ३॥ घंटे में पचने वाला सात्त्विक भोजन मलाई से घृणा करेंगें। वाह रे मनुष्य! खूब बना। बैल बन्दर तक जिसे नहीं छूते, घोड़ा भी जिस पर पिशाब नहीं करता, गाय और हिरन भी जिस पर नहीं थूकते, हाय! वह मनुष्य-जाति आज इन जंगली नीच पशुओं से भी अत्यन्त अधम तथा नीच होगई है कि गटागट मांस का लोंदा लील रही है।

मांस एवं मत्स्य वह तमोगुणी आहार है जो शरीर में हिंसक वृत्ति उत्पन्न कर देता है। मांसाहारी पुरुष कैसा होता है,

यह मुझसे मत पूछो। इसका पूर्ण विवरण तुम्हें किसी मांसाहारी व्याघ्र, चीता, शेर, तेन्दुआ इत्यादि मांसाहारी भयानक जानवरों से प्राप्त होगा। देखो, लोहे के प्रबल कोठरी में बन्दी होने पर भी वे कितने भयानक बोध होते हैं तुम्हें देखते ही उनकी दृष्टि कितनी चंचल हो उठती है। कैसे अपने रक्तवर्णधारी नेत्रों से तुम्हें घूरते तथा गरजते हैं। देह के अंग-प्रत्यंगों को मरोड़ते हुये किस भाँति वे गुर्राते है। देखा, मांसाहार का प्रत्यक्ष उद्दण्ड स्वरूप!

आओ इसके विपरीत अन्न फल, शाक तथा वनस्पति आहार का आदर्श दिखलावें। गाय से लेकर हाथी तक छोटे बड़े पशुओं को देखो, वे कितने शान्त और निर्विकारी होते हैं वे कितने कृतज्ञ तथा उपकारी होते हैं, उनमें कितनी सहनशीलता, प्रमभाव तथा साधुता रहती है। देखा, मांसाहार और शाकाहार का स्वरूप।

मांसाहारी कदापि ब्रह्मचारी नहीं हो सकता। ब्रह्मचर्य धारण करने के पूर्व इसे त्याग देना पड़ेगा।

सभ्याहार

यह पूर्व ही लिख आये हैं कि भोजन और शरीर का अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है। जैसा हम भोजन करेंगे हमारा शरीर वैसे ही बन जायगा। भोजन करते समय शांत भाव रखना चाहिये भोजन करते समय जैसा विचार उदय होगा वैसे ही हमारा स्वरूप भी बनेगा। यदि हम आहार काल में उच्च पवित्र शान्तिदायक ब्रह्मचर्य-विषयक विचार करने में मन को लगा दूँ तो निस्सन्देह वह आहार मुझे ब्रह्मचर्य के मार्ग पर चलने के लिये वाध्य करेगा।

महर्षियों का वचन है कि अत्यन्त शुद्ध पवित्र सात्विक विचार ही आत्मा का सुखकारी आहार है अतः सात्विक विचार उत्पन्न करने के लिये भोजन के समय अपने मस्तिष्क में ब्रह्मचर्यविषयक विचार ही भरें—अन्यथा हम इस व्रत में अधूरे रह जायेंगे।

मनुष्य भोजन करते समय जैसा विचार करता है ठीक वैसा ही हो जाता है, क्योंकि आहार रस के द्वारा वे विचार सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त हो जाते हैं इस प्रकार अन्तःकरण में प्रविष्ट हो मनुष्य के प्रवाह को अपनी ओर मोड़ लेते हैं यह अध्यात्मिक सिद्धान्त है। अतः आहार समय में पवित्र उच्च निर्भय शांत और ईश्वरीय विचार ही करना चाहिये।

भारतीयों! पथ्यापथ्य तुम्हारे सामन है। ईश्वरे ने ज्ञान

दिया है, बुद्धी दी है, सोचो समझो और जो पथ्य हो उसे ग्रहण करो। जो तुम्हारे विपरीत हो अर्थात् अपथ्य हो, जिससे तुम्हारा अनिष्ट हो उसे त्याग दो, तभी तुम उद्धार पाओगे और तुम्हारा मंगल होगा। अन्यथा तुम्हारा सुन्दर शरीर रोगागार में पड़ कर सड़ता रहेगा। चेतो अरे चेतो।

वाजीकरण तथा रसायन।

वाजी नाम वीर्य का है, यही शरीर का सार तथा जीवन का साधन है, जिससे वीर्य की वृद्धि और पुष्टि हो उसे वाजीकरण कहते हैं। जीवों! शरीर-रक्षा के लिये वीर्य धारण करो।

—महर्षि अग्निवेश

मनुष्यों का वीर्य वातादि दोषों से दूषित होकर दुर्गन्धित तथा क्षीण हो जाता है, उसके कृमि निर्बल पड़ जाते हैं, वास्तविक शक्ति का लोप हो जाता है, वीर्य के दूषित होने से ओज नष्ट हो जाता है, शरीर की कांति बिगड़ जाती है, इन्द्रियाँ तथा अंग-प्रत्यंग दुर्बल और निःशक्त प्रतीत होने लगते हैं। ऐसी स्थिति में कैसे सुधार हो।

*ऐसी स्थिति में सावधानी से काम लेना चाहिये। मुझे उन उपयोगों के शरण में जाना चाहिये, जिनके द्वारा प्रथम हमारे वीर्य की शुद्धि हो पश्चात् पुष्ट और परिपक्व वीर्य अधिक मात्रा में शरीर में बने। परन्तु इस बात का ध्यान रहे कि उपयोगी पदार्थ उष्ण न हो, अन्यथा हानि उठाना पड़ेगा।

उष्ण वाजीकरण पदार्थ प्रायः उत्तेजक हुआ करते हैं, ऐसे समय उत्तेजक पदार्थों का सेवन समूल नष्ट कर देता है।

वाजीकरण सेवन करने वाले व्यक्ति को मैथुन से सर्वदा बचना चाहिये। उसे वचन, मन और शरीर तीनों पर अधिकार रखना होगा। यदि ऐसा न करेगा तो उसके वीर्य की शुद्धि और वृद्धि नहीं हो सकेगी। विषाक्त वीर्य काम का धक्का खाकर पानी की तरह शरीर से बह जाता है। अत एव साधना काल में संयमशील होना नितान्त आवश्यक है।

महर्षियों ने वीर्यशोधक वस्तुओं में अष्टवर्ग, चतुर्बला और त्रिफला को मुख्य माना है। शिलाजीत आदि को भी वही स्थान मिला है परन्तु थोड़ा तेज है। इस लिये साधकों को जड़ी-बूटियों

---

*वीर्य नष्ट हो जाने पर युवक बहुधा नष्ट हो जाते हैं उनका मस्तिष्क ज्ञान-शून्य हो जाता है। वे कामेश्वरमोदक और कामाग्निसंदीपक अवलेह के खोज में घूमने लगते हैं। बहुतों को हमने मदनानंदमोदक खाखा कर अपने को नष्ट करते देखा है।

पर विशेष ध्यान देना चाहिये। वीर्यवर्द्धक औषधियों में शतावर, गोखरू, तालमखाना, विदारीकंद, मुशली, असगंध, शालिममिश्री, बिधारा आदि का उल्लेख है।

परिस्थिति के अनुसार, प्रकृति की आवश्यकता के अनुकूल औषधियों का प्रयोग करे।

सर्वदा प्राकृतिक नियमों का पालन करे। वीर्य-रक्षा पर विशेष ध्यान दे, क्योंकि वास्तव में सच्चा वाजीकरण ब्रह्मचर्य ही है। अहार सदा सूक्ष्म और सात्विक हो, जहाँ तक हो सके फलाहार की वृद्धि करे। आशा है कुछ दिन तक साधक सावधानी से यदि चलेगा तो उसे अवश्य आशातीत लाभ होगा।

रसायन।

जिससे जरा और व्याधि का नाश हो, शरीरस्थ जीव, अस्थि एवं अवयव पुष्ट और नवीन हों उसे रसायन कहते हैं।

महर्षि हंसराज

आयुर्वेद-शास्त्र में रसायन की बड़ी प्रतिष्ठा है। यह दीर्घायु, धैर्य्य, मेधा, आरोग्यता, तरुणावस्था, प्रभा, वर्ण की सुन्दरता, स्वर की सुन्दरता, शरीर और इन्द्रियों में बल की वृद्धि, वचन की सिद्धि और अत्यन्त बुद्धि को उत्पन्न करती है।

रसायन सेवन के पूर्व शरीर के द्वारा उन क्रियाओं को अवश्य करना चाहिये, जिनका वर्णन आगे हो चुका है। प्राकृतिक नियम ही सर्वोपरि हैं हमने देखा है कि औषधियाँ रोगों को नहीं हटातीं बल्कि हमारे शरीर के दोषों को प्रकृति ही दूर करती है। औषधियाँ प्रकृति को सहायता पहुँचाने की एक वस्तु है। अतः रसायन के पूर्व शरीर पूर्ण शुद्ध हो तथा साधक प्रकृति का सेवक हो।

शीतोदकं पयः क्षौद्रं घृतमेकैकशो द्विशः।
त्रिशः समस्तमथवा प्राक्पीतं स्थापयेद्वयः॥

शीतल जल, दूध, शहद और घी इन चारों में से एक किसी को अथवा दो को मिलाकर या तीन को मिलाकर किंवा चारों को एकत्र मिलाकर नित्य प्रातः काल पीना उत्तम रसायन है। इसके अतिरिक्त जीवन्ती, निर्गुंडी, ब्राह्मी, ब्रह्ममंडूकी, मधुयष्टि, अमृता, शङ्खपुष्पी, अपामार्ग, कात्यायणी, आंवला तथा कृष्ण भृङ्गराज और रुद्रवन्ती आदि बूटियों में भी रसायन का गुण है। नियमपूर्वक सेवन करने पर प्राणियों को विचित्र लाभ होता है।

आयुर्वेद–रसायन गुण से भरा है। इसके अधिकांश धातु उपधातु रसायन के लिये अत्युपयोगी हैं। परन्तु आज उनके निर्मायकों की कमी है।

एक नहीं, सैकड़ों दूकानदार अपरिपक्व रस तथा भस्म वेच रहे हैं, जिनसे जनता का कोई उपकार नहीं होता, वरन् अनेक व्याधियाँ उत्पन्न हो रही हैं। हम पूर्व ही कह आये हैं कि संसार केमिकल हो रहा है। एक टुकड़ा सोना क्या लोहा तक तुम्हारे पास नहीं। फिर यह व्यापार कैसा? संसार के आँख में धूल झोंकना, इसका अभिप्राय क्या? दीन भारत को व्याधिग्रस्त बनाना।

भारतियों! सावधान! रसायन के साधको! सावधान! ब्रह्मचर्य से रसायन प्राप्त करो। छोड़ो रसभस्मों को, तिलांजुलि दो औषधियों को। अरे! ब्रह्मचर्य से तुम्हारी औषधियाँ श्रेष्ठ हैं? कदापि नहीं। सच्चा रसायन तुम्हारा ब्रह्मचर्य है, वही तुम्हारी जीर्णता, वृद्धता तथा क्लीवता का नाश कर तुम्हें बलवान और दीर्घायु बनायेगा।

कायाकल्प

मृत्युव्याधिजरानाशी पीयूषं परमौषधम्।
ब्रह्मचर्यं महद्यत्नं सत्यमेव वदाम्यहम्॥

—भगवान धन्वन्तरि

मृत्यु, रोग तथा बुढ़ापा नाश करने वाला, अमृतरूप महा उपकारी यत्न ब्रह्मचर्य ही है, मैं सत्य कहता हूँ।

शरीर के पुनरुद्धार करने का नाम कायाकल्प है। जिसके द्वारा वृद्धत्व में तरुणत्व आजाय, अशक्तता में शक्ति का संचार हो जाय। जीर्णता में नवीनता का गुण उद्भव हो जाय, शरीरज्ञों ने उसे ही कायाकल्प के नाम से पुकारा है। जो वीर्य-रक्षा के द्वारा ही हो सकता है, सच्चा रसायन वीर्य के संग्रह में ही है। अतः वीर्य धारण करो।

३

प्राकृतिक प्रयोग

और

ब्रह्मचर्य साधन

प्राकृतिक प्रयोग ।

प्रकृति ही विश्व की रक्षिका है। यही प्रत्येक जीव को उत्पन्न करती है, इसका उद्देश्य जीवन के विनाश करने का नहीं है। इसीका प्रयोग सत्य एवं सुखदायी है, इसी के शान्ति-दायी शरण में पहुँचने पर ही हम अपने यथार्थ स्वरूप का बोध कर सकते हैं।

प्रकृति के द्वारा ही छोटे २ पौधों, वनस्पतियों, विशाल वृक्षों एवं लताओं की स्वाभाविक चेतना-शक्ति है, उसीके द्वारा वे हरे-भरे तथा प्रफुल्लित हैं। वही मछलियों एवं क्षुद्र जीवों की जाति की रक्षा के लिये उन्हें अधिकाधिक गणना में बच्चों तथा अण्डों को उत्पन्न करने की शक्ति प्रदान करती है। प्रकृति ही माता-पिता के हृदय में अपने बच्चों के लिये प्रेम तथा स्वार्थ-त्याग का भाव जागृत करती है। वही प्रत्येक व्यक्ति के अन्तर्गत स्वयं रक्षार्थ उत्तेजना शक्ति-भरती है। कष्ट काल में प्राकृतिक मार्ग हृदय में प्रकट करती है, भयानक अवस्था में विपत्तियों के चक्र में पड़ जाने पर प्रकृति ही सदैव आत्मबल प्रदान करती है।

प्रकृति द्वारा शरीर की बनावट, रुधिर परिक्रमण तथा पाचन एवं प्रबन्धादि क्रिया की वृद्धि होती है। वही उन जीवों में जो औषधोपचार नहीं कर सकते, क्षत-विक्षत स्थान

तथा व्रणादि शुद्ध करने एवं घावों के भरने की प्राकृतिक शक्ति प्रदान करती है। प्रत्येक जीव का जीवन से प्रेम भाव प्रगट करना उसीका काम है। मृत्यु से भय, तथा जीवन-रक्षा के मार्गों को वही दिखाती है।

मनुष्य प्रकृति का एक अंश है। इसी के द्वारा प्रकट हुआ है और इसीमें लीन भी हो जायगा। इसीसे जहाँ तक उसकी बुद्धि काम करे, इस देवी के नियमों का पालन करे। सदैव इस बात का ध्यान रहे कि मनुष्य की प्रकृति प्रकृति की प्रवृत्ति के अनुकूल हो ऐसा करने से वह प्रकृति के जीवन का भागी होगा। प्रेम तथा दयापात्र होगा। कर्म साक्षी की भाँति नहीं। ध्यान मात्र ही नहीं, बल्कि वास्तव में कर्म करने में।

इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य इस अनन्त प्रकृति का एक कण मात्र है। परन्तु यह कण चैतन्य है, इसमें बुद्धि और इच्छा-शक्ति का निवास है। इसमें ज्ञान का आभास है, आत्मा का प्रकाश है इसका प्रभाव सूक्ष्म होने पर भी अस्तित्व रखता है।

मानव-जीवन की सच्ची सार्थकता उसके पुनीत कार्य्यों के गौरव में जानी जा सकती है। जीवन सार्थक तभी होगा जब मनुष्य सत्कर्मों की ओर चढेगा। चैतन्य-शक्ति-सम्पन्न

जीव के लिये प्राकृतिक कर्म ही उपादेय हैं। मनुष्य अपने को भूला हुआ है, नहीं तो उसे अपने को अनन्त, अक्षय, अविचल, अनादि से अभिन्न समझना चाहिये। उसे अपने जीवन का एकमात्र उद्देश्य रखना चाहिये कि अपनी सारी शक्तियों को प्रकृति की ओर प्रकृत करे।

प्रकृति का क्या विचार है? वह क्या चाहती है? मुझे ज्ञान है, और हम बार २ कहेंगे कि प्रकृति सब से बढ़कर उत्साही सब से बढ़कर चैतन्य और धर्म-नीति-युक्त जीवन चाहती है। वह चाहती है सम्पूर्ण विश्व के जीवन का फैलाव। परस्पर विरोधहीन विकाश। वह शारीरिक, मानसिक, आत्मिक बलयुक्त सौन्दर्य्यसहित ऐसे जीवन को चाहती है जिसकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहे, जिसका बल बढ़ता जाय, जो परिपूर्णता के शिखर पर पहुँचे। वह क्षण २ में यही चाहती है जो हमारे लिये सम्भव हो। इससे सिद्ध हुआ कि प्रकृति जीवन की उन्नति चाहती है। उसकी इच्छा है कि हमलोग मिलकर काम करें, समझें, सहानुभूति करें। वह चाहती है कि तुम्हारा हृदय इतना बड़ा हो जाय कि उसमें सारा विश्व समा जाय।

हमलोगों को प्रकृति की आज्ञा माननी चाहिये। बुद्धि के प्रयोग द्वारा नहीं, अन्तरात्मा के पुनीत प्रेम से। प्रकृतिरूपी

विश्व को प्रेमपूर्वक प्यार करो। विश्वबंधुत्व एवं सखावत् सम्पूर्ण संसार को समझो। जो कुछ प्रकृति का उद्देश्य है, अपना भी वही बनाओ। जिधर वह चले, उधर ही तुम भी चलो। उसके उस समुदाय के सहायक बनो जिससे उचित से अपने जीवन का निर्वाह हो।

प्रकृति-नियमानुसार जो कार्य्य होता है वही पूर्णांश में पूर्ण होते देखा गया है। इस हेतु स्वास्थ्य और शारीरिक बल ठीक रखने के लिये, प्राकृतिक नियमों का पालन करना अनिवार्य है। महर्षियों का वचन है कि प्रकृति के द्वारा जीवन को उत्तम बनाना चाहिये। यह शक्ति का अटूट भाण्डार है, देश और काल के अनन्त रूपों में इसका प्रादुर्भाव होता है। प्राकृतिक प्रयोग ही मनुजत्व का कारण है। इसीके प्रभाव से ब्रह्मचर्य की सिद्धि मिल सकती है संसार विपर्यय भूतों एवं इन्द्रियों को इसी के द्वारा इष्ट पथ पर लाकर धीर, वीर एवं गम्भीर बन सकता है।

दैनिक कार्य्य-

दिनचर्य्यां निशाचर्य्यामृतुचर्य्यां यथोदिताम् ।
आचरन् पुरुषः स्वस्थः सदा तिष्ठति नान्यथा ॥

भावप्रकाश—

जो मनुष्य शास्त्रानुकूल दिनचर्य्या, रात्रिचर्य्या और ऋतु-चर्य्या को करते हैं वे लोग सर्वदा आरोग्य रहते हैं। विना त्रिचर्य्या के साधन के किये कोई भी स्वस्थ नहीं रह सकता।

ब्रह्मचर्य के साधन के लिये स्वास्थ्यवर्द्धक नियमों का पालन करना अनिवार्य्य है। पूर्वकाल में इसीके साधन से वटुकों का समुदाय ब्रह्मचर्य के मार्ग पर चलता था। ऋषि, मुनि एवं ब्रह्मर्षियों का संघ इसीको धारण कर, इसीके नियमों का अनुकरण कर अपने अभीष्ट की सिद्धि करता था।

प्रत्येक व्यक्ति जो आरोग्यता की इच्छा रखता है उसे उचित है कि जहाँ तक हो सके, बहुत तड़के बिछावन से उठे। सवेरे उठने से शरीर में स्फूर्त्ति तथा चित्त की प्रसन्नता वनी रहती है। कहा है—*Early to bed and early to rise makes men healthy wealthy and wise.* अर्थात् सवेरे सोना और सवेरे जागना मनुष्य को आरोग्य, धनवान् और बुद्धिमान् बनाता है। जो लोग आलस्य के कारण सूर्य्योदय तक बिछावन पर पड़े रहते हैं वे केवल आलसी, मतिमन्द, मनमलीन

तथा स्फूर्तिहीन ही नहीं होते बल्कि आरोग्यहीन हो जाते हैं। अतः प्रत्येक पुरुष को चाहिये कि प्रातःकाल उठकर त्रिचर्य्या के साधन में लग जाय।

१–दिनचर्य्या

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत स्वस्थो रक्षार्थमायुषः।
तत्र दुःखस्य शान्त्यर्थं स्मरेद्धि मधुसूदनम्॥

आयु की रक्षा के लिये प्राणी ब्राह्म मुहूर्त्त में उठे और दुःखशान्ति के लिये ईश्वर का स्मरण करे। पश्चात् मुख हाथ धोकर उषःपान करे। ऋषियों ने इसकी बड़ी प्रशंसा की है। कुछ लोग सूर्य्योदय के समय वासी जल पीते हैं यह ठीक नहीं। उषःपान तो सूर्योदय के २ घंटा पूर्व करना चाहिये। शास्त्रों में कहा है कि जो मनुष्य ८ अंजुलि वासी पानी पीने का नियम करता है, वह मनुष्य रोगी और वृद्ध हुये विना सौ वर्ष तक जीता है। प्रभात काल बासी पानी पीने का अभ्यास करने से ज्वर, पेट का रोग, संग्रहणी, शोथ, अर्श, कुष्ठ, मेदविकार, मूत्राघात, रक्तपित्त, कर्णरोग, कण्ठरोग, शिरोरोग, वृद्धता, निर्बलता तथा वात, पित्त और कफ दोष से प्रकट भयानक से भयानक रोग नष्ट हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य की वृद्धि के लिये ऋषियों ने प्रभात काल में ही एक और उपयोगी विधि का वर्णन किया है। जिसे धारण करने पर मनुष्य निःसन्देह वीर्यवान् हो सकता है। अनायास अपनी जीर्णता को दूर कर स्वस्थ और सुखी बन सकता है।

विगतघननिशीथे प्रातरुत्थाय नित्यं
पिबति खलु नरो यो घ्राणरन्ध्रेण वारि।
स भवति मतिपूर्णश्चक्षुषा तार्क्ष्यतुल्यो
वलिपलितविहीनः सर्वरोगैर्विमुक्तः ॥

रात्रि का अंधकार दूर हो जाने पर जो मनुष्य प्रभात काल उठ कर नित्य नासिका के द्वारा जल पीता है। वह पूर्ण बुद्धिशाली हो जाता है। उसके नेत्रों की ज्योति गरुड़ के समान हो जाती है तथा वलीपलित से रहित होकर सब रोगों से छूट जाता है।

इसके पश्चात् मलमूत्र का त्याग करना चाहिये। प्रातःकाल शौच से निवृत्त होना आयुवर्द्धक है, पेट की गुड़गुड़ाहट, अफरा और भारीपन दूर होता है। मल के वेग को रोकना हानिकारक है। जो मनुष्य मल के वेग को रोकते हैं, उनके शरीर का अपानवायु दूषित हो जाता है। वायु, मूत्र और मल रोकने से पेट फूलने लगता है, अधोवायु के रोकने से उदरसम्बन्धी समस्त रोग

उत्पन्न हो जाते हैं, उदर, मूत्राशय तथा मूत्रेन्द्रिय में शूल उत्पन्न हो जाता है। अधिक विकार बढ़ने पर मूत्रकृच्छ्र, शिरोशूल तथा बद्धकोष्ठादि दुःखदायी रोग प्रकट हो जाते हैं।

मनुष्य को कोष्ठ-शुद्धि पर विशेष ध्यान देना चाहिये। मल के संचय होने से ही नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। मल की शुद्धि होते रहने पर कोई रोग निकट नहीं आते। विशुद्ध कोष्ठ रहने पर सब रोग नष्ट हो जाते हैं, प्रकृति अनुकूल रहती है, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि सदैव शान्त और प्रसन्न रहा करती हैं। शरीर हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ट रहता है।

शौच से निवृत्त होकर मल के मार्गों की भली भाँति शुद्धि करे, पश्चात् हाथ पैरों को जल और मृतिका के द्वारा शुद्ध कर दन्तधावन करे। जीभ को साफ करे, कफ, दन्त तथा जीभ के विकारों को निकाल दे, मुख एवं दन्त को नित्य विशोधन करना स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है।

मुख-शुद्धि हो जाने के पश्चात् साधक को स्नान करना चाहिये। प्रभात काल का स्नान अग्निवर्द्धक, शक्ति, आयु और ओज बढ़ाने वाला तथा मैल, खुजली, परिश्रम, पसीना, आलस्य, तृषा, दाह तथा पापों को दूर करने वाला है।

दक्ष ने कहा है—शरीर नव छिद्र वाला अत्यन्त मल-युक्त है, रात दिन रस आदि धातुओं का मल इससे निकलता

रहता है उसके शुद्धि के लिये स्नान का करना आवश्यक है।

स्नान करते समय मोटे खुरदरे कपड़े से त्वचाओं को रगड़ रगड़ कर साफ करना चाहिये। इससे बड़ा लाभ होता है। स्नान सूर्य्योदय के पूर्व करना ठीक है।

स्नान के पश्चात् वायुसेवन करना चाहिये। इसके लिये ग्राम से बाहर जाकर टहले जहाँ शुद्ध वायु बहती हो। इसके विषय में अन्यत्र प्रकाश डाला गया है। स्नान के पश्चात् व्यायाम करना अत्युपयोगी है। आसन और प्राणायाम करना ब्रह्मचर्य साधन के लिये महत्त्वपूर्ण है।

इस भाँति सूर्य्योदय होते २ सब कर्मों से निवृत्त हो अपने दैनिक कार्य्य में लग जाय। पित्त उदय होने पर अर्थात् भली भाँति क्षुधा लगने पर १० से ११ बजे तक नियमपूर्वक सात्विक भोजन करे। आहार का विवेचन अन्यत्र दिया गया है। भोजन के पश्चात् वाम करवट लेटे तथा थोड़ा सा टहले। एक या दो घंटा विश्राम लेकर पुनः अपने कार्य्य में लग जाय।

२–रात्रिचर्य्या

सायंकाल में शौचादि से निवृत्त हो व्यायाम करे। इतना परिश्रम अवश्य कर ले जिससे शक्ति के अनुसार शरीर पर थकान उत्पन्न हो जाय। थकान उत्पन्न होने पर ही रात्रि में गाढ़ी नींद आयगी। गाढ़ी नींद आने पर ही शरीरस्थ दीपन–पाचन तथा प्रबन्धादि शक्तियाँ बलवती होती हैं। पाचन तथा प्रबन्ध-शक्ति के बलिष्ठ होनें पर ही तुम ब्रह्मचर्य क्षेत्र में आगे बढ़ने के योग्य हो सकोगे। अतः शरीर-रक्षा के लिये सायंकाल में शक्ति के अनुसार यथेष्ट परिश्रम के द्वारा थकान उत्पन्न कर लें। यदि हो सके तो प्रातःकाल के अनुसार नियमानुसार आसन तथा प्राणायाम का प्रयोग करे।

इस भाँति क्रिया, सत्संगादि में समय व्यतीत कर ८ से ९ बजे तक भोजन कर ले पश्चात् थोड़ा वायु सेवन करके बायें करवट सो जाय। सोते समय शुद्ध और पवित्र मन रखना चाहिये।

सोते समय ईश्वर की आराधना करना, उसका ध्यान तथा चिन्तन करना योग्य है। इस भाँति शान्तिमय निद्रादेवी के गोद में विश्राम कर, ब्राह्म मुहूर्त्त में उठकर पुनः दिनचर्य्या में संलग्न हो जाय।

भ्रमण ।

शरीराणां श्रमाणां च भ्रमणं श्रेष्ठमुच्यते ।
सायं प्रगे च कर्त्तव्यं तन्नित्यं स्वास्थ्यमिच्छता ॥

—आयुर्वेद

जितने प्रकार के शारीरिक परिश्रम हैं, उन सबों में भ्रमण करना श्रेष्ठ है। आरोग्यार्थी पुरुष को चाहिये कि सायं प्रातः भ्रमण किया करे।

शरीर को आरोग्य रखने के लिये, भ्रमण एक सुगम साधन है। ग्रहणीसम्बन्धी रोगों के लिये यह रामबाण है। सुबह शाम का वायुसेवन स्वास्थ्यवर्द्धक तथा शान्तिदायक है। इससे शरीर के दूषित वायु का परिवर्तन होता है, शरीर में विशेष रूप से आक्सीजन प्रवेश कर पोषण क्रम में सहायता देता है। फेफड़ा, मस्तिष्क, नस एवं नाड़ियों की शुद्धि होती है। तात्पर्य्य यह है कि वायुसेवन, शरीर-शुद्धि का प्रमुख ध्येय है।

शुचौ विविक्ते सुभगे सुप्रशस्ते सुखानिले ।
स्थाने संवृतगात्रेण कुर्य्याद् भ्रमणमन्वहम् ॥

जो स्थान सुन्दर परिष्कृत तथा पवित्र हो, जहाँ शुद्ध वायु बहती हो, ऐसे स्थान में शरीर को ढँक कर नित्य भ्रमण करना चाहिये।

भ्रमण करते समय मुख सर्वदा बन्द रहे, बराबर नासिका से स्वांस लें। मुख द्वारा स्वांस लेना हानिकारक है। भ्रमण करते समय इस प्रकार चलें जिससे शरीर के प्रत्येक अवयवों पर कुछ-न-कुछ बल अवश्य पड़े। झुक कर अथवा हिलते हुये चलना स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है। सदैव सीधा, प्रशस्त, गर्दन तथा पीठ के रीढ़ को एक सीध में रखते हुये, मार्ग में सीधे देखते हुये आगे बढ़ना चाहिये।

भ्रमण काल में मन को किसी धार्मिक कार्य तथा किसी शुभ विषय में लगा देना चाहिये। बहुत लोग घूमने तो जाते हैं, परन्तु मन में बुरी २ बातों का चिन्तन करते रहते हैं, जिससे उनके हृदय में अशान्ति उत्पन्न हो जाती है और वे उसके वास्तविक लाभ से सदैव वंचित रह जाते हैं।

यत्तु चंक्रमणं नातिदेहपीडाकरम्भवेत्।
तदायुर्बलमेधाग्निप्रदमिन्द्रियबोधनम्॥

अपनी शक्ति के अनुसार भ्रमण करना योग्य है, शक्ति से अधिक परिश्रम पीड़ा देने वाला है. शक्ति के अनुकूल भ्रमण करने से आयु, बल, बुद्धि और जठराग्नि शक्ति की वृद्धि होती है। इन्द्रियाँ प्रसन्न रहती हैं।

वाचकों! भ्रमण को अपनाओ! ७ बजे तक कोढ़ियों, अपाहिजों की तरह खाट पर मत पड़े रहो। अपने अमूल्य

स्वास्थ्य को मत खोओ। देखो, सूर्य्योदय के पूर्व ही पशु-पक्षी, कीट-पतङ्ग सभी घूमने के लिये निकल जाते हैं। तुम मनुष्य होकर क्या कर रहे हो, इससे तो सिद्ध होता है कि वे कीट-पतङ्ग ही तुझसे श्रेष्ठ हैं जो प्रकृति की मर्य्यादा के अनुसार कार्य्य करते हैं उसकी आज्ञा मानते हैं।

भ्रमण मलोष्ण, बद्धकोष्ठ अर्थात् पुराने कब्ज की प्रसिद्ध महौषधि है। मैं विश्वासपूर्वक यह कह रहा हूँ कि संसार में इसके समान कोई दूसरी औषधि नहीं। एक दो वर्ष का नहीं वीसों वर्ष का भयंकर कब्ज जिसे औषधियाँ नहीं हरा सकतीं उसे भ्रमण मिटा सकता है हम एक दो नहीं सैंकड़ों हजारों रोगियों की परीक्षा ले चुके हैं। मुझे मालूम है कि जठराग्नि एवं पेटसम्बन्धी तथा पाचन क्रियाविषयक समस्त विकार केवल भ्रमण से ही हटाये जा सकते हैं।

पारेगेटिम पिलस खाकर शुद्ध शौच की आशा रखनेवाले अज्ञानियों। क्यों नहीं इस प्राकृतिक प्रयोग को अपनाते हो। इसके सामने तुम्हारी गोलियाँ व्यर्थ हो जायँगी। निःसन्देह तुम्हारा कायापलट हो जायगा, तुम्हारी यह मर्कटसी सूरत नहीं रह जायगी।

सवेरे खुले पाँव घुमा करो।

ब्रह्मचर्य धारण के लिये पदत्राण की आवश्यकता नहीं, वर्तमान ढंग के विदेशी भूतों ने तो और भी सत्यानाश कर दिया है। बची-बचाई ब्रह्मचर्य की शक्ति को भी अज्ञानी भारतीयों ने बूटों में पैर ठूँस-ठूँस कर नष्ट कर दिया। 'फैशन के गुलाम' जो रात दिन बूटों पर चल रहे हैं वे कदापि वीर्यदोष से अछूते नहीं रह सकते। स्वप्नदोषादि भयंकर व्याधियाँ उन्हें नहीं छोड़ सकतीं।

पैरों को स्वतंत्र रखना चाहिये, चलते समय उनका दबा रहना हानिकारक है। तुम्हारे लिये खुले घूमना हितकारी होगा।

वीर्य रक्षा के लिये खड़ाऊँ पर चलना भी कम लाभकारी नहीं है, इसका धीरे २ अभ्यास करना चाहिये। इसके द्वारा सब से पहला लाभ तो यह है कि अँगूठे के नसों के दबते रहने से अण्ड रोग नहीं होने पाता, यदि किसी को यह कष्ट है भी तो वह शीघ्र मिट जाता है।

दूसरा लाभ नेत्रों पर पहुँचता है, इसके निरन्तर अभ्यास से नेत्ररोग नहीं होने पाते। ग्रहणी से सम्बन्ध रखने वाली केशिकायें एवं धमनियाँ सदैव शुद्ध और पवित्र बनी रहती हैं।

खड़ाऊँ के द्वारा पञ्जे पर बल पड़ता है। सम्पूर्ण शरीर का

भार पड़ने के कारण रक्तवाहिनी शिराओं में खिंचाव पड़ता है जिससे रक्त-परिक्रमण शक्तिशाली हो जाता है। तीव्र रक्त-परिक्रमण से सम्पूर्ण शरीर के रक्तदोष नष्ट हो जाते हैं और इनके पश्चात् बनने वाले शरीरस्थ धातु भी परिमित रूप में विशुद्ध प्रस्तुत होने लगते हैं जिसके द्वारा भयंकर स्वप्नदोषादि व्याधियाँ मिट जाती हैं।

खड़ाऊँ धारण करने के लिये प्राचीन ढंग के बने हुये जिनमें खूँटी लगी रहती है विशेष उपयोगी हैं। वर्तमान काल में जिसे लोग व्यवहार में ला रहे हैं जिसमें मोटे कपड़े तथा रबर का फीता लगा रहता है उतना उपयोगी नहीं है। अतः खूँटी वाले खड़ाऊँ का ही व्यवहार करना ब्रह्मचारियों के लिये आवश्यक है। भ्रमण के समय खड़ाऊँ पर चलना लाभकारी है।

व्यायाम।

कसरत करने से सम्पूर्ण शरीर की त्वचा कस जाती है, शरीर सुन्दर और सुडौल हो जाता है, कांति बढ़ती है, अग्नि तेज होती हैं, स्फूर्ति बढ़ती तथा कामचेष्टा घटती है इससे मनुष्य सदैव आरोग्य रहता है।

शरीर की आरोग्यता के लिये जिस प्रकार भोजन और

जल की आवश्यकता है उसी प्रकार जीवन के लिये व्यायाम भी उपयोगी है। व्यायाम न करने पर शरीर आलसी हो जाता है। इसमें अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं, इन्द्रियाँ क्षीण और दुर्बल हो जाती हैं—प्रमेहादि धातु-दोष उदय हो जाते हैं जिससे मनुष्य का जीवन भाररूप हो जाता है।

ब्रह्मचर्य प्रेमियों को इसे न भूलना चाहिये। यही कुरूपों को रूप, बलहीनों को बल तथा बुद्धिहीनों को बुद्धि देता है। कैसा हूँ दुर्बल मनुष्य क्यों न हो इसके शरण में जाने पर स्वयं हृष्ट पुष्ट एवं बलिष्ठ हो जाता है। वीर्य-रक्षा के लिये यह अत्यन्त उपयोगी साधन है। वीर्य-रक्षा के इच्छुकों को इसे न छोड़ना चाहिये।

प्राचीन समय में इसका कैसा प्रचार था, गाँव गाँव में व्यायामशालायें खुली थीं, बाल-वृद्ध सभी प्रसन्नतापूर्वक इसका अभ्यास करते थे, आज उन्हीं की संतान इसे घृणा की दृष्टि से देख रही है। कुछ लोग जो इसके महत्व को जानते हैं उनमें आलस्य और निर्बलता इतनी कूट २ कर भरी है कि वे अपना हाथ पैर भी नहीं हिला डुला सकते।

शरीर बेढंगा होता जा रहा है, मन स्थिर नहीं है, रात दिन काम की कुत्सित भावनायें उदय हो रही हैं। आलस्य घर बना लिये है, भूख नहीं लगती, भोजन पचता भी नहीं, दिन रात

कब्ज रहता है, बराबर जुकाम घेरे रहता है, नींद नहीं आती, दुःस्वप्न देखा करते हैं। चेहरा कुरूप होगया है, शरीर की कान्ति बिदा होगई, वीर्यदोष पिंड नहीं छोड़ता, क्यों ? आलसी और प्रमादी बननेके कारण, परिश्रमसे मुख मोड़ने के कारण, व्यायाम को छोड़ने के कारण।

तत्त्वोंके यथावत् परिचालन के लिये शरीर से परिश्रम लेना अनिवार्य्य है, वर्त्तमान लक्ष को हटाओ, विलासिता ने तो तुम्हारा नाश कर दिया, अब और अधिक आलस्यप्रिय न बनो, कम से कम इतना व्यायाम अवश्य किया करो जिससे शरीर पर थकान आ जाय और रात में गाढ़ी नींद आवे, एक गाढ़ी नींद के आने से ही तुम्हारी सारी क्रियायें सुधर जायँगी। शरीर के पाचन और प्रबन्ध-शक्ति की वृद्धि होगी, जिससे तुम निसन्देह स्वास्थ्य-लाभ करोगे।

नित्य सायं-प्रातः परिश्रम करो, चाहे वह किसी प्रकार का व्यायाम हो, पर हो नियमानुसार उचित ढंग से तथा उचित मात्रा में। एकाएक अधिक व्यायाम करना भी अच्छा नहीं; बड़े २ रोगों के उत्पन्न होने का डर रहता है। सदैव अपने बल के अनुसार व्यायाम करने में लाभ होता है। जो लोग लोभवश अधिक मिहनत कर बैठते हैं उन्हें अन्त में पछाताना ही पड़ता है।

अतः व्यायाम का अभ्यास धीरे २ बढ़ाओ, व्यायाम में

जो तुम्हें पसन्द हो-दौड़ना, तैरना, दण्ड-बैठक, कुश्ती लड़ना, जोड़ी फेरना, डम्बल, हर प्रकार के जमनास्टिक एवं अन्य प्राकृतिक व्यायाम जिनके द्वारा शरीर पर बल पहुँचता हो, उसे सावधानीपूर्वक शनैः२ करो जिससे प्रत्येक अंगों पर जोर पहुँचे। व्यायाम करते समय मुख से श्वाँस मत लो, सदैव नासिका के द्वारा श्वासोच्छ्वास की क्रिया करो। वायु को रोको, वायु को वशीभूत करो तभी तुम सफल होओगे।

व्यायाम करते समय लंगोट अवश्य पहिरना चाहिये यदि इसे सदैव धारण किया जाय तो और अच्छा है इससे नस, आँत एवं शिश्नसम्बन्धी अनेकों लाभ होते हैं। सबसे विशेषता तो यह है कि कामोद्वेग होने पर शिश्न उत्तेजित नहीं होने पाता, कामाश्रय से शिश्नोदय होना ही विनाश का कारण है, अतः वीर्य-रक्षा के प्रेमियों को चाहिये कि सदैव लंगोट लगाये रहें।

लंगोट बाँधने से कमर की नसें दबी रहती हैं इससे आँत के रोग नहीं उदय होने पाते। यदि आँतसम्बन्धी व्याधि हो गई हो उसे भी यह लंगोट रोक देगा। अण्डवृद्धि आदि व्याधियाँ इसके सेवन से नहीं टिक सकतीं, इसके प्रयोग से कमर में बल भरता है, साहस तथा शक्ति का संचार होता है, हृदय में उत्साह तथा वीरत्व भावों का स्फुरण होता है, अतः

इसे धारण करना लाभदायक ही नहीं, वरन् अनिवार्य्य है।

ऋषियों ने कहा है कि लंगोट ब्रह्मचर्य का द्योतक है, इससे स्फूर्ति बढ़ती है, शरीर सुगठित रहता है, यौगिक क्रियायों के करने में सुगमता होती है तथा स्वप्नदोषादि धातुरोग नष्ट हो जाते हैं। कामविकार से शरीर पीड़ित नहीं होता तथा साधक अपने उपस्थेन्द्रिय पर विजय पाता है—इसे प्रत्येक ब्रह्मचारी को धारण करना चाहिये।

प्रत्येक अवस्था में जब व्यायाम कर रहे हो तब तुम पूरक, कुम्भक और रेचक से काम लो। व्यायाम के साथ प्राणायाम का संयोग स्वर्ण में सुगन्धि का काम करता है। व्यायाम की क्रिया के पूर्व श्वाँस ले लो, करते समय रोको और पश्चात् धीरे-धीरे छोड़ दो। इससे तुम्हें विशेष लाभ होगा।

व्यायाम के समय मौन की परिपाटी अच्छी है। सदैव अपने मन को स्थिर रखना चाहिये, मन के स्थिर रखने से कामविकार शमन हो जायगा। हृदय और मस्तिष्क में बुरी भावनायें मत उठने दो, उन्हें धीरे २ हटाकर शुद्ध एवं पवित्र बनाओ।

व्यायामप्रेमियों को जो इसके द्वारा वीर्य की शुद्धि करना चाहते हैं, उन्हें चाहिये कि अपने आहार को सदैव सतोगुणी बनावें। रहन-सहन, आचार-विचार आदि सभी

उपयोगी विषयों को सतोगुण के रूप में परिवर्त्तित कर अभ्यास करें। कोई कठिन नहीं, शनैः शनैः सभी सरल हो जायगा। अभ्यास ही प्रधान वस्तु है, इसीके द्वारा तुम संसार के दुस्तर क्षेत्र में विजय प्राप्त कर सकते हो। व्यायाम से तुम अपने बल को बढ़ा सकते हो। अभी भी तुम्हारे सामने एक नहीं अनेको उदाहरण विद्यमान हैं।

वायु

वायु ही जीवन का प्राण है, मनुष्य भोजन के बिना महीनों तथा जल के बिना कुछ दिनों तक जीवित रह सकता है किन्तु वायु के बिना कुछ मिनट भी नहीं ठहर सकता। हर समय मुझे वायु का सहारा लेना पड़ता है, प्रत्येक व्यक्ति को प्राणपोषण के लिये कम से कम प्रति मिनट लगभग १५ से २० बार तक स्वाँस लेने की आवश्यकता पड़ती है। श्वांसों के द्वारा शुद्ध वायु शरीर में प्रवेश करती तथा शरीरस्थ अशुद्ध अर्थात् दूषित वायु बाहर आ जाया करती है।

जीवन-रक्षा के लिये शुद्ध वायु की आवश्यकता है समस्त भूतों की आयु विशिष्ट विशुद्ध प्राण वायु ही है। मानव-शरीर वायु की प्रेरणा से ही चल रहा है, जिस प्रकार बाह्य जगत् वायु से ओत-प्रोत है तद्वत् अन्तर जगत् भी वायुसम्पन्न है।

संसार का मार्मिक दृश्य सूचित करता है तथा अनुसंधान द्वारा सांसारिक प्राणियों को अनुभव प्राप्त होता है कि मनुष्य ही नहीं बल्कि समस्त चराचर भूतों का वास्तविक आधार वायु ही है। इसीसे ऋषियों ने इसे जगत्प्राण के नाम से पुकारा है।

वायु पृथ्वी-मंडल से दो सौ मील उपर तक फैली है परन्तु दो मील के उपर धीरे २ पतली होती गई है, यहाँ तक कि मनुष्य साँस नहीं ले सकते। नीचे के वायु में दो पदार्थों का संयोग है। ७९ प्रतिशत नाइट्रोजन तथा २१ प्रतिशत आक्सिजन। इसके अतिरिक्त धूल, कण, धूम्र तथा अनेक प्रकार की दुर्गन्धि एवं सुगन्धि। शुद्ध वायु के सेवन करने में उसे स्वासोच्छ्वास के द्वारा शरीर में प्रविष्ट करने पर किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता, दूषित वायु के श्वांस लेने में कष्ट होता है।

आक्सिजन वायु स्वास्थ्य के लिये उपयोगी है। श्वांस से फेंकी हुई वायु अशुद्ध होती है, उसके द्वारा कारबन डाई आक्साइड नामक भयानक गैस की उत्पत्ति होती है, यह भयंकर वस्तु जीवन के लिये बड़ी हानिकारक है। इस गैस में दीपक नहीं ठहर सकती वैसे ही इसमें जीवन-ज्योति नहीं टिक सकती है। आक्सिजन से जीवन-ज्योति की वृद्धि होती है आक्सिजन में जलते हुये दीपक ले जाने से उसका प्रकाश और बढ़ जाता है।

अतः यह सिद्ध है कि शरीर की वृद्धि एवं शुद्धि के लिये आक्सिजन वायु का सेवन किया जाय।

अन्तर शरीर के संचालन के लिये आक्सिजन कितना उपयोगी पदार्थ है, जब वायु स्वाँस के द्वारा शरीर में प्रविष्ट करती है। उस समय रक्त आक्सिजन को खींच लेता है और कार्बन डाई आक्साइड जो शरीर में एकत्र रहता है, उसे वापस कर देता है। रक्त आक्सिजन को लेकर हृदय में पहुँचाता है पुनः हृदय से सर्वांग शरीर में पहुँच जाता है। इस विशुद्ध प्राणवायु के द्वारा ही सभी क्रियायें होती हैं। यदि प्राणवायु (आक्सिजन) न मिले तो हृदय-स्पन्दन बन्द हो जायगा, मस्तिष्क को यदि आक्सिजन न मिले तो विचारहीन हो जायगा। इसलिये कहा है कि शुद्ध वायु भोजन तथा अशुद्ध वायु विष के समान है।

शरीर में दस प्रकार की वायु हैं, उनके भिन्न २ कार्य हैं। केवल वायु के द्वारा हम अपने ब्रह्मचर्य को पूर्ण कर सकते हैं। किसी औषधि की आवश्यकता नहीं, किसी योग और जप की चिन्ता नहीं, केवल प्राणवायु को अपनाओ। शरीरस्थ वायु से उचित कार्य लो। तुम्हारा जीवन सफल होगा।

सूर्य्य-ताप सेवन

सूर्य ही समस्त चराचर भूतों का एकमात्र जीवनाधार है। इसीके द्वारा यह संसार चल रहा है। सम्पूर्ण नभ-मण्डल इसीकी शक्ति से परिपूर्ण हो रहा है, यही ग्रहों तथा पर्व्वतों का आलोकदाता एवं आकर्षक है, प्रत्येक लोक तथा भुवनादि इसीके दिव्य आकर्षण में बँधे हैं। पृथ्वीपर्य्यन्त अनन्त सृष्टियों को समान दूरी पर रखते हुये यही बड़े वेग से निराधार शून्य आकाश में घुमा रहा है।

यही हिरण्यगर्भ है, ऋषियों ने इसे ही 'विराट-दृग' कह कर पुकारा है। प्रकृति के विशिष्ट परमाणुओं का यही सर्वोत्कृष्ट आगार है। यही त्रिगुण का अनन्त भण्डार है। तैजस सविता ही समस्त भूतों का प्रवेशालय है, यही समस्त आधि-व्याधिसंहारक, अघ-ओघनाशक, श्रेष्ठ साधन है। ब्रह्मचर्य प्राप्त करने की सभी सामग्रियाँ इसी तैजस मूर्ति के अन्तर्गत विद्यमान हैं। तपस्वियों ने इसीके द्वारा परम शक्तियों को प्राप्त किया था। भोगियों ने इसीके साधन से संसार को चकित किया था। पूर्वजों ने इसीको अपनाकर कायाकल्प किया था।

सूर्य सप्तरश्मि है, इसमें सात प्रकार की किरणें पायी जाती हैं। मानव-शरीर में भी सात रंग त्रिगुण के द्वारा विद्यमान

हैं। इन्हीं रंगों की न्यूनता एवं अधिकता होने पर हमारे शरीर में किसी न किसी प्रकार का दोष उठ खड़ा होता है, बढ़ने पर यही मुझे रोगरूप में कष्ट देता है। इससे सिद्ध होता है कि शरीरस्थ रंगों के न्यूनाधिक होने पर ही शरीर में कोई विकार हो सकता है अन्यथा नहीं।

तमोगुण द्वारा पंचभूत, रजोगुण तथा सतोगुणसहित सात रंग, (आसमानी, हरा, लाल, नीला, पीला, बैंगनी और नारंगी) हैं।

उपवास

शरीर को शुद्ध एवं पूर्ण आरोग्य रखने के लिये प्रत्येक प्राणी को उपवास का आश्रय लेना चाहिये। उपवास से आहार, मलाशय एवं तत्सम्बन्धी विकारों की शुद्धि होती है। इससे जठराग्नि बढ़ती तथा प्रबन्ध-शक्ति बलिष्ठ होती है। दैनिक आहार का अंश जो भली भाँति परिपक्व होने में अवशेष रह जाता है, उपवास के द्वारा संशोधित हो योग्य बन जाता है। ऋषियों का कथन है—

अजीर्णादि रोगों का उपचार उपवास ही है, औषधियाँ अजीर्णादि विकारों को समूल नहीं हटा सकतीं बल्कि इनके

द्वारा कभी २ अनिष्ट की सम्भावना हो जाती है। उपवास से ही दोष शुद्ध होते हैं—अभ्यासी कुछ काल में अपने शरीर और मन को शुद्ध बना लेता है। आयुर्वेदज्ञ महर्षियों का कथन है कि—जठराग्नि खाये हुये आहार को पचाती है। परन्तु उपवास द्वारा शरीर का दोष पचता है। वीर्यविकार नष्ट हो जाता है।

देवज्ञ ऋषियों ने इसकी भूरि भूरि प्रशंसा की है। शरीर, मन और आत्मा इन तीनों के शुद्धि का इसे साधन माना है। इन्द्रियों के दमन का यह सर्वोत्कृष्ट लक्ष्य है परन्तु आज हम इसे भूले हुये हैं। यदि अनुकरण भी कर रहे हैं तो नियम के सर्वथा प्रतिकूल। दिन भर तो भूखे रहे, रात में ढाई सेर गरिष्ठ २ पदार्थ खा गये, कि तीन दिन भी न पच सका। यह उपवास कहाँ रहा। उपवास इसे नहीं कहते, यह तो आसुरी भोजन हो गया।

वर्तमान उपवास की प्रणाली को मुखड़ों ने विगाड़ दिया है।

४

योग

और

ब्रह्मचर्य साधन

आसन

संसार में आदर्श-जीवन बनाने के लिये आदर्श व्यवहारों की आवश्यकता है, उसीके द्वारा मनुष्य शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक क्षेत्र में विजय पा सकता है। शरीर को जीवन-संग्रामक्षेत्र में विजयी बनाने के लिये ही विद्वान् महर्षियों ने आसनों की सृष्टि की थी, हमारे पूर्वज ऋषि-मुनि इसीके द्वारा स्वस्थ, बलयुक्त तथा दीर्घजीवी होते थे।

आसन ब्रह्मचर्य का साधन है, इसके द्वारा सम्पूर्ण वीर्यदोष मिट जाता है, मन्द रक्त-परिक्रमण में एक विद्युत्-शक्ति प्रवाहित हो उठती है। प्रत्येक स्नायुओं में शुद्ध रक्त का संचार होने से उनके मल तथा दोषादि शुद्ध हो जाते हैं। इसके सेवन से शरीर की सुस्ती जाती रहती है, एक विचित्र चैतन्यता का प्रादुर्भाव होता है जो साधक के शारीरिक तथा मानसिक बल की वृद्धि करता है। शरीर के रोग जिन्हें औषधियाँ नहीं हटा सकतीं, उन्हें आसनों के द्वारा हम बड़ी सावधानी से हटा सकते हैं, जो रोग अथवा दोष आसनों के द्वारा नष्ट हो जाते हैं वे कभी उदय नहीं होते।

आसन सायं प्रातः करना चाहिये। नित्य सबेरे सूर्योदय से पूर्व उठकर शौचादि से निवृत्त हो करना चाहिये। यदि स्नान कर लिया जाय तो उत्तम है, यह क्रिया साफ-सुथरे

स्थान में की जाय। इस बात का विशेष ध्यान रहे कि उस स्थान में परिष्कृत वायु आती जाती हो, किसी प्रकार की दुर्गन्धि न हो, वहाँ की पृथ्वी ऊँची नीची तथा कंकड़ीली न हो। समतल भूमि में कोमल आसन बिछाकर साधक दत्तचित्त हो अपनी क्रिया में लीन होवे।

भोजन करके, दौड़कर आने पर तथा परिश्रम के द्वारा थके हुए शरीर से, आसन न करना चाहिये। ऐसी स्थिति में लाभ के बदले हानि उठानी पड़ती है। आसन अभ्यासपूर्वक शांतिमय एकाग्र मन से करना चाहिये। क्रिया करते समय मन का चञ्चल रखना हानिकारक होगा। अतः साधक को इस क्रिया के पूर्व यम और नियम का पालन करना अनिवार्य्य है। बिना यम और नियम के धारण किये कोई भी आसन क्रिया में पूर्ण सफल नहीं हो सकता। यम-नियम का विस्तृत वर्णन पूर्व में दिया जा चुका है।

आसनों के पूर्व साधक यदि आयुर्वेद के पञ्चकर्म के द्वारा अथवा योग के षट्कर्मों से यदि शरीर की शुद्धि कर ले तो अत्युत्तम हो, क्योंकि शरीर में मलों की शुद्धि हो जाने पर आसनों से अभीष्ट की सिद्धि शीघ्र होगी। यदि इतना न हो सके तो केवल साधारण विरेचन के द्वारा अपनी कोष्ठशुद्धि कर ले।

आसन ८४ हैं, जिनका वर्णन शास्त्रों मे भिन्न २ प्रकार

से किया गया है। मुझे यहाँ वीर्यसम्बन्धी आसनों का वर्णन करना है जिन आसनों के द्वारा हम ब्रह्मचर्य का साधन कर सकते हैं, शरीर की रक्षा में सफल हो सकते हैं, जिन रोगों को हटाकर स्वस्थ दीर्घायु वन सकते हैं। उन्हींका वर्णन मैं करना योग्य समझता हूँ।

ब्रह्मचर्य से सम्बन्ध रखने वाले प्रधान १६ आसन हैं। जिनके द्वारा कठिन से कठिन योग की क्रियायें सिद्ध की जाती हैं और भयंकर से भयंकर शरीर के रोग दूर किये जा सकते हैं। ब्रह्मचर्य के प्रेमियों! ध्यानपूर्वक इस प्राकृतिक प्रयोग को देखो। अपने पूर्वजों का अनुसन्धान, उन्नति का मार्ग इस वीर्य रक्षा के अद्वितीय साधन को अपनाओ! हा! कष्ट तो अवश्य मिलेगा। हाथ पैर हिलाने में दुःख तो निश्चय ही होगा। परन्तु मान रक्खो, सुख भी इसी में है। विना सोचे समझे इसे धारण करो, अन्यथा पृथ्वी पर भ्रमण करना कठिन हो जायगा। आसनों की प्रशंसा करना व्यर्थ है, कुछ दिन अभ्यास करो। स्वयं इसके प्रशंसापात्र वन जाओगे, तुम्हारे उपयोगी आसनों का वर्णन किया जाता है।
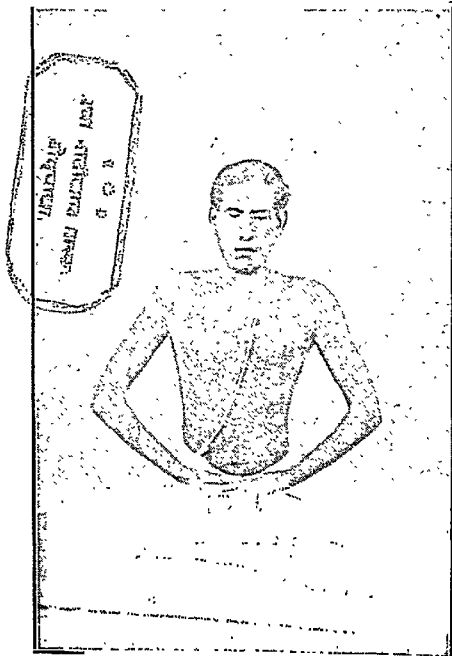
सिद्धासन

(१) सिद्धासन–

वीर्य-रक्षा के लिये यह आसन अत्युत्तम है, अभ्यासी को इसके द्वारा अनेक प्रकार का लाभ होता है। स्त्री-पुरुष सभी इसे प्रसन्नतापूर्वक कर सकते हैं, यह वीर्य को स्थिर कर देता है, स्वप्नदोषादि भयंकर व्याधियाँ इसके कुछ ही काल सेवन करने पर भाग जाती हैं। यह आसन शरीर में आत्मशक्ति का स्फुरण करता, पेट के दोषों को दूर कर आयु की वृद्धि करता है।

विधि-स्वच्छ आसन के ऊपर पैर फैलाकर बैठ जाओ। पश्चात् बायें पैर को मोड़ कर उसकी ऐंडी को गुदा और अंडकोष के बीच में दृढ़ता से इस प्रकार स्थिर करो कि बायें पैर का तलुवा दाहिने पैर के जाँघ से लगा रहे। फिर दाहिना पैर मोड़ कर उसकी ऐंडी लिंगेन्द्रिय के ऊपर इस प्रकार रक्खो जिससे वह दोनों ऐंडियों के बीच में आ जाय। दोनो हाथों को एक दूसरे के हथेली पर रख कर अपने नाभि के नीचे रखो। कमर और गर्दन को एक सीध में करते हुये भृकुटी* में ध्यान लगाओ। इस आसन के करने में शीघ्रता करना हानि-कारक है। इसके साधने में मन को एकाग्र तथा शरीर को स्थिर रखना आवश्यक है। पहले धीरे २ इसका अभ्यास करो, पीछे

* दोनो भौंहों के बीच।

सरल हो जाने पर आप ही इसे बढ़ा सकते हो। इसे सदैव शान्त और एकान्त स्थान में करना चाहिये। भृकुटी के बीच में मन को रखने से वह अपनी चंचलता छोड़ देता है। अतः कल्याण चाहने वाले ब्रह्मचारियों को इसका निरन्तर अभ्यास करना चाहिये। जो काम-शक्ति पर विजय पाना चाहे वह इसे अवश्य अपनावे।

(२) पद्मासन-

यह अत्यन्त लाभकारी आसन है। वीर्य-रक्षा के साथ ही साथ इससे बुद्धि तीव्र तथा निर्मल होती है। इससे स्नायुओं के खिंचाव होने के कारण पैर, पीठ और पेट के दोष दूर हो जाते हैं, शुद्ध रक्त संचार होने लगता है, इसके कुछ दिन सेवन करने पर दृष्टिदोष, वीर्यदोष, मलदोष, आंतदोष, जंघादोष तथा शरीर के अनेक रोग दूर हो जाते हैं।

विधि—कोमल आसन पर पैर फैला कर बैठ जाओ। दाहना पैर उठा कर बायें पैर के जाँघ पर रक्खो और बायाँ पैर उठा कर दाहिने जाँघ पर दृढतापूर्वक रक्खो। शरीर को पूर्ववत् एक सीध में करो। दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर खोल कर इस प्रकार रक्खो कि अंगुलियाँ नीचे की ओर रहें, पश्चात् तर्जनी

पद्मासन

और अँगूठा को मिलाकर गोलाकार बना लो। आसन लग जाने पर दृष्टि सिद्धासन के समान स्थिर करो।

इस आसन के करने में पहले बड़ा कष्ट होता है, पैर की हड्डियाँ दर्द करने लगती हैं—अतः साधक को घबड़ा कर छोड़ बैठना न चाहिये, इसके लिये धीरे २ अभ्यास करें, कुछ रोज में आप ही अभ्यास हो जायगा, प्रत्येक गृहस्थी स्त्री पुरुष को सायं प्रातः नियमपूर्वक इसे करना चाहिये। वीर्य-रक्षा के प्रेमियों को संध्योपासना इसी आसन के द्वारा करनी चाहिये। निःसन्देह यह वीर्य को शुद्ध और बलवान बना देने की उत्तम क्रिया है।

—⁂—
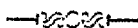
(२) ऊर्ध्व पद्मासन-

यह पद्मासन से भी कठिन आसन है। यह तत्काल नहीं होता, कुछ दिन तक इसका अभ्यास करने पर साधक कर सकता है। इससे अनन्त लाभ हैं, शरीर के समस्त रोगों को दूर करता है, वीर्य-रक्षा के लिये इसे श्रेष्ठता का गर्व है। बल-वृद्धि के लिय तो यह अद्वितीय प्रयोग है। देखा गया है कि यह पैरों के रोगों के लिये रामबाण है।

विधि—साधक दत्तचित्त होकर इस आसन को करे। पहले कपड़े की एक गेंडुरी बनाकर एक स्थान पर रख ले,

पश्चात् दोनों हाथों के बल लेट कर पैरों को पीछे फेंके, पुनः धीरे २ पैरों को समेटता जाय और सर को उसी गेंडुरी पर रख दे। इतना हो जाने पर पैरों को बिना फैलाये उन्हें ऊपर उठावे जब तक कि गेंडुरी पर सिर और शरीर एक सीध में न हो जाँय। शरीर का भार सिर पर आ जाने के उपरान्त ऊपर पूर्ववत् पद्मासन लगा ले, आसन लग जाने पर पूर्ववत् भृकुटी पर ध्यान करना चाहिये।

पहले पहल इसे अधिक समय तक करना हानिकारक है, अभ्यास हो जाने पर साधक १० से १५ मिनट तक करे। पैरों को यदि कष्ट हो तो बदलते रहना चाहिये। इस बात का ध्यान रहे कि पैर कभी सीधे न हों—शीर्षासन और ऊर्ध्व पद्मासन में यही इतना भेद है। ऊर्ध्व पद्मासन करने वाले साधकों को पैर एकदम सीधा तानना नहीं चाहिये।

(४) बद्ध पद्मासन–

आरोग्यता लाभ के लिये यह आसन उत्तम माना गया है। यह एक नहीं, शरीर के सहस्रों रोगों को दूर करता है। यह यकृत्, प्लीहा, शूल, अरुचि, मन्दाग्नि, बद्धकोष्ठ, आमवात, पाण्डु, कामला, हलीमक तथा मेदादि व्याधियों को दूर कर देता है।
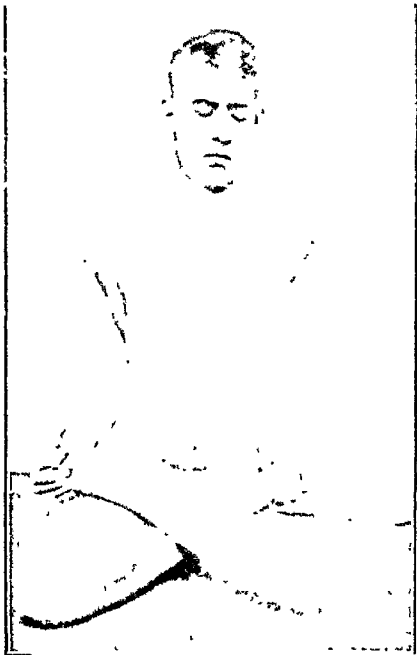
बद्ध पद्मासन

ऋषियों का कथन है कि २ घड़ी पर्यन्त वद्ध पद्मासन करने वाला व्यक्ति समस्त रोगों से बच जाता है। अजीर्ण का यह अनुभूत प्रयोग है। इसके दो चार माह प्रयोग करने पर ही साधक को आशातीत लाभ हो सकता है।

विधि—उत्तम आसन पर दृढ़ पद्मासन लगाकर बैठ जाओ। फिर बायाँ हाथ पीठ के पीछे से ले जाकर बायें पैर का अँगूठा पकड़ो और दाहिना हाथ भी उसी प्रकार ले जाकर दाहिने पैर का अँगूठा पकड़ लो। पीठ, गर्दन और कमर को तान दो जिससे एक सीध में हो जायँ। ऐसा करने से पीठ का टेढ़ापन दूर हो जायगा। आसन बँध जाने पर दृष्टि को नासिका के अग्र भाग में स्थिर करो।

यह आसन यद्यपि क्लिष्ट है परन्तु मास दो मास में अभ्यास के द्वारा सरल हो जाता है। इसे कम से कम आध घण्टा या एक घण्टा करना चाहिये। कब्ज एवं मन्दाग्नि द्वारा पीड़ित व्यक्तियों के लिये यह परमोपयोगी है। अतः वीर्य-रक्षा के प्रेमियों को इसे न भूलना चाहिये।

(५) सर्वांगासन–

आरोग्यता एवं स्वास्थ्य के लिये ऋषियों ने इसकी बड़ी प्रशंसा की है, यह मन्दाग्नि का प्रवल रिपु है। यकृत् तथा उदर विकार इसके द्वारा नहीं होने पाते। इससे अजीर्ण नष्ट हो जाता तथा क्षुधा की वृद्धि होती है। इसका प्रभाव सम्पूर्ण शरीर पर पड़ता है, शरीर के समस्त वातविकार इससे शमन हो जाते हैं, रक्तविकार भी इससे शमन होते देखा गया है। गठिया, कुष्ठ तथा कृमि दोषों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। इसके द्वारा साधक आरोग्यता प्राप्त कर शान्ति पा सकता है।

विधि–एक वड़ा स्वच्छ आसन बिछाकर चित्त लेट जाओ। हाथ की हथेलियाँ पृथ्वी से सटी रहें। पैर के घुटनों को कड़ा करके धीरे २ ऊपर उठाओ। इस बात का ध्यान रहे कि दोनों पैर मिले हुये रहें, पृथक् न होने पावें। पैर को सीधा उठाते जाओ, पैर के उठ जाने पर शरीर को भी धीरे २ उठाओ, पुनः पैरों को सिर के पीछे ले जाकर पृथ्वी से स्पर्श करो। इस क्रिया के करते समय पैर मुड़ने न पावें सीधे तने रहें। हाथों को ज्यों के त्यों छोड़ देना चाहिये, पैर के पृथ्वी स्पर्श करने पर पूर्ववत् उन्हें धीरे २ उठाकर लेट जाना चाहिये।

इस क्रिया को १० मिनट से अधिक नहीं करना

सर्वांगासन
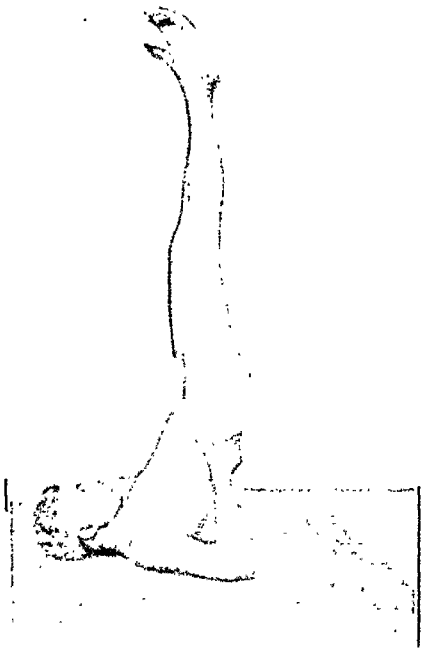
ऊर्ध्व सर्वांगासन

चाहिये। प्रारम्भ काल में इसे कम से कम एक सप्ताह में सफल करना उचित है, शीघ्रता करने पर हानि की आशंका है।

६—ऊर्ध्व सर्वांगासन—

यह आसन भी सर्वाङ्गासन के समान किया जाता है, थोड़ा अन्तर यह है कि सर्वाङ्गासन में पैर पृथ्वी से स्पर्श कराया जाता है किन्तु इसमें स्थिर रखना पड़ता है। इसमें समस्त शरीर को उठाकर केवल कन्धा और सिर के गर्दन के बल पर रक्खा जाता है। ठोढ़ी और कंठ एकदम गले के पसुली से सटा रहता है। सहारे के लिये साधक अपने हाथों को मोड़ कर कमर के पास लगा लेते हैं।

सर्वाङ्गासन के समान ही यह भी लाभकारी है। कुछ दिन ही में यह उदर को शुद्ध कर देता है। सब से विशेषता इसमें यह है कि सफेद बाल काले हो जाते हैं। जीर्ण शरीर में बल का संचार हो जाता है और मन्द रक्त-परिक्रमण शक्तिशाली बनकर स्नायुविकारों को दूर कर देता है। श्वास और खाँसी के लिये यह अनुभूत प्रयोग है। वीर्य-रक्षा के प्रेमियों को इसे धारण करना चाहिये।

(७) शीर्षासन–

यह आसन प्रत्येक रूप में लाभदायक है। ऋषियों ने इसे आसनों का सम्राट् कहा है। इसे मृत्यु, व्याधि तथा जरा-नाशक बताया है। बल, तेज, उत्साह, स्फूर्त्ति, बुद्धि तथा स्मरणशक्ति के बढ़ाने में सर्वश्रेष्ठ प्रयोग है। इसके द्वारा रक्त में विद्युत् शक्ति का संचार हो जाता है। सिर, मुख, छाती, आँख, कान आदि शरीर के ऊपरी स्थान तेजपूर्ण हो जाते हैं। वीर्यविकार तो इससे रह ही नहीं सकते। इससे हृदय बलवान हो जाता है। शारीरिक शक्तियों का विकास होता है। इसके सेवन से शरीर आरोग्यता प्राप्त कर पूर्ण आयु वाला हो जाता है।

विधि–ऊर्ध्व पद्मासन के समान साधक पहले घुटना टेक कर आसन पर बैठ जाय। सिर को उसी भाँति एक गेंडुरी पर रख कर पैरों को तान दे, शरीर का बोझ सिर पर रख कर पैरों को धीरे निकट लाता जाय और ऊपर उठाता जाय परन्तु इस बात का ध्यान रहे कि पैर पृथ्वी से उठ जाने पर जब तक कमर के बराबर उँचाई पर न पहुँच जायँ तब तक पैर घुटने से मुड़े रहें।

पैरों के कमर तक उठ जाने के पश्चात् उन्हें धीरे २ सीधा तानो, जब शरीर सीधा सिर के बल खड़ा हो जाय तब घुटने, पञ्जे और एंडियों को आपस में मिला लो। शान्त रहने
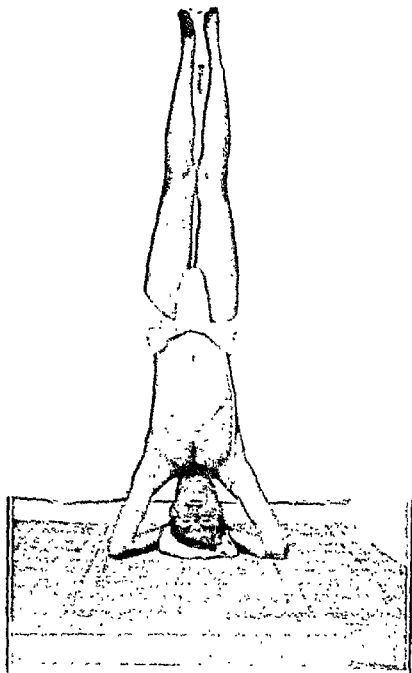
शीर्षासन

जानुसिरासन

का अभ्यास करो, शरीर हिलने-डुलने न पावे। बराबर शरीर को सम्हालते रहना चाहिये, कुछ लोग हाथों पर सर रख कर इस क्रिया को करते हैं।

आसन लग जाने पर आँखों को अच्छी तरह खोले रहना चाहिये। योगी लोग इसीके द्वारा अपनी दृष्टि भृकुटि के बीच स्थिर कर ध्यान करते हैं, मनावरोध का यह अत्युत्तम साधन है। जिनका मन स्थिर नहीं होता वे अवश्य इसका साधन करें।

इसीको योगियों ने कपाली आसन अर्थात् विपरीतकरण के नाम से पुकारा है। इसका अभ्यास धीरे २ करना चाहिये। यदि एकाएक न हो सके तो किसी साथी का सहारा लेकर करे। बहुत लोग दीवाल का सहारा लेकर करते हैं। १०, १५ दिन के अभ्यास से साधक स्वयं कर सकता है।

(८) जानुशिरासन—

यह आँतों के दोषों को दूर करने में विशेष उपकारी है। पेट के विकारों को हटाकर पाचन-क्रिया की वृद्धि करना इसका प्रधान कार्य्य है। पेट, सिर और कमर के दर्द इससे शीघ्र दूर हो जाते हैं। नेत्र तथा उपस्थेन्द्रिय के दुस्तर दुःखों को यह भगा देता है। मूत्राशय की उष्णता एवं मूत्रकृच्छ्रादि दोष इसके द्वारा सहज ही में दूर भगाये जा सकते हैं।

विधि—पूर्ववत् आसन पर बैठकर पैरों को लम्बा फैला दो। बाँये पैर को धीरे २ मोड़ो और उसके तलवे को जंघा के जड़ से चिपका दो। इस बात का ध्यान रक्खो कि मोड़े हुये पैर की एँड़ी ठीक तोंदी के सामने रहे। इसके पश्चात् फैले हुये पैर के अँगूठे को दोनों हाथों से पकड़ो और सिर को उसी पैर के घुटने पर रक्खो, थोड़ी देर के पश्चात् दूसरे पैर से इसी प्रकार करो।

इस आसन का भी धीरे २ अभ्यास करना चाहिये। साधक इसे आध घण्टे तक कर सकता है। यदि इसके साथ प्राणवायु का अवरोध करे तो अत्युत्तम है।

(६) द्विपाद शिरासन—

इसके द्वारा अस्थि के भीतरी विकार दूर हो जाते हैं। इसके द्वारा विशेष रूप से जङ्घा, गर्दन और पाँव के स्नायुओं का खिंचाव होता है। इसके साधन से उनमें बल का सञ्चार होता है और सन्धियों के द्वार मिट जाते हैं। अपान वायु के शुद्धि का यह उत्तम साधन है।

विधि—सिद्धासन के समान आसन पर बैठ जाओ—एक हाथ से एक पैर के पञ्जे को उठाकर धीरे २ सिर के पीछे ले जाकर गर्दन पर रक्खो। एक पैर गर्दन पर रखने के पश्चात्
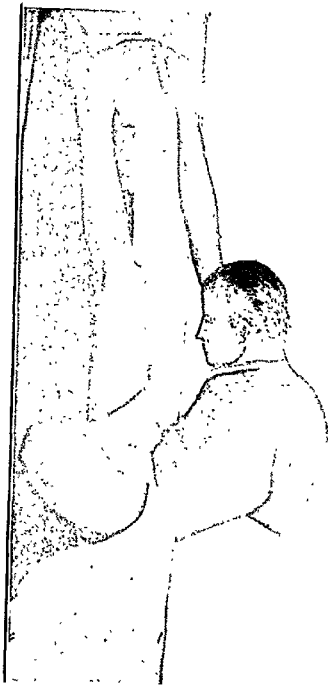
द्विपाद शिरासन
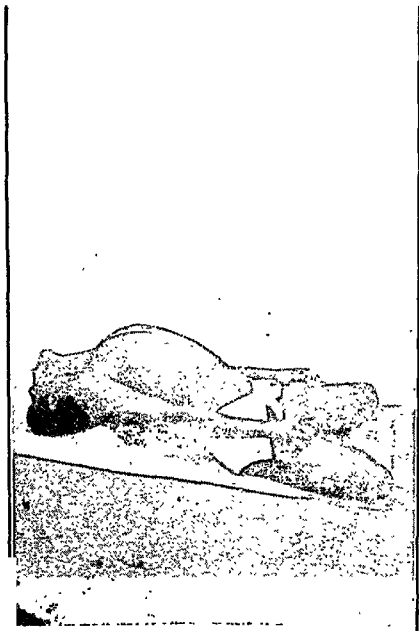
मत्स्यासन

दूसरा पैर भी पूर्ववत् उठाकर धीरे २ दूसरे गर्दन पर रख लो। दोनों हाथों को जोड़ लो। ध्यान रहे इस आसन में पूरा शरीर का भार चूतड़ के ऊपर रहना चाहिये।

यह क्रिया एकाएक नहीं होती, इसे धीरे २ शान्तिपूर्वक करना चाहिये। कुछ दिनों तक अभ्यास करने पर स्वयं ही सरल हो जायगा इसे अधिक से अधिक ५ मिनट तक करना उपयोगी है।

(१०) मत्स्यासन—

उपयोगी आसनों में इसकी भी गणना है। अजीर्णादि सहस्त्रों व्याधियाँ इससे मिटायी जा सकती हैं। इससे मानसिक शक्ति की वृद्धि होती है, शौच परिष्कृत साफ होता तथा क्षुधा लगती है। सभी इन्द्रियों के थकावट को यह दूर कर देता है।

विधि—पद्मासन लगाकर बैठ जाओ, पश्चात् उसी प्रकार धीरे-धीरे चित्त हो जाओ, हाथ के कोहनियों का संसर्ग पृथ्वी से मत रक्खो। गर्दन को बाहरी ओर करते हुये सिर को भली भाँति पृथ्वी से मिला दो। दोनों हाथों से पैर के अँगूठों को पकड़ लो। इस बात का ध्यान रक्खो कि घुटने पृथ्वी से उठने न पावें और पेट और कमर के भाग को जितना ऊपर उठा सको, उठाओ।

यह आसन १० मिनट तक किया जा सकता है। जल में इस आसन का उपयोग करने पर मनुष्य समुद्र में भी नहीं डूब सकता। वीर्य, मल, स्नायु, रीढ़ तथा त्वचासम्बन्धी विकारों से बचने के लिये प्रत्येक मनुष्य को इसे धारण करना चाहिये।

(११) मत्स्येन्द्रासन—

यह आसन अत्यन्त स्वास्थ्यवर्धक है। रोगों के साथ ही साथ इससे अनेक प्रकार का लाभ है। ऋषियों ने इसे आध्यात्मिक दृष्टि से भी उपयोगी माना है, यह मेरुदण्ड का सर्वोत्कृष्ट व्यायाम है। इससे मस्तिष्क शुद्ध हो जाता है, जठराग्नि प्रदीप्त हो जाती है, रक्त शुद्ध और शक्तिशाली हो जाता है। ऊपर की अनेकों व्याधियाँ जिन्हें औषधियों के द्वारा तुम वर्षों में नहीं भगा सकते केवल कुछ दिनों के अभ्यास से दूर हो जाती हैं।

विधि—आसन पर पैर फैलाकर बैठ जाओ। बायें पैर को उठाकर दाहिने जाँघ पर रक्खो, उठाये हुये पैर का पञ्जा पेट से तथा एंड़ी नाभि से एकदम सटी रहे। पश्चात् दाहिना पैर उठाकर बायें पैर के घुटने पर स्थिर करो, परन्तु इस बात का ध्यान रहे कि दाहिना पैर एकदम खड़ा रहे तथा उसका पञ्जा पृथ्वी पर और
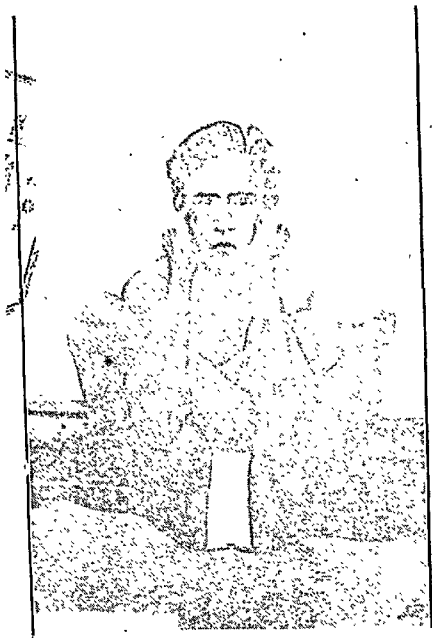
गर्भासन

एंड़ी बायें पैर के घुटने पर हो। दाहिना हाथ पीठ की ओर ले जाकर बायें पैर की एंड़ी पकड़ो और बायाँ हाथ दाहिने पैर के घुटने के बाहर से ले जाकर उसका अँगूठा पकड़ो।

इस क्रिया के करते समय गर्दन, पीठ और छाती को साधारण रूप में रखो, कभी झुकने न पावे सीधे तने रहो। जितना हो सके मुख और गर्दन को पीछे की ओर घुमाओ। आसन के करते समय नासिका के अग्र भाग पर ध्यान लगाओ। कल्याण चाहने वाले प्रेमियों को इसे अधिक से अधिक ३, ४ मिनट करना चाहिये।

(१२) गर्भासन—

इससे भी स्नायु-विकार दूर होता है। हाथ, पैर और गले के स्नायुओं के खिंचाव होने के कारण उनमें दृढ़ता आती है। अर्श का दुखदाई रोग, गलगण्ड, गण्डमाला आदि भयंकर व्याधियाँ इसके धारण करते ही दूर हो जाती हैं। कोष्ठबद्ध के लिये तो यह रामबाण ही है।

विधि—पद्मासन लगाकर बैठ जाओ। बाद जङ्घा और पैर के सन्धियों में दोनों हाथों को डाल कर बलपूर्वक बाहर निकाल लो जिससे कोहनियाँ बाहर चली आवें। सम्पूर्ण शरीर

का भार चूतड़ों पर रखके हाथों से कानों को पकड़िये। धीरे २ हाथों से गले को पकड़ने का अभ्यास करो।

इसकी स्थिरता कठिन है, बहुधा लोग गिर पड़ते हैं कुछ दिन के अभ्यास से सुगम हो जाता है। साधक धीरे २ इस क्रिया को बढ़ा कर १० मिनट तक कर सकता है।

(१३) मयूरासन—

इसके द्वारा पेट की ओर वेगशाली रक्त-प्रवाह होने के कारण पाचन-शक्ति अत्यन्त बलवती हो जाती है। पाचन-शक्ति बढ़ाने में यह सर्वश्रेष्ठ आसन है। इसमें शरीर का पूर्ण भार हाथों पर रहता है जिससे कन्धे बड़े पुष्ट और बलिष्ठ हो जाते हैं। पुराने ज्वर का रोगी यदि इसे धीरे २ आरम्भ करे तो उसे आशातीत लाभ होगा। यह एक नहीं अनेक रोगों से रक्षा कर साधक को बल एवं वीर्यवान बनाता है।

विधि—पहले घुटने के सहारे आसन पर बैठ जाओ। दोनों हाथों को थोड़ा अन्तर पर रक्खो। इस बात का ध्यान रहे कि हाथ के पञ्जे बाहर नही रहें। इसके पश्चात् पैरों को पीछे फेंक दो और हाथों की कोहनियों को नाभी के दोनों तरफ लगाकर धीरे २ छाती और सिर को आगे की ओर बढ़ाओ, तथा पैर को उसी प्रकार धीरे २ ऊपर उठाओ, जब पैर कोहनियों के

बराबर उँचाई पर आ जाँय तब रुक जाओ, सिर और छाती को भी उसी समानान्तर में बना लो। ऐसी स्थिति में सारा शरीर कोहनियों पर टिका रहेगा।

यह आसन अधिक से अधिक १०, १५ मिनट तक करना चाहिये। तोंद वालों के लिये, मेदवाले रोगियों के लिये यह क्रिया बड़ी लाभदायक है। अतः वीर्य–विकार से बचने वाले प्राणियों को इसे नित्य नियमपूर्वक करना चाहिये।

(१४) चक्रासन–

यह आसन पीठ के लिये विशेष उपयोगी है। जिनकी कमर टेढ़ी है, अथवा जिनके जोड़ों में कोई विकार उत्पन्न हो गया है, उसे सहज ही में हटा देता है। इसके द्वारा हमने बहुत से ज्वर के रोगियों को लाभ पहुँचाया है। बद्धकोष्ठ और प्लीहादि विकार में तत्काल लाभ पहुँचाता है।

विधि—आसन पर लेट जाओ और हाथ और पाँवों के पञ्जों को दृढ़तापूर्वक पृथ्वी में स्थिर करो। पश्चात् कमर को दृढ़ कर इस प्रकार उसे ऊपर को उठावो जिससे सारा शरीर ऊपर की ओर उठे। जब सम्पूर्ण शरीर ऊपर की ओर उठकर धनुषाकार हो जाय तब धीरे २ हाथों को पैरों की ओर और पैरों को हाथों की ओर इस अभिप्राय से सरकाओ कि दोनों मिल जायँ।

इसे सावधानपूर्वक कुछ काल तक अभ्यास करने पर साधक का बड़ा लाभ होता है। इसे अधिक से अधिक १० मिनट तक करना चाहिये।

(१५) दण्डासन–

इसके द्वारा मनुष्य सहिष्णुप्रिय बन जाता है। यह सब प्रकार के थकावट को मिटा देता है। ऋषियों ने इसे व्यायामों का विश्राम बताया है। नित्य आवश्यकतानुसार इसे १०, १५ मिनट तक करना चाहिये।

विधि—आसन पर लेट जाओ, शरीर एक दम ढीला रहे। दोनों हाथ तथा पैर परस्पर मिले रहें। हाथ–पैर भी ढीला रक्खा जाय। शरीर सिर से पैर तक दण्ड के समान बड़ा रहे। श्वांस की गति धीरे २ ली जाय–उसे रोकी जाय और छोड़ी जाय। इतना सूक्ष्म हो कि जान न पड़े। आंखें बन्द कर लो, मन के विचारों को हटा दो, उद्वेग अशान्ति का भाव हृदय में न उठे।

इसके अभ्यास से शरीर में साहस का संचार होता है। साधक कठिन से कठिन परिश्रम में भी नहीं थकता वर्तमान काल के आलसी और प्रमादियों को इसे अवश्य। अपनाना चाहिये।
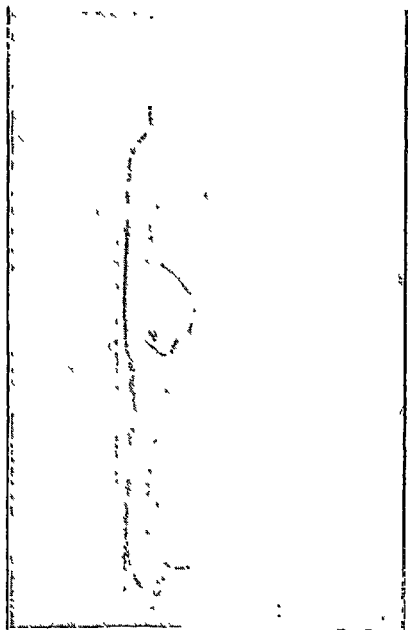
दण्डासन

गरुडासन

(१६) गरुड़ासन–

पूर्वोक्त आसनों के समान यह भी अत्यन्त लाभकारी है। इसमें सम्पूर्ण शरीर का खिचाव नहीं होता है। केवल हाथ और पैर का खिंचाव होने से वे अत्यन्त पुष्ट होते हैं शेष विश्राम पाने के कारण बलसम्पन्न हो जाते हैं। जाँघ, कमर, पीठ, पैर और गला में पुष्टता तथा दृढ़ता उत्पन्न होती है। गरुड़ जिस प्रकार सर्पों का नाश कर देता है उसी प्रकार यह शरीर के रोगरूपी सर्पों का नाश कर देता है।

विधि–एक आसन पर सीधे खड़े हो जाओ। इसके उपरान्त वायें पैर में दाहिने पैर को लपेट दो। इस बात का ध्यान रक्खो कि दाहिने पैर का घुटना बायें पैर के घुटना के ऊपर रहे। तथा बराबर चेष्टा करें कि दाहिने पैर का पञ्जा वायें पैर के पञ्जे को छू ले।

कमर के ऊपरी भाग को सीधा रखो और अपने मुँह के सामने दोनों हाथों को लपेट कर गरुड़ के चोंच के समान बनाओ।

हाथ पैर के निर्बल अस्थि वाले व्यक्तियों को इस आसन का उपयोग करना चाहिये। यह वीर्यवाहिनी नाड़ियों को शुद्ध कर देता है।

(१७) प्राणायाम

दह्यन्ते ध्यायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥

—मानव धर्मशास्त्र

जिस प्रकार अग्नि के द्वारा धातुओं के मल नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार प्राण के निग्रह करने पर इन्द्रियों के सब दोष भस्म हो जाते हैं।

प्राणायाम जीवन-विकाश का श्रेष्ठ साधन है, इसीसे शक्तियाँ सुदृढ़ होती हैं। यही रोगियों को निरोग तथा व्यभिचारियों को ब्रह्मचारी बनाता है। यही अल्पायुओं को दीर्घायु तथा बलहीनों को बलवान् बनाता है। पूर्वकाल में ब्रह्मचारी इसी के द्वारा जितेन्द्रिय होते थे, योगी इसी महाशक्ति की साधना से अखण्ड योग की पूर्त्ति करते थे, वास्तविक में यह जीवन के लिये सञ्जीवनी शक्ति है।

प्राणो विलीयते यत्र मनस्तत्र विलीयते ।
मनो विलीयते यत्र प्राणस्तत्र विलीयते ॥

—हठयोग

"प्राणों का लय (कुम्भक) होने से मन का भी लय होता है अर्थात् मन भी स्थिर होता है, मन के स्थिर होने से

पञ्च प्राण भी स्थिर होते हैं। मनुष्य मात्र के लिये प्राणायाम करना आवश्यक है। जब से इस क्रिया का लोप हुआ, भारत हतवीर्य और कान्तिहीन हो गया, दैवी शक्तियाँ विनष्ट हो गई, सदाचार सद्विचार लोप हो गये, यहाँ तक पतन हुआ कि देश रुग्ण, अल्पायु और जर्जरीभूत होकर दासता के प्रवल बन्धन में जकड़ गया।

प्राणायाम की महिमा अपार है, इसमें सम्पूर्ण जगत् को हिलाने की शक्ति है, संसार इसीके बल पर कर्तव्य-परायण है। कुम्भक का वल देखो, रेल और वायुयानों में किसका वल है, मोटर और जहाजों में किसकी शक्ति है, फुटवाल के भीतर क्या है, साइकिलों के भीतर कौन घुसा है। कहना पड़ेगा कि यह सब वायु अवरोध का कारण है।

प्राणयाम से ज्ञान का प्रकाश होता है, अज्ञान मिट जाता है, बुद्धि सूक्ष्म विपयों को ग्रहण करने योग्य हो जाती है, पुरुषार्थ की वृद्धि होती है, इन्द्रियाँ अनुकुल हो जाती हैं इससे शरीर वीर्यवान हो सवल तथा पराक्रमशील हो जाता है। चित्त में भय का लेश नहीं रहता, साधक निर्भय हो जाता है। अर्थ, धर्म और मोक्षादि फल उसके चरणों पर लोटने लगते हैं। सवसे प्रधान गुण तो इसका यह है कि प्राण अपने वश में हो जाता है।

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगती रुध्वा प्राणायामपरायणाः ॥

जो अपान में प्राण को और प्राण को अपान में लय करते हैं। प्राण की गति रुकने से मन उसके साथ रुक जाता है इसलिये मनुष्यों को प्राणायाम करना उचित है।

१–प्राणायाम के तीन अङ्ग हैं। पूरक, कुम्भक, रेचक। मुँह बन्द करके नासिका के वाम छिद्र को दक्षिण हाथ की मध्यमा और अनामिका इन दोनों अंगुलियों से दबाकर बाह्य वायु को धीरे २ भीतर खींचना और दोनों नासिकायें फिर बन्द कर लेना।

२–भीतर ही जहाँ तक हो सके वायु को रोकना।

३–जब प्राण न रुके तब भीतर के रोके हुये वायु को दाहिनी नासिका खोलकर और बाँयी नासिका को हाथ की आखिरी दो उँगलियों से दबाकर धीरे २ बाहर निकालना।

इसी प्रकार जिससे वायु को छोड़े पुनः उसीसे आरम्भ करे, और वायु को खींच कर कुम्भक करे पश्चात् प्रतिकूल नासा से छोड़े, इसे स्मरण रखना चाहिये। प्राणायाम चार प्रकार का है। उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ और अधम।

१ उत्तम–२० अल्पाक्षर बीजमन्त्र से पूरक, ८० मन्त्र से कुम्भक तथा ४० मन्त्र से रेचक करे। इस प्रकार तीन क्रिया

में लगातार इडा, पिंगला से अनुलोभ विलोम, पूरक रेचक करते हुये कुम्भक के स्थिति के साथ प्रातः १००, मध्यान्ह १०० सायंकाल में १०० प्राणायाम क्रिया सम्पन्न होना चाहिये।

२ मध्यम–१६, ६४, ३२ के क्रम से ८०, ८० प्राणायाम त्रिकाल में करे।

३ कनिष्ठ–१२, ४८, २४ के क्रम से ६०, ६० प्राणायाम त्रिकाल में करे।

४ अधम–८, ३२, १६ के क्रम से ४०, ४० प्राणायाम त्रिकाल में करे।

इसके अतिरिक्त प्राणायाम की अनेक विधियाँ हैं, परन्तु सब से सरल और उत्तम यही है अतः ब्रह्मचारियों को इसीका आश्रय लेना चाहिये।

५

दाम्पत्य जीवन
और
ब्रह्मचर्य साधन

दाम्पत्य-जीवन

एक समय था जब प्राचीन आर्यकुमार तथा कुमारियाँ अपने अध्ययन काल को ब्रह्मचर्यपूर्वक समाप्त कर परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध में सम्बद्ध होकर मानव-जीवन के मुख्य उद्देश्य गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते थे, उस काल का गार्हस्थ्य-जीवन वर्तमानकालीन गुड़ियों का खेल न था। वास्तव में वह एक आदर्श जीवन था। उस काल के स्मृतिकार, विद्वान्, धर्म-प्रवर्त्तक ऋषियों का आदेश था कि—

"ब्रह्मचारिणी कन्या युवा पति को करे, रजस्वला होने पर भी तीन वर्ष तक अविवाहिता रहे, पश्चात् अपने गुणसदृश पति से विवाहसम्बन्ध स्थापित करे।

भारत की प्राचीन सभ्यता के अनुसार इस आश्रम में प्रविष्ट होने के लिये पुरुष को अवश्यमेव उपकुर्वाण होना चाहिये। यदि बृहत् हो तो सर्वोत्तम। अन्यथा उपकुर्वाण होना अनिवार्य है, अर्थात् पुरुष की अवस्था पचीस वर्ष की हो और स्त्री की अवस्था सोलह या अठारह वर्ष की। जीवन के इतने बड़े काल में स्त्री-पुरुष भली भाँति वेदादि विद्याओं का अध्ययन कर गृहस्थाश्रम के प्रबल भार को उठाने की योग्यता प्राप्त कर लेंगे। इसके प्रतिकूल गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना अनुचित है। दुर्बलेन्द्रियों के लिये यह आश्रम नहीं। ब्रह्मचर्यव्रती सब

प्रकार से बलवान मनुष्य ही इसका अधिकारी है।

गार्हस्थ्य-जीवन में स्त्री-पुरुष दोनों का समान अधिकार है। वैदिक सिद्धान्तानुसार पति और पत्नी दोनों एक ही शरीर के दो अंग समझे जाते हैं, दोनों में परस्पर अभिन्नता का रहना आवश्यक है। इसी लिये प्राचीन काल में स्त्री-पुरुष दोनों की सम्मति से ही उनका वैवाहिक सम्बन्ध निश्चित किया जाता था। कन्यादान करने का अधिकारी यद्यपि पिता ही था परन्तु प्रत्येक अवस्था में कन्या की सम्मति भी अवश्य ली जाती थी—जैसा सती, पार्वती, दमयन्ती, सीता और द्रौपदी आदि रमणियों के स्वयंवरों की कथाओं से प्रतीत होता है।

'विवाह' जीवन-मरण की समस्या है। योग्य विवाह से ही दाम्पत्य-जीवन सुखदायी हो सकता है। स्त्री और पुरुष के गुणकर्म में कुछ मतभेद होने पर सुखदायी जीवन दुःखपूर्ण हो जायगा। अतएव पुरुष अपने गुणकर्मानुसार तथा स्त्री अपने मनोनीत व्यक्ति से सम्बन्ध करे।

दाम्पत्य-जीवन का पूर्वीय दृश्य कैसा मनोहर था, पति-पत्नी व्यभिचारशून्य जीवन बिताते थे, छल-कपट का वास नहीं था, मनोमालिन्य किसे कहते हैं जानते ही नहीं थे, परस्पर प्रेम मय तन्मय रहते थे, प्राचीन दम्पति आज के समान दुर्व्यसनी और विषयासक्त नहीं थे, डाइवोर्स की प्रथा

तथा स्त्री-परित्याग की परिपाटी नहीं थी। न तो पुरुष ही इतने स्वतन्त्र थे न स्त्रियाँ ही। न स्त्रियाँ ही नंगा नाच नाचती थीं और न पुरुष ही उसे देखते थे।

वर्त्तमान दाम्पत्य-जीवन क्या है? तुच्छ, सारहीन शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों के नाश करने का साधन। स्त्री और पुरुष गुणमय वर्णशंकर, दोनों में परस्पर प्रेम नहीं, एकता नहीं, चाह नहीं, कैसे जीवन सार्थक हो। भारतियों, पूर्वीय दाम्पत्य-जीवन से शिक्षा ग्रहण करो, विवाह काल में पति-पत्नी किस प्रकार एक सूत्र में गुँथ जाते थे, कैसे उनका मन मिल जाता था, वे दो शरीर रहते हुये अभिन्न बोध होते थे। वेदों में ईश्वर ने आदेश दिया है कि हे जीवों! जैसा शब्दों का अर्थों के साथ, वाच्य का वाचक से, सूर्य और पृथ्वी तथा वर्षा और यज्ञ का सम्बन्ध है ऐसे ही तुम दोनों पति-पत्नी का सम्बन्ध है। जिस प्रकार ऋत्विज लोग सम्पूर्ण सामग्रियों को संचय कर यज्ञ की शोभा बढ़ाते हैं वैसे ही तुम दोनों प्रीतिपूर्वक गृहकार्य्यों को करो। पुरुषों को योग्य है कि सर्वदा अपनी स्त्रियों की रक्षा कर सर्वदा व्यभिचाररहित सदाचारपूर्ण जीवन व्यतीत करें। उसी भाँति स्त्रियाँ भी करें। विवाह-प्रतिज्ञा के विपरीत कार्य्य न करें। क्योंकि विवाह हो जाने पर दोनों एक हो जाते हैं उस समय एक के बिना दूसरे को कोई कार्य्य न करना चाहिये।

वेदो में विवाह-प्रतिज्ञा का वर्णन इस प्रकार आया है कि सम्बन्ध काल में पति शुद्ध हृदय से पत्नी से कहता है कि हे भार्य्ये! मैं कल्याण के निमित्त तुम्हारा पाणिग्रहण करता हूँ, तुम मेरे साथ वृद्धावस्था तक जीवित रहो। भग अर्यमादि देवताओं ने गृहस्थाश्रम के धर्मों के पालन करने के लिये तुमको मुझे दिया है। जल, मातरिश्वा, धातृ तथा आचार्य्य हम दोनों में एकता का प्रादुर्भाव करें। तुम्हारा हृदय मेरा हो और मेरा हृदय तुम्हारा हो। मैं तुम्हारे हृदय को अपने संकल्प में सहमत होने के लिये धारण करता हूँ, मेरा मन तुम्हारे मन के अनुकूल हो। तुम एकाग्रचित्त होकर मेरे वचन को ग्रहण करो, प्रजापति हर एक तरफ हम दोनों को एक बनावें, मैं ज्ञानवान हूँ, अर्थात् जो कुछ कह रहा हूँ, ज्ञानपूर्वक कह रहा हूँ, तुम भी ज्ञानवती हो।

मैं साम हूँ, तो तुम ऋचा हो, मैं आकाश हूँ तो तुम पृथ्वी हो अर्थात् इन दोनों में जैसा घनिष्ट नित्य सम्बन्ध है वैसा ही हम दोनों में हो। हम दोनों परस्पर मिल कर बहुत सी सन्तानों को उत्पन्न करें, हमारी सन्तानें वृद्धावस्था तक जीवित रहें। हम दोनों परस्पर प्रेम तथा रुचिपूर्वक अपने नेत्रादि इन्द्रियों से यथावत् काम लेते हुये सैकड़ों वर्ष तक जीवित रहें।

दाम्पत्य-जीवन का यह आदर्श है। उपरोक्त भावों से

पति-पत्नी का कैसा अङ्गाङ्गीभाव विदित होता है, यही इस जीवन का उद्देश्य है। प्राचीन पूर्वजों का दाम्पत्य-जीवन कितना श्रेष्ठ और विकारशून्य था। पुरुष देवता थे स्त्रियाँ देवियाँ थीं। आजकल का पश्चिमीय दाम्पत्य-संबंध का लेश नहीं था। पुरुष और स्त्रियाँ कामवासना की तृप्ति ही इसका अर्थ नहीं समझती थीं।

अतएव प्राचीन दाम्पत्य-जीवन को देखते हुये उसके पीछे चलो, उसीका अनुकरण करो, यदि तुम्हें सुधार अभीष्ट है, बलवान सन्तानों की इच्छा है, देश में पुनः ब्रह्मचर्य उत्थान का विचार है तो सब से पहले वर्तमान दम्पतिवर्ग को सुधारो और अतिरात्र ब्रह्मचर्य धारण कर परस्पर प्रकृति के नियमों पर चलो। उत्तम आचार तथा सद्विचार का आश्रय ग्रहण करो, धर्म के अङ्गों को अपनाओ, गृहस्थाश्रम के अनन्त उपयोगी गृहसूत्रों का मनन करो।

भारतियो! गृहस्थाश्रमियो! सच्चे गृहस्थाश्रमी बनो, यही आश्रम सब से श्रेष्ठ है, अन्य आश्रमों का यही उपजीव्य है। इसी आश्रम में तुम्हें ऋणों से मुक्त होना है। संसार को तुम्हें ही पालना है। देखो वह तुम्हारी आशा किये निहार रहा है। समस्त चराचर तुम्हारे आश्रय में पड़ा है। अपनी त्रुटियों को दूर करो और शीघ्र सच्चे गृहस्थाश्रमी बन कर संसार का भरण-पोषण करो।

संतानोत्पत्ति एवं संस्कार

शरीर और आत्मा की उन्नति के लिये संस्कारों की आवश्यकता है, निःसन्देह इनके द्वारा शरीर और आत्मा की शुद्धि होती है, ऋषियों ने कहा है कि संस्कारों से ही तुम इस लोक और परलोक के पापों से निवृत्त हो सकोगे तथा संस्कारपूर्ण होने पर ही तुम्हारी सन्तान शुद्ध, निष्पाप और धर्मात्मा बनेगी।

दाम्पत्य-जीवन को आनन्दपूर्वक शांतिमय आगे बढ़ाओ, यहीं से तुम्हारे संस्कारों की उत्पत्ति होती है। महर्षियों ने १६ प्रकार के संस्कार बतलाये हैं, जिनके आश्रय से स्वयं तथा अपने भावी सन्तानों को संस्कारशील बना सकते हो। गर्भाधान से लेकर मृत्युपर्य्यन्त निम्नांकित १६ संस्कार हैं, १ गर्भाधान २ पुंसवन ३ सीमन्तोन्नयन ४ जातकर्म ५ नामकरण ६ निष्क्रमण ७ अन्नप्राशन ८ चूडाकर्म ९ कर्णवेध १० उपनयन ११ वेदारम्भ १२ समावर्त्तन १३ विवाह १४ गृहस्थाश्रम १५ वानप्रस्थ १६ संन्यास।

१. गर्भाधान—यही मुख्य संस्कार है, इसीसे हम अच्छा या बुरा जैसा चाहें सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं। आज गर्भाधान के महत्त्व को भूले हुए विषयी संसार ने उसे केवल आनन्द का साधन समझ लिया है, दुर्बलेन्द्रिय संस्कारहीन भीरुओं ने

दाम्पत्य-जीवन को कलुषित बना दिया। यह वही जीवन था, यह वही संस्कार था जिसके द्वारा अभिमन्यु तथा लवकुशादि प्रणवीरों की उत्पत्ति हुई थी। मानव-जीवन के लिये यह महत्त्व-पूर्ण विषय है। शरीररूपी वृक्ष की यही जड़ है, मूल के सुधरने से ही सर्वांग सुरक्षित रह सकता है। अतः सुयोग्य संतान के लिये नियमपूर्वक गर्भाधान संस्कार करो। स्त्री के ऋतुमती होने पर चतुर्थ रात्रि के पश्चात्, समरात्रियों में शुद्ध और पवित्र हृदय, अर्थात् शोक सन्ताप से रहित हो, मन को एक दूसरे के मन-मंदिर में प्रविष्ट कर इस महोपयोगी संस्कार को करो। स्मरण रहे, ऐसे समय में मन स्वेच्छचारी न हो, और न किसी तर्क-कुतर्क में जाय, क्योंकि दोनों दशाओं में अनिष्ट की आशंका है। ऐसे समय में जैसी भावनायें तुम्हारे हृदय में उत्पन्न होंगी वैसा ही परिणाम सन्तानरूप में तुम्हें मिलेगा। गर्भाधान के समय माता-पिता के जैसे विचार होते हैं, उस समय जैसे स्वर और तत्त्व का विकाश होता है, अवश्य सन्तान भी वैसी ही होती है। अतः प्रसन्न एवं शान्त मन से प्रेमपूर्वक इस संस्कार के साधक बनो।

२. पुंसवन—गर्भ-स्थिति से दो या तीन मास पश्चात् होता है, इससे गर्भ की स्थिरता होती है।

३. सीमन्तोन्नयन—गर्भ के सातवें मास में गर्भ-रक्षा के लिये।

४. जातकर्म—सन्तानोत्पत्ति के समय इस संस्कार को करे। बुद्धि, आयु, आरोग्य और बलवर्द्धक साधन करे पश्चात् शेष क्रिया का विधान करे।

५. नामकरण—जन्म से दस दिन छोड़कर ११ वें १०१ वें या द्वितीय वर्ष के आरम्भ में पुत्र को २ या ४ अक्षर का अन्तस्थ वर्ण वाला घोषसंज्ञक नाम रखे, कन्या हो तो ३ या ५ अक्षर का सुन्दर नाम रक्खे।

६. निष्क्रमण—४ मास पश्चात् बच्चे को शुद्ध वायु में निकालना।

७. अन्नप्राशन—६ मास बाद आरम्भ करे।

८. चूड़ाकर्म—३ वर्ष व्यतीत होने पर मुण्डन करावे।

९. कर्णवेध—नाड़ी छोड़ कर कर्णवेध करावे।

१०. उपनयन—८ वर्ष से १२ वर्ष तक उपनयन संस्कार करावे।

११. वेदारम्भ—उपनयन संस्कार के दूसरे ही दिन से वेद आरम्भ करना।

१२. समावर्त्तन—सांगोपांग ब्रह्मचर्य तथा वेदादि विद्याओं को समाप्त कर गृह पर आना।

१३. विवाह—गृहस्थाश्रमी होने के लिये योग्य कन्या से सम्बन्ध करना।

१४. गृहस्थाश्रम—स्त्रीयुक्त सन्तानोत्पत्ति, पालन एवं धार्मिक कार्य करना।

१५. वानप्रस्थ—साधन काल।

१६. सन्यास—त्याग।

यही १६ संस्कार हैं, इन्हीं के साधन से सिद्धियाँ मिल सकती हैं। पूर्वजों का जीवन संस्कारपूर्ण था तभी देश सब विषयों में अग्रणी था। वर्त्तमान गृहस्थाश्रमी सज्जनों! संस्कारों को धारण कर संस्कारशील हो संतान उत्पन्न करो, अपना तथा बच्चों का यथावत् संस्कार करो, तभी तुम्हारी उन्नति होगी।

बाल्य-काल—७

गर्भाधान होने पर स्त्री की रक्षा करो, उसे सदैव गर्भ-रक्षा का उपदेश दो, वह कभी अप्रसन्न तथा अपवित्र न रहे, चिंता और शोक से पृथक् रहे, कभी भूलकर भी नाशकारी दुर्व्यसनों के चक्र में न फँसे, सदैव लघुपाकी सात्विक आहार किया करे, तुम स्वयं इस बात की देख-रेख रक्खो कि गर्भिणी शरीर-रक्षा के अतिरिक्त विशेष परिश्रम भी न करे। समय-समय पर उसे वीर पुरुषों की गाथायें, महावीर वीर्यधारियों की कथायें तथा उदार महापुरुषों की कृतियों को सुनाते रहो। उसे गर्भ-

रक्षा के महत्व को पूर्णरूप से समझा दो, तभी तुम्हारी भावी सन्तान योग्य होगी—अर्थात् तुम मनचाही सन्तान उत्पन्न कर सकोगे—जो तुम्हें रौरव से खींच सकेगी।

सन्तान उत्पन्न होने पर उनका यथाविधि पालन कराओ, जब कुछ बड़े हो तभी से उनके भीतर आर्ष संस्कृति का भाव भरो। जब बच्चा कुछ बोलने लगे, तब उसे सदैव अच्छी २ बातें सिखलाओ। बड़े लोगों को प्रणाम, ईश्वर की स्तुति, घर के अन्य बच्चों से प्रेम तथा सदैव प्रसन्न रहने का उपदेश दिया करो। याद रहे तुम्हें इन्हीं सन्तानों के द्वारा ब्रह्मचर्य का पुनरुद्धार करना है। लाड-प्यार में, दूसरे की देखादेखी कर के उनका सर्वनाश न करो। तुम तो नष्ट हुये ही, इस अबोध बालक का नाश क्यों करोगे। यदि तुम ऐसा करते हो तो नीच हो, तुम पिता होने के योग्य नहीं, अतः सावधानी से यत्नपूर्वक अपने इस आत्मा को वास्तविक आत्मा के रूप में संसार को दिखाओ।

बालक ही देश की सम्पत्ति हैं। इन्हीं के द्वारा देश, जाति और समाज का उत्थान होगा। भविष्य में बालक ही देश के जीर्ण नौका के आधार होंगे। यदि अभी से इनके भीतर स्वार्थत्याग, तप और प्रेम का भाव नहीं भरा जायगा तो क्या आगे बढ़ने पर एकाएक हम इन्हें स्वार्थत्यागी,

संयमी तथा कर्मवीर बना सकेंगे ? कदापि नहीं ।

शैशव सिद्धियों का शासन काल है। बच्चा यह कच्चा घड़ा है जिसे ठोक पीट कर हम जैसा चाहें बना सकते हैं । किसी शरीर-विज्ञानी का कथन है कि बच्चा, वृक्ष की वह कोमल टहनी है, जिसे हम अपनी इच्छानुसार जिधर चाहें मोड़ सकते हैं । वही टहनी जब कुछ काल के पश्चात् मोटी डाल के रूप में परिवर्तित हो जाती है उस समय हम क्या सैकड़ों मनुष्य भी उसे नहीं मोड़ सकते, अतः इन विषयों का विचार कर बच्चों के बाल्य-काल पर ध्यान दो ।

हमारी असावधानी के कारण बच्चे बिगड़ते हैं । बच्चों के दुर्व्यसनी तथा दुर्गुणी होने के हमी आदिकारण हैं । उनका सारा उत्तरदायित्व हमारे ही सिर पर है, जैसा संस्कार पड़ता है, वैसा ही उनका आचरण हो जाता है । बच्चों के मस्तिष्क में एक विचित्र आकर्षण शक्ति होती है, जिससे वे किसी भी वस्तु को, जिसे देखते हैं, शीघ्र अपना लेते हैं । अतः माता-पिता को उचित है कि उनकी देख-रेख रक्खें ।

सत्संग

जहाँ पर सज्जन हैं वहीं पर स्वर्ग है, और जहाँ पर दुर्जन हैं वहीं पर नरक है। दुर्जन पुरुष स्वर्ग को भी नरक बना छोड़ते हैं और सज्जन पुरुष नरक को भी स्वर्ग बना देते हैं। सत्पुरुष जहाँ जायँगे, वहीं पर स्वर्ग बन जाता है।

—सम्राट् बलि

आत्मोन्नति का मूल साधन सत्सङ्ग है इसीमें समस्त सुधारों का महत्व पाया जाता है, यही मनरूप लौह को कांचन बना देता है, इसकी महिमा अपरंपार है, महात्माओं ने इसे पारस से बढ़कर माना है, क्योंकि पारस लोहा को सोना ही बना सकता है पर अपने समान पारस नहीं बना सकता। परन्तु सत्संग दुर्जनों को महात्मा बना देता है, और वे पारस-रूप सज्जन बन कर दूसरे दुर्जनों को भी सुधार देते हैं।

सत्संगत्वे निःसंगत्वं निःसंगत्वे निर्मोहत्वम्।
निर्मोहत्वे निश्चलत्वं निश्चलत्वे जीवन्मुक्तः॥

—श्रीमच्छङ्कराचार्य

सत्सङ्ग से निःसङ्ग की प्राप्ति होती है, निःसङ्ग से निर्मोहत्व अर्थात् विषय से अप्रीति बढ़ती है, निर्मोह से सत्य

का पूरा ज्ञान तथा निश्चय होता है, इसी सत्तत्त्व के निश्चल ज्ञान से प्राणी जीवन्मुक्त होता है अर्थात् इस अशान्त संसार-सागर से तर जाता है।

मनुष्य प्रकृति की विलक्षण सृष्टि है, यह, स्वाभाविक सङ्ग खोजता है। सङ्ग ही दुर्गुणी और महात्मा बनाता है, यही योग और भोग के मार्गों को दिखाता है। यही वीर और भीरु बनाता है, यही सदाचार और अविचार का पाठ पढ़ाता है, सारांश यह है कि संसार सङ्ग के ऊपर अवलम्बित है, जो जैसा सङ्ग करेगा वैसा ही बन जायगा। मनुष्यों को छोड़ो, पशुपक्षियों को देखो, जङ्गली भयानक जन्तुओं को निहारो सभी सङ्ग के सूत्र में बँधे हैं। चराचर सङ्ग से ओत प्रोत है। सङ्ग के बिना विश्व की मर्य्यादा स्थिर नहीं रह सकती।

उत्तम सङ्ग का नाम सत्सङ्ग है, यह पापियों को पुण्यात्मा बनाता है, अधर्मियों को धर्म का मार्ग सिखाता है, दुर्गुणों के अन्तरात्मा में उत्तम उत्तम गुणों को उत्पन्न करता है, चरित्रहीनों में चरित्र-बल देता है, बुद्धिहीनों में बुद्धि, विद्या-विहीनों में विद्या, ज्ञानहीनों में विवेक तथा अशक्तों के शरीर में सञ्जीवनी शक्ति का अपार बल भरता है। यही लौकिक और पारलौकिक सम्पूर्ण सुखों का साधन है। गोस्वामी तुलसी-दासजी का वचन है कि—

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला एक अङ्ग ।
तुलै न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सत्सङ्ग ॥

इससे और अधिक क्या हो सकता है । हम नित्य अपनी आँखों से देखते हैं कि मदारी बन्दरों को नचाया करते हैं, भालुओं से काम लेते हैं, बकरियाँ जमनाष्टिक करती हैं। गदहे सर्कसी दौड़ दौड़ते हैं। दो २ खच्चर खड़े होकर फाटक बनाते हैं। कुत्ते फायर जंप करते हैं, तोते पानी भरते हैं, सियार सेवा करते हैं यह सब क्या है ? सत्सङ्ग का खेल ।

सत्सङ्ग का कैसा प्रभाव है ! पशुओं से सीखो, पक्षियों से जानो, *प्राचीन तोतों का उदाहरण इसके लिये उपयुक्त है।

*एक बहेलिया ने एक वृक्ष से दो तोते के बच्चों को पकड़ा, एक को मुनि के हाथ बेचा और दूसरे को बाजार में लाकर यवन कसाई के यहाँ बेच दिया। मुनि ने उस बच्चे को अपने ब्रह्मचर्याश्रम में लाकर रक्खा और उस कसाई ने उसे अपने दूकान पर रक्खा जहाँ नित्य मांस बेचा करता था। मुनि वाला तोता विद्यार्थियों के पाठों को सुना करता था, धीरे २ वह विद्वान हो गया, और इधर कसाई वाला तोता, दुश्चरित्रों की बातों को सुन २ कर भारी बकवादी और दुष्ट हो गया।

कुछ दिनों के उपरान्त एक चोर ने दोनों तोतों को चुराकर राजा के यहाँ बेच दिया। विश्राम के समय में राजा ने दोनों तोतों को अपने निकट मँगाया। पहले मुनि वाले तोते से कहा कि—पढ़ो जी आत्माराम ! इतना सुनते ही वह उत्तम २ श्लोकों से राजा को आशीर्वाद देने लगा, ज्ञान-विज्ञान की बातें करने लगा। यह सुनकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुये। पश्चात्

भारतियों ! ब्रह्मचर्य के उद्धार करने वाले आत्माओं ! चेतो ! सत्संगति ग्रहण करो, अपने बच्चों को अच्छी संगति में रखो, दुर्गुणों का साथ नाशकारी होता है, अभी तक कुसंग का परिणाम नहीं पाये ? अरे अंधो ! तुम्हारे सहस्रों कुलदीपक इसी कुसंग में पड़कर नष्ट भ्रष्ट हो गये, लाखों व्यभिचारी बन गये, लाखों वेश्यागामी बन गये, लाखों अफीमची और चंडूबाज बन गये, लाखों शराबी और कबाबी हो गये, लाखों भंगेड़ी और गंजेड़ी हो गये। हाय ! हाय ! इसी कुसंग में पड़ कर तुम्हारे लाखों बच्चे विधर्मी हो गये, चेतो अब भी चेतो ! सत्सङ्ग धारण करो, सर्वथा अच्छी सङ्गति में रहो। अपने बच्चों को दुर्जनों की सङ्गति में मत जाने दो उन्हें कुसङ्ग से हटाओ।

कसाई वाले तोते को कहा कि पढ़ो जी आत्माराम ! इतना सुनते ही वह गालियाँ देने लगा, राजा ने कई बार आग्रह किया परन्तु वह अपशब्द ही कहता रहा, यहाँ तक कह डाला कि बेहूदा चुप नहीं रहता। यह सुनकर राजा को क्रोध हो आया, और उस तोते को मारना चाहा, इसी बीच में मुनि वाला तोता बोला—

> अहं मुनीनां वचनं शृणोमि, शृणोत्ययं यद् यवनस्य वाक्यम्।
> न चास्य दोषो न च मे गुणो वा संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति ॥

मैं सर्वदा मुनियों की बातों को सुना करता था और यह सर्वदा म्लेच्छों की बातों को सुनता था, न इसमें कोई दोष है और न मुझमें कोई गुण, दोष और गुण सत्सङ्गति के द्वारा उदय होते हैं। यह सुनकर राजा चुप हो रहा।

कहा है—प्राण त्याग देना अच्छा है परन्तु दुर्जनों का सङ्ग नहीं करना चाहिये। पर्वत के कठोर कन्दराओं तथा विपिन में भयानक वन्य जन्तुओं के साथ भ्रमण करना उत्तम है परन्तु मूर्ख के साथ, दुर्गुणी तथा कुसङ्गी के साथ इन्द्रभवन में भी रहना ठीक नहीं। सच है। कुसङ्ग के द्वारा बड़े २ गुणवान और होनहार बालक नष्ट-भ्रष्ट हो गये, उनकी सत्ता धूल में मिल गई। यह कुसंगरूपी प्लेग बड़ा भयानक है। यह पिशाच तथा विषधरों से भी अधिक दुखदाई है, ये लोग तो एक बार ही कष्ट देते हैं, परन्तु कुसङ्ग का फल यावत् जीवन भोगना पड़ता है।

अतः कल्याण चाहने वाले व्यक्तियों को इसे त्याग देना चाहिये। सर्वदा सत्सङ्ग के क्षेत्र में अध्ययनशील रहना चाहिये।

*सत्सङ्गः परमं तीर्थं सत्सङ्गः परमं पदम्।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य सत्सङ्गं सततं कुरु॥

सत्सङ्ग ही पवित्र तीर्थ है, सत्सङ्ग ही परम पद है इस लिये सब छोड़ कर मन, वचन और काया से सत्सङ्ग का सेवन करो और अपने अबोध बच्चों से कराओ।

*न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः॥

सदाचार

अनाचारेण मालिन्यं अत्याचारेण मूर्खता ।
विचाराचारयोर्योगः सदाचारः स उच्यते ॥

जिस विचार की आचार-पुष्टि नहीं होती वही अनाचार कहलाता है। उससे मलिनता की उत्पत्ति होती है। जिस आचार के पालन में विचार से काम नहीं लिया गया, वह अत्याचार का रूप धारण कर लेता है। उससे मूर्खता उत्पन्न होती है। विचार और आचार का मिलाप ही सदाचार कहलाता है।

आचार ही सद्विचारों की प्रसव-भूमि है। यही सबसे श्रेष्ठ धर्म है। ऋषियों ने आचार को ही उन्नति का साधन माना है। जिसके अन्तःकरण में सदैव पवित्र आचार का श्रोत बहता रहता है वह कभी पापी और व्यभिचारी नहीं हो सकता, उसका मन कभी अधर्म के साम्राज्य में प्रवेश नहीं कर सकता। सम्पूर्ण इन्द्रियों को वही सुरक्षित रक्खेगा। विषय-प्रपंच को दूर भगा देगा और ब्रह्मचर्यव्रत द्वारा अपने शरीर की यथावत् रक्षा करेगा।

सद्विचार और आचार का सम्मिलन ही सदाचार का रूप है। तपोनिष्ठ ऋषियों ने विचार को ज्ञान और आचार को कर्म कह कर पुकारा है। इससे सिद्ध होता है कि ज्ञानकर्म ही

सदाचार है । यद्यपि ज्ञानाग्नि प्रदीप्त होकर सब कर्मों को भस्म कर देती है, तथापि बिना कर्मरूप काष्ठ की रगड़ के वह अग्नि प्रदीप्त ही नहीं हो सकती । जो मनुष्य बिना काष्ठ-संघर्षण के अग्नि को प्रदीप्त करना चाहता है, वह मूर्ख है।

विज्ञों ने ज्ञान को उद्देश्य और कर्म को साधन माना है । एक साथ ज्ञान और कर्म का उपयोग ही सदाचार का लक्षण है। तभी सदाचार ठहर सकता है ।

ब्रह्मचर्य-साधन के लिये सदाचार की अत्यन्त आवश्यकता है । बिना उत्तम आचार के कोई साधन सफल नहीं हो सकता । संसार कर्मक्षेत्र है, इसमें जो कुछ कर्म समष्टिरूप से या व्यष्टिरूप से किया जाता है सबों का साधन आचार ही है। जीवन का उद्देश्य यही है । ज्ञानविकास का सिद्धान्त इसी पर अवलम्बित है । कर्म की कसौटी, अभ्युदय का सोपान तथा विवेक का क्षेत्र विज्ञों ने इसीको माना है । इसीके अभ्यास से मानव जीवन-संग्राम में विजय पा सकता है।

सदाचार से अनाचार और अविचार का नाश होता है । अत्याचार का प्रकोप इसीके द्वारा दबाया जाता है।

भयानक नाशकारी सत्यानाश के पिण्ड से यही छुड़ाता है । यही मुझे दुर्व्यसनों के चक्र से खींच कर वास्तविक मार्ग पर बढ़ाता है । संसार के सभी सुधारों की भित्ति यही है ।

सदाचार के लोप होने पर संसार नष्ट हो जायगा।

भारतियों! सदाचार को ग्रहण करो, अपने छोटे-छोटे बच्चों में बाल्य-काल से ही इस सर्वोत्तम गुण का भाव भरो। ध्यान रक्खो, अबोध बच्चे कभी भी आचारहीन न होने पावें। उन्हें बाल्य-काल से ही सदाचार की शिक्षा दो, उन्हें आचारवान सद्विचारियों की सङ्गत में रक्खो। वर्तमान कलियुगी पिताओं की तरह उन्हें लाड-प्यार में आचारहीन मत बनाओ। तुम्हें ब्रह्मचर्य का पुनरुद्धार करना है, तुम्हें अपनी खोई हुई शक्तियों को प्राप्त करना है।

प्रत्येक माता, पिता, गुरु, बन्धु तथा मित्र का यह सबसे प्रथम कर्तव्य होना चाहिये। वे बच्चों के आचार विचार की ओर ध्यान दें। आचार-विचार के सुधरने से ही सम्पूर्ण जीवन सुधर सकता है। बाल्यावस्था ही सम्पूर्ण उन्नतियों का बीज है। इसी अवस्था में बच्चों के न सुधारने से सन्तान दुर्गुणों में आसक्त हो जाते हैं, फिर आगे बढ़ने पर उनका सुधार करना कठिन ही नहीं, पूर्ण असम्भव सा हो जाता है। जहाँ कहीं बच्चों में अनाचार की झलक दिखाई दे, तत्काल सुधारना चाहिये। उसी समय उनके सामने पाप के परिणाम का भीषण चित्र तथा ब्रह्मचर्य की महिमा के श्रेष्ठ भावों को दर्शाना चाहिये। उस समय सङ्कोच करना उन बच्चों के साथ अन्याय करना है।

बाल्यावस्था में बालकों की विचार-शक्ति प्रौढ़ नहीं होती। भले-बुरे और सत्यासत्य के निर्णय करने की शक्ति उनमें नहीं रहती, आसपास में वे जो कुछ देखते हैं उसका प्रभाव उनके मन पर शीघ्र पड़ जाता है, अप्रौढ़ तथा अपरिपक्व बुद्धि के बालकों को इस बात का ज्ञान और परिचय कैसे हो सकता है कि सुविचार कौन से हैं ? अथवा सदाचार कौन सा है।

मनुष्य अनुकरणशील है, संग करना उसका स्वभाव है। यही कारण है कि लड़कों में अनुकरण करने की प्रवृत्ति अधिक होती है। वे जैसा देखते हैं वैसा ही करने लगते हैं। बच्चों के मन के बुरे-भले संस्कारों का आदिस्थान गृह है, माता--पिता ही उसके पथ-प्रदर्शक हैं। अतः माता-पिता को चाहिये कि उनके नैतिक तथा शारीरिक उन्नति पर ध्यान दें, तभी उनके सन्तान चरित्रवान हो सकेंगे।

बालकों का स्वभाव कोमल होता है, जिस ओर चाहो उन्हें ले जा सकते हो, उस समय उनकी बुद्धि जिस वस्तु को ग्रहण कर लेती है, उसे कदापि छोड़ नहीं सकती। कुछ मूर्खों की धारणा है कि बच्चों को सुधारने के लिये उनके सन्मुख मुष्टिमैथुन, शिशुमैथुनादि महा निंद्य अविचारपूर्ण कुरीतियों का वर्णन किया जायगा तो वे अबोध बच्चे इन दुर्गुणों को सीख लेंगे। कदापि नहीं। यह धारणा व्यर्थ है। बालक आचार-

हीनों की संगति से बिगड़ते हैं । माता-पिता की असत्तर्कता से बिगड़ते हैं। बालक कुसंग में पड़कर अवश्य ही दुर्गुण सीख लेंगे । अतः माता-पिताओं ! सावधान ! बच्चों को सदाचार की शिक्षा दो। उन्हें आचारवान आचार्य की शरण में रक्खो।

आचार्य्य और ब्रह्मचर्य-जीवन

आचार्य्य अंधकार का नाश करता है। सर्वदा हमारे चित्त की भ्रान्तियों को दूर कर यथार्थ ज्ञान की रक्षा करता है। ज्ञान-क्षेत्र में हम उसे नित्य नई-नई बातों की सृष्टि करते देखते हैं। वास्तव में आचार्य्य एक ब्रह्म है, उसी की भाँति यह भी निरन्तर उत्पत्ति, पालन और प्रलय में लगा रहता है। जब वह ब्रह्मचारियों में नई-नई बातें उत्पन्न करता तब ब्रह्मा का कार्य्य करता, जब विद्यार्थियों में यथावत् ज्ञान की रक्षा करता तब विष्णुरूप होता और जब अज्ञान का संहार करता तब शंकर के रूप में परिणत होता है।

संसार में किसी वस्तु की प्राप्ति के लिये गुरु की आवश्यकता होती है, यद्यपि अन्तरात्मा स्वयं प्रकाशरूप है, परन्तु सम्बन्ध कराने के लिये किसी की आवश्यकता अवश्य होती है।

इन्द्रादि देवों ने आचार्य्य किये थे, राम और कृष्ण आचार्य्यों के ही शरण में प्रकाण्ड विद्वान् हुये, अर्जुन और कर्ण गुरु-शिक्षा से ही धुरन्धर धीर-वीर हुये, सर्वत्र आचार्य्य की ही महिमा है। संसार का सारा ज्ञान, विज्ञान, कला, कौशल उसी के पवित्र अन्तरात्मा से उदय हुआ है।

आचार्य्य और ब्रह्मचर्य का घनिष्ट सम्बन्ध है। दोनों में अभिन्नता है। ऋषियों ने ब्रह्मचर्य को ही आचार्य्य माना है, बिना ब्रह्मचर्य धारण किये आचार्य्य नहीं हो सकता। बृहत् ब्रह्मचारी जिसने सांगोपांग वेदों का अध्ययन किया है, जो चरित्रवान, नम्र और सुशील है, जो पूर्ण शरीरज्ञ, आकर्षण-विद्या-विशारद, पठन-पाठनशैली से परिचित है, जो मनोवृत्ति का ज्ञापक तथा सुधारक है। निःसन्देह वह आचार्य्य बनने के योग्य है। वही सुधार कर सकता है और अबोध शिशुओं को उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँचा सकता है।

हितोपदेष्टा शिष्यस्य सुविद्याऽध्यापको गुरुः।

जो शिष्य को विद्याभ्यासादि सदुपदेशों से सुधारे उसे आचार्य्य अथवा गुरु कहते हैं। गुरु को धार्मिक, विद्वान्, परोपकारी, सदाचारी, निरभिमानी, विज्ञानी, शान्त, दान्त, धीर, गम्भीर, चतुर, देशहितैषी, अनुभवी, कालज्ञ, प्रगल्भ, पढाने में रुचिकर, नीरोग, निर्व्यसनी, विवेकी, सत्यप्रतिज्ञ, पाठनक्रमज्ञ, छात्र-

स्वभावश, मृदुभाषी तथा लोकप्रियादि अनेक गुण-सम्पन्न होना चाहिये ।

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः ।
संकल्पं सरहस्यं च तमाचार्य्यं प्रचक्षते ॥

जो शिष्य को उपनयन संस्कार कराके वेदादि विद्याओं को पढ़ाता है, उसे आचार्य्य कहते हैं। महर्षि वशिष्ठ ने राम को उपदेश देते हुये बतलाया है कि—

पिता ह्यनं जनयति पुरुषं पुरुर्षभ ।
प्रज्ञां ददाति चाचार्य्यस्तस्मात्स गुरुरुच्यते ॥

जो आत्मसंयमी हो, जिसने शुद्धतापूर्वक विद्याध्ययन किया हो, जो शिल्प कला-कौशल, चित्र तथा लेखनादि हस्त-क्रिया में कुशल हो, भले-बुरे कर्मों का जानकार, सरल स्वभाव, उदारधी, शुद्ध और पवित्रात्मा हो, वही सच्चा आचार्य्य है । वही विद्यार्थियों के बुद्धिरूपी भूमि में विद्यारूप मेघ की वृष्टि करके उन्हें सर्वगुणसम्पन्न बना सकता है ।

हा ! आज आचार्य्यों के दर्शन कहाँ ? निरक्षर भट्टाचार्य्य लाखों मिडिलची अध्यापक और आचार्य्य पद की निन्दा करा रहे हैं । सहस्रों आचारहीन नार्मल, ट्रेनिंग एफ. ए., बी. ए., और एम. ए. की डिगरी प्राप्त किये आचार्य्य शब्द को कलंकित कर रहे हैं । लाखों जालसाज धोखेबाज लोक-परलोक बिगाड़ने

वाले दुष्टात्मा आचार्य्य बने घूम रहे हैं। यही कारण है कि देश में न आचार्य्य रह गये और न विद्या । गृह्यसूत्रों में लिखा है कि—

ब्रह्मचारी को मैं गुरुकुलनिवासार्थ आचार्य्य को इस लिये अर्पण करता हूँ कि-जिससे इनकी दीर्घायु, स्वसन्तान सुजनता, वीर्यवृद्धि, सब प्रकार के धन-वैभवादि की प्राप्ति तथा सब वेदों का ज्ञान होवे।

भारतियों! प्राचीन काल की प्रणाली देखो। तपोवन में आचार्य्य के निकट तपश्चर्य्या में लीन रहते हुये वेदाध्ययन और वीर्य-रक्षण की परिपाटी देखो। उन आचार्य्यों और बटुकों को देखो, और एक बार अपने वर्त्तमान युग की ओर निहारो। पश्चात् तुम्हें क्या करना चाहिये सोचो।

ब्रह्मचर्योपदेश

आचार्य्य सदैव अपने शिष्यों को उपदेश दे, उन्हें कर्मपथ पर दृढ़ रहने के लिये साहस प्रदान करे, कुकर्मों से बचावे, सदैव सचेत करता रहे । उन्हें आदेश दे कि तू सदा सत्य बोल, कभी किसी अवस्था में असत्य का आश्रय न ले, नहीं तो ब्रह्मचर्य की साधक आत्मा ही स्वयं कलुषित हो जायगी।

उन्हें सर्वदा चेतावनी देता रहे कि, ब्रह्मचारियो ! धर्माचरण करो, धर्म की रक्षा करो, इसीसे तुम्हारी रक्षा होगी। इससे विमुख होने पर तुम्हारा कल्याण नहीं हो सकता है। प्रमादरहित समस्त विद्याओं को पढ़ो और पढ़ाओ। ब्रह्मचर्य से सब विद्याओं को सीखो। प्रमादवश सत्य और धर्म को मत छोड़ो। माता-पिता की सेवा में प्रमाद मत करो, विद्वान् और अतिथि का सत्कार करो, तुम उन कर्मों को मत ग्रहण करो जिनके द्वारा पापाचार की वृद्धि होती है। धर्मयुक्त कर्मों का अनुष्ठान किया करो, सदैव विद्वान् धर्मात्माओं के सङ्ग में जीवन व्यतीत करो, उन्हींके समीप बैठो, जो संशय हो उसे विद्वान् विचारशील पक्षपातरहित सज्जनों के द्वारा समझ कर उसका अनुकरण करो।

दिनचर्य्या, रात्रिचर्य्या एवं ऋतुचर्य्या का पालन करो। ब्रह्मचर्य-जीवन में सदैव धर्माचार ही अपना मुख्य उद्देश्य समझो, क्योंकि धर्माचरण से रहित होने पर तुम वेदादि विद्याओं के अधिकारी नहीं हो सकते। तुम्हें अर्थ और काम से बचना होगा। सुवर्णादि रत्न तथा स्त्री-सेवनादि विषय ही अधर्म के कारण हैं। अतः कल्याण चाहने वाले ब्रह्मचारियो! अर्थ और काम से पृथक् रहना, नहीं तो कामिनी और कांचन का चक्र तुम्हें पद-दलित कर देगा।

सदैव अपने व्रत का अनुष्ठान करो, तुम्हें संसार की माया से क्या काम ? अर्थ तो अनर्थ की जड़ है इसी के लिये हा ! इसीके द्वारा सहस्रों अत्याचार आज इस पुण्य-भूमि पर हो रहे हैं।

वटुकों ! ईश्वर-चिंतन करो, वेदाध्ययन के द्वारा उस ईश्वरीय ज्ञान को ग्रहण करो जिसके लिये तुमने यह सुन्दर शरीर पाया है। यह काया खोने के लिये नहीं है। प्रमादवश केवल आनन्द का साधन ही नहीं है, इसका केवल खाने-सोने और निरर्थक व्यतीत करने का ही उद्देश्य नहीं है, यह अमूल्य जीवन केवल पुष्पों की शैय्या ही नहीं है।

विद्यार्थियो ! समय को मत खोओ, यह एक एक पल जो बीत रहा है फिर न मिलेगा। जो काम तुम्हें कल करना है उसे आज करो, और जो आज का कार्य्य है, उसे अभी तत्काल करने की चेष्टा करो। भविष्य में क्या होगा, तुम्हें ज्ञान है ? यह कांचरूपी काया कब टूटेगी अतः अपने कार्य्य में असावधानी मत करो, सचेष्ट होकर वीर कार्यार्थी बनो। निश्चेष्ट होकर अपने सत्य धर्म को मत छोड़ो, धैर्य से काम लो।

कभी कामेच्छा प्रकट न करना, किसी स्त्री को अपवित्र दृष्टि से न घूरना, अन्यथा मनोविकार उत्पन्न हो जायगा और तुम भ्रष्ट हो जाओगे। बुद्धिमान मनुष्यों को निन्दित

कर्मों के निकट नहीं जाना चाहिये, तुम्हें ब्रह्मचर्य साधन करना है, तुम्हारा उद्देश्य वीर्य-रक्षा करना है, तुम्हें वेदादि विद्याओं से युक्त हो संयमी बनना है अतः अपने विचारों को सदैव शुद्ध और पवित्र रक्खो।

बुरे विचारों से सदैव दुःख भोगना पड़ता है महर्षि चाणक्य का वचन है कि—

मातृवत् परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्ठवत्।
आत्मवत्सर्वभूतानि यः पश्यति स पश्यति॥

दूसरे की स्त्री को माता के समान, दूसरे के धन को ढेले के समान और अपने समान सब प्राणियों को जो देखता है, वही देखता है तुम्हें ऐसा ही होना चाहिये। तुम्हें पूर्वजों का अनुकरण करना चाहिये। तुम्हारे लिये वही मार्ग है। उसी को अपनाओ।

पूर्वजों के गुणों का अनुकरण करते हुये संसार-क्षेत्र में आगे बढ़ो। इस जीवन-संग्राम में शूर-वीर बन कर रहो, मुर्दे के समान जीवन व्यतीत न करो। इस जीवन-रूपी शिविर में मूक बनने से तुम परतन्त्र तथा भीरु हो जाओगे तुम्हें आगे बढ़ने की आवश्यकता है।

ब्रह्मचारियो! जीवन—संग्राम बड़ा भयानक है इस संसार-रूपी कर्मसागर में कैसी प्रलय-रूपी नाशकारी उन्नत तरंगें

उठ रहीं हैं, कैसा भयानक अंधकार है, बड़े २ वीरों का हृदय दहल उठता है, बड़े २ धीरधारियों का धीर छूट जाता है। देखो! इसी अशान्त महासागर को तुम्हें पार करना है, अपनी शक्तियों का संग्रह करो, अपने बलों को एकत्र करो, अपने कायाकर्मरूपी यन्त्र को इतना सुदृढ़ बनाओ, जो इस अर्णव के भयंकर आंधियों को सह सके। उसके उन्नत तरंगों से टकरा कर सुरक्षित रह सके तथा तुम्हें इस महोदधि से पार लगा सके।

सबसे प्रथम तुम शक्ति-संचय करो, गुणों को धारण करो एवं दुर्गुणों को हटाओ। अभ्यास और वैराग्य का साधन ले योग्य बनो, इतनी शक्ति उपार्जन करो, जिससे तुम्हारा उद्धार हो जाय। इस कार्य्य के लिये तुम धर्म के लक्षणों को हृदय में प्रविष्ट करो, उसके बिना कुछ भी न होगा, तुम्हें सदैव उसके शरण में रहने से ही कल्याण होगा।

इस भाँति शक्तिवान हो सम्पूर्ण शुभ गुणों को शनैः २ ग्रहण करो और दुर्गुणों से अपने को हटाते जाओ।

सबसे पहला शत्रु तुम्हारा काम है, यही तुम्हारे सम्पूर्ण दुर्गुणों की जड़ है, इसके मार्ग पर चलना अनिष्टकारक है ही, तुम्हारे लिये इसका ध्यान तक अनर्थकारक है। काम वास्तव में विषधर सर्प है जिसका कराल विष आज संसार को जर्जरित

कर रहा है। अतः उन्नति चाहनेवाले बच्चों ! इस काम से बचो, और अपने पतवार को अपने हाथ में लो।

देखो ! तुम्हारा दूसरा शत्रु क्रोध है, यह वास्तव में प्रत्यक्ष अग्नि-शिखा है। तुम इसमें पड़ते ही भस्म हो जाओगे। मन, बुद्धि, चित्त तथा तुम्हारी पवित्र आत्मा कलुषित हो जायगी। तुम इसके द्वारा ज्ञान और बल खो दोगे, तुम्हारा ज्ञानवान् शरीर विवेकशून्य हो जायगा। कभी हृदय में तमोगुणी भाव न जगने दो, सदैव शान्त भावों के द्वारा अपने शरीर की रक्षा करते हुये कर्मार्णव के अशांत तरंगों पर विजय प्राप्त करो।

पुत्र ! तुम्हें भ्रष्ट करने वाला तीसरा शत्रु लोभ है। इसके नाशकारी चक्र में मत फँसना, इससे प्रीति करने पर तुम माया के प्रबल बन्धन में जकड़ जाओगे, हृदय को सदैव इस दुर्व्यसन से दूर रक्खो नहीं तो मायामय विचित्र संसार तुम्हें ठग लेगा। तुम्हारे शरीर के सारभूत पदार्थ को, जिसके द्वारा तुम्हारा जीवन टिका है, नष्ट कर देगा। फिर कैसे तुम इस अशान्त निधि को पार कर सकोगे।

हाय ! इस संसार में तुम्हें पद-दलित करने वाला चौथा शत्रु मोह है, इसकी प्रकृति में पड़ते ही तुम अपना अस्तित्व खो दोगे। यह तुझे सत्य से पृथक् कर वासना में लिप्त कर देगा,

धीरे २ तुम्हारे आत्म-शक्तियों का हरण कर तुम्हें संतापादि कष्टों का अधिनायक बना देगा। इस दुर्गुण के उदय होते ही तुम्हारा ब्रह्मज्ञान कर्पूर हो जायगा और तुम अपने व्रत से विमुख हो सांसारिक चक्र में पड़ जाओगे। आत्मज्ञान के लोप होते ही तुम कर्मार्णव के गह्वर गर्भ में विलीन हो जाओगे।

तुम्हारे जीवन-संग्राम में पाँचवाँ शत्रु मद है, इससे सम्बन्ध करते ही तुम अवनति के गर्त्त में गिरने लगोगे। तुम्हारी उन्नति रुक जायगी, अभिमान के कारग श्रद्धा और भक्ति जाती रहेगी। तुम सहस्रों प्रयत्न करने पर भी निर्दिष्ट स्थान तक नहीं पहुँच सकोगे। तुम्हारा सारा परिश्रम व्यर्थ हो जायगा तथा तुम्हारी सारी सिद्धियाँ निष्फल हो जायँगी।

तुम्हें कर्म-पथ से हटाने वाला छठा शत्रु ईर्ष्या है, अरे, इसीने देश को नष्ट किया, बड़े २ विद्वानों को पद दलित किया, सम्राटों को कङ्गाल बना छोड़ा, इससे बचो, सदैव प्रेम-पूर्वक परस्पर मिलकर रहो, विश्वबन्धुत्व धारण करने पर ही तुम यथार्थ ज्ञानवान बनोगे।

प्रत्यक्ष कालरूप सातवाँ शत्रु चिन्ता है, किसी बात की चिन्ता मत किया करो, इसके उदय होते ही तुम्हारी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियाँ बलहीन हो जायँगी। कवियों ने इसे तो चिता से भी बढ़कर बताया है। चिता मरे हुये को

ही जलाती है परन्तु यह चिन्ता दिन रात जीवित पुरुषों को जलाती रहती है। जो कुछ होता है होने दो। भूत पर विचार मत करो, भविष्य की चिन्ता को छोड़ दो, वर्तमान तुम्हारे लिये है, कर्म करो।

आठवाँ शत्रु कपट आचार है, सदैव स्पष्ट एवं सत्य व्यवहार रक्खो, छल-कपट का परिणाम बुरा होता है। बड़े २ वीरों का कपट के द्वारा मान मर्दन हुआ। छल-कपट ने ही देश की दुर्दशा की अतः उद्धार चाहने वाले बच्चों! इससे दूर रहो।

नवाँ शत्रु शीघ्रता करना है, कदापि शीघ्रता न करो। धैर्य्यपूर्वक कार्य को धीरे २ होने दो, देर आयत दुरुस्त आयात शीघ्रता प्रेतों की माया है, मत घबडाओ, शनैः २ सब कुछ सिद्ध होगा।

दसवाँ शत्रु मादक द्रव्य है, इन्हें भूलकर मत अपनाओ, य तुम्हारा सत्यानाश कर देंगे। इनसे बचना ही मनुष्यता है, इनसे बचने पर ही तुम्हारी बुद्धि शुद्ध और पवित्र रह सकेगी अतः सावधानी से ब्रह्मचर्य का पालन करो।

इस प्रकार सर्वगुणसम्पन्न हो, पूर्ण शक्तिशाली होकर कर्मसागर में आगे बढ़ो। ब्रह्मचर्य के द्वारा अवश्य ही सफल होगे, तुम्हारी शक्ति कोई भी रोक नहीं सकेगा। तुम अवश्य

अपने संग्राम से विजयी बनोगे। यदि तुमने नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन किया तो यह एक कर्मसागर क्या तुम सहस्रों कर्मार्णवों को पार कर जाओगे।

शास्त्र-नियम

ब्रह्मचर्यव्रतधारी विद्यार्थियों को योग्य है कि किसीसे वैर-बुद्धि न करें। सदैव उसे त्याग कर लोगों के कल्याण मार्ग का उपदेश करे। सदा मधुर वाणी बोले, शीलपूर्वक धर्म की उन्नति चाहे, स्वयं सत्य बोले तथा संसार को सत्य का उपदेश दे। जिसकी वाणी और मन शुद्ध एवं सुरक्षित है निसन्देह वही इस सागर को तैरकर अपना आश्रय पूर्ण करेगा।

वर्जयेन्मधुमांसञ्च गन्धं माल्यं रसान् स्त्रियः।
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम्॥
अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम्।
कामं क्रोधं च लोभं च नर्त्तनं गीतवादनम्॥
द्यूतं च जनवादं च परिवादं तथाऽनृतम्।
स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च॥
एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित्।
कामाद्धि स्कन्दयन्रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः॥

ब्रह्मचर्य व्रत के इच्छुक ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी

मद्य, मांस, गन्ध, माला, रस, स्त्री और पुरुष का संसर्ग, सब प्रकार की खटाई, प्राणियों की हिंसा, अङ्गों का मर्दन, बिना निमित्त उपस्थेन्द्रिय का स्पर्श, आँखों में अंजन, पदत्राण एवं छत्रधारण, काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक, ईर्ष्या, द्वेष, नाच–गान और वाद्य, द्यूत खेलना, जिसकी तिसकी कथावार्त्ता, निन्दा, असत्य भाषण, स्त्रियों का दर्शन, आश्रय, दूसरों की हानि आदि निंद्य कर्मों को सदैव छोड़ देवे। सदा अकेले सोवे, कभी वीर्यपात न करे। यदि किसीने कामना से वीर्य स्खलित कर दिया तो समझ लो कि उसका ब्रह्मचर्य व्रत खण्डित हो गया।

ब्रह्मचर्य की सौ शिक्षायें

ब्रह्मचर्य के संरक्षण से उसकी यथावत् रक्षा करने से (उसकी शिक्षाओं को मानने से) मनुष्य को सब लोकों में सुख देने वाली सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

—महर्षि अत्रि

१ सच्चरित्रता ही उन्नति का कारण है, उत्तम चरित्र के बिना कोई उत्तम नहीं हो सकता।

२ आचार ही परम धर्म है, इसकी अवहेलना करना पाप कमाना है, आचार ही मुक्ति का साधन है।

३ मानव-जीवन का उद्देश्य दूसरों के साथ भलाई करना

है, मनुष्य मात्र से प्रेम तथा उनकी सेवा करना ही ब्रह्मानन्द में मग्न होना है।

४ ज्ञानोपार्जन करो, अज्ञान ईश्वर का शाप है और ज्ञान वह वरदान है जिसके द्वारा तुम अविद्या पर विजय प्राप्त कर सकते हो।

५ संसार में किसी को तुच्छ मत समझो, तुच्छ और नीच वही है जो दूसरों को समझता है।

६ धर्म से विमुख मत चलो, यही तुम्हारा साथी है।

७ असत्य तथा अप्रिय भाषण करना अपने आत्मा का हनन करना है, सत्यपरायणता से ही तुम्हारा उद्धार होगा।

८ किसी के हृदय को मत दुखाओ, यह भारी पाप है।

९ जिस मार्ग का बुद्धिमान् पुरुष अनुगमन करते हैं उसे ही अपना इष्ट पथ बनाओ। बुद्धिमानों का अनुगामी बुद्धिमान् बन जाता है।

१० उच्च विचारों का चिन्तन करो, जिनके मन में उच्च विचारों का निवास है वे कभी पतित नहीं होते।

११ धैर्य्य को पकड़े रहो, इसे न छोड़ना। इससे पृथक् होते ही ब्रह्मचर्य पद से गिर जाओगे।

१२ सदैव गुणाभिलाषी रहो, गुण ही सर्वत्र पूजनीय होता है। उत्तम कुल और सुन्दर स्वरूप से कोई लाभ न होगा।

१३ अपने लिये तो कभी कभी, परन्तु दूसरों को सदैव क्षमा करते रहो।

१४ नम्रता को न भूलो, काठिन्यता से सर्वत्र विजय नहीं मिलती।

१५ शील ही मानवों का भूषण है, इसे धारण करो।

१६ श्रद्धा ही तुम्हें उन्नति के दुर्ग पर बिठायेगी।

१७ भक्ति ही शक्ति का द्वार है।

१८ सद्विचार ही सदाचार का लक्षण है। कभी हृदय में कुविचारों को स्थान मत दो।

१९ भलाई की लालसा करो बड़ाई की नहीं।

२० अन्धपरम्परा और अन्धविश्वास के आखेट मत बनो।

२१ सोच-समझ कर आगे पैर रक्खो। बिना परिणाम सोचे किसी कार्य में हाथ मत दो।

२२ अपनी कार्य-शक्ति को बढ़ाओ।

२३ सदैव प्रसन्न रहा करो।

२४ किसी की व्यर्थ निंदा-स्तुति उन्नति मार्ग में बाधक है।

२५ वैर और द्वेष जीवन का नाश कर देता है।

२६ प्रेम ही जगत् का कारण है, प्रेमी बनो। शुद्ध प्रेम से संसार की सेवा करो।

२७ एकता ही बल है ।

२८ मधुर भाषण ही वशीकरण मन्त्र है ।

२९ निर्दयता ही दानवी कृति है, तुम्हारे ब्रह्मचर्य को यह नाश कर देगी ।

३० अधीरता ही कमजोरी है, इसे अपनाने पर तुम पददलित हो जाओगे ।

३१ आत्म-संयम ही बल का द्योतक है ।

३२ तृष्णा से दूर रहो, वह जितना अपनी इच्छा-पूर्ति का ध्यान रखती है उतना न्याय का नहीं ।

३३ विपत्ति से मत डरो, सत्य से बराबर उसका प्रतिकार करते रहो ।

३४ सदैव सावधान रहो ।

३५ अपने अस्तित्व का बोध करो ।

३६ प्रकृति के चरणों में ही स्वर्ग है अर्थात् उसे अपनाओ ।

३७ तुम्हें उस उत्तरदायित्व को पूर्ण करना है, जो महत्ता के साथ २ चल रहा है ।

३८ ऋण मत लो ।

३९ किसी से विश्वासघात न करो ।

४० तुम अपने लिये जैसा चाहते हो, दूसरों के लिये भी वैसा ही समझो ।

४१ माता, पिता और आचार्य्य की सेवा करो।

४२ सहयोगियों से मित्रतापूर्वक सहयोग करो।

४३ भविष्य पर विश्वास न करो, वर्त्तमान ही तुम्हारा कार्य्य-क्षेत्र है।

४४ सत्संगति ही सब गुणों को देने वाली है।

४५ बड़े बनने का सब से प्रथम उपाय वीर्य-रक्षा है। ब्रह्मचर्य धारण करने में कठिनाइयों को देख कभी निराश मत होओ।

४६ नीच पुरुषों का उत्तम परामर्श घातक होता है।

४७ पश्चात्ताप अपराध का फल है।

४८ व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का नाश करना अत्याचार है।

४९ स्वस्थ और स्वाधीन मन सुख को दुःख और दुःख को सुख बना सकता है।

५० अपने पैरों के बल पर खड़े होओ।

५१ सदैव ईश्वरीय भावना में मग्न रहो।

५२ विद्या ही अक्षय धन है।

५३ व्यायाम ही सर्वोत्तम औषधि है।

५४ स्वास्थ्य-रक्षा ही जीवन को सुखदायी बना सकती है।

५५ दृढ़ संकल्प ही कार्य्य-सिद्धि का कारण है।

५६ वीर कार्य्यार्थी असम्भव को सम्भव बना सकता है।

५७ नेत्र आत्मा की खिड़की है, उसका दुरुपयोग मत करो।

५८ अन्तःकरण को शुद्ध और पवित्र रक्खो।

५९ तुम्हारा शरीर तुम्हारे निज का नहीं है।

६० कार्य्य करो, काल सामने खड़ा है। समय मत खोओ।

६१ सादा जीवन और उच्च विचार रक्खो।

६२ विना अच्छी चाल-चलन के शिक्षा व्यर्थ है।

६३ जो बातें विकार पैदा करने वाली हों उन्हें छोड़ दो।

६४ निर्धन गरीब नहीं है, गरीब वही है जो नीच और पापी है।

६५ संसार नैतिक बल पर अधिष्ठित है।

६६ मोह में मत पड़ो।

६७ लोभ को त्याग दो।

६८ क्रोध से पृथक् रहो।

६९ अभिमानी और अहङ्कारी मत बनो।

७० आत्मविजय के सन्मुख शारीरिक विजय तुच्छ है।

७१ आलस्य को छोड़ो।

७२ सद्गुणों के ग्रहण में स्वार्थ-साधन करो, पश्चात् परमार्थ का विचार करो।

७३ सर्व प्रकार कौशल्युक्त होने में सतत प्रयत्नशील रहो।

७४ वही धन्य है, जो अन्तःकरण से पवित्र है। वही परमात्मा का दर्शन करेगा।

७५ दृढ़ विश्वास से पराभव का नाश होता है।

७६ चंचलता को हटा कर शान्ति स्थापन करो।

७७ विना आह के खुशी की वंशी जग में कभी नहीं बजती है, अन्धकार के विना कभी भी ज्योति नहीं जगमगाती है, दुःख खेत के विना कहाँ सुख-मेघ वारि बरसावेगा? विना दुःख के भोगे मानव कभी नहीं सुख पावेगा।

७८ दुर्व्यसनों को दूर करो।

७९ मादक वस्तुओं का उपयोग करना अपना नाश करना है। इससे तुम्हारा ब्रह्मचर्य नष्ट हो जायगा।

८० सफलता का रहस्य कर्तव्य-पालन में है।

८१ मितव्ययी बनो।

८२ विश्वासपात्र ही मनुष्यता है।

८३ मूल धन को विना बढ़ाये व्यय करना मूर्खता है, वह कभी सुखी नहीं हो सकता।

८४ इच्छा होने पर मार्ग आप ही आप सूझने लगता है।

८५ अग्नि में तपाये विना स्वर्ण का तेज प्रकट नहीं होता अर्थात् त्रितापाग्नि में तपने पर ही मनुष्य मनुष्य बन सकता है।

८६ शत्रुता को शत्रुता से विजय करने का विचार मत करो। शत्रु को प्रेम से वशीभूत करो।

८७ संसार का मूल तत्त्व अध्यात्म जगत् में है, आत्मा की खोज करो।

८८ अपने विचारों को अपने अधीन रखो, सदव कार्यसिद्धि के लिये प्रयत्न करते जाओ।

८९ सबसे श्रेष्ठ उपहार विद्यादान है।

९० हृदय को कामनाओं का घर मत बनाओ नहीं तो सदवृत्तियाँ तुम्हें छोड़कर चली जायँगी।

९१ सदैव न्यायी बनो।

९२ शरीर को सुन्दर मत बनाओ, बुद्धि को अलंकृत करो।

९३ किसी के गुणों की प्रशंसा मत करो, उन्हें ग्रहण करो।

९४ वाचालता मूर्खता का लक्षण है इससे अशान्ति उत्पन्न होती है।

९५ मन को वश में रखो, तभी तुम्हारी उन्नति होगी।

९६ आहार-विहार पर ध्यान दो।

९७ संयमशील बनो।

९८ उपकारी नियमों को कभी मत भूलो।

९९ साधना से हटना नीचता है।

१०० सदैव ब्रह्मचर्य का ध्यान रक्खो, कभी कुचेष्टा में मत पड़ो, ऋषियों के उपदेशों पर चलो। निःसन्देह तुम्हारा व्रत सफल होगा।

काम-शमन के उपाय

कामोत्तेजन होने पर परिश्रम में लग जाना चाहिये। प्राणायाम की क्रियाओं का अवलम्बन करना सबसे उत्तम है, यदि इसका अभ्यास न हो तो व्यायाम करने लगो, अथवा स्वच्छ वायु में तेजी से भ्रमण करना लाभदायक होगा। महात्माओं का कथन है कि काम-वृद्धि होने पर दौड़ना भी उसके शमन का एक साधन है।

शरीर में उत्तेजना होने पर ब्रह्मचारियों का हृदय में ध्यान करने लगो, उत्तम बातों के स्मरण से तुम्हारी कामप्रकृति बढ़ न सकेगी, सत्पुरुषों की सत्सङ्गति में जाकर बैठो, उनसे उत्तम-उत्तम शान्तिदायक विषयों पर वार्तालाप करो अथवा धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करने लगो, इससे भी तुम्हारा काम तुम्हें नष्ट न कर सकेगा।

बुरी वासनाओं के उदय होने पर कभी एकान्त में मत रहो, यदि काम-वेग बढ़ रहा हो तो थोड़ा ठण्ढा जल पी लो, अथवा विपुल शीतल जल से स्नान कर लो, इसके अतिरिक्त अण्डकोष एवं अँगूठे के नसों के दावने से भी काम का वेग रुक जाता है। सबसे सरल उपाय तो यह है कि मन को कामवासना से हटा देना, कामवासना के अतिरिक्त किसी अन्य ऐसे आकर्षण में मन को लगाओ जो तुम्हारा अनिष्ट न कर सके, किसी आश्चर्यजनक

विषय, सृष्टि की उत्पत्ति, प्रलय, किसी स्नेही की मृत्यु एवं दुःख, शोक की घटनाओं का स्मरण करने पर भी उत्तेजित वेग मन्द पड़ जाता है। अतः वीर्य-रक्षा करने वालों को सदैव अपने मन पर अधिकार रखना चाहिये।

वीर्य-रक्षा के साधन

आचार्य बाल्य-काल से ही बालकों को ऐसे साधन में लगावें—ऐसी क्रियायें बतलावें जिनके द्वारा वे स्वयं वीर्यवान् बनें। दिनचर्या के पवित्र कर्मों को करते हुये उन्हें आकर्ण धनुरासन, पादहस्तासन, मेरुवक्रासन तथा सर्पासन की शिक्षा दें। यदि बालक इन आसनों का नित्य अभ्यास करेंगे तो निश्चय ही उनका वीर्य निश्चल हो जायगा।

१—आकर्ण धनुरासन

साधक पैरों को फैला कर बैठ जाय। धीरे २ साँस लेना आरम्भ करे, साथ ही बायाँ हाथ बढ़ा कर दाहिने हाथ के अँगूठे को पकड़ ले और बायें के निकट तक लावे। पुनः दाहिना हाथ बढ़ाकर बाँये पैर के अँगूठे को पकड़ ले। दाहिना और बायाँ हाथ एक सीध में हो जाय। इतना कर लेने तक साँस धीरे २ खींचता ही रहे, जब आसन लग जाय तब साँस लेना रोक दे। स्मरण रहे, जितनी देर में यह क्रिया की गई है,

आकर्ण धनुरासन
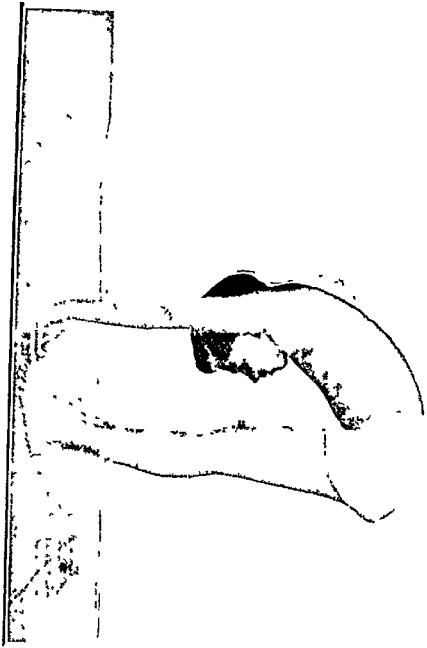
पादहस्तासन

उससे दूने समय तक साँस को रोके रहे। पश्चात् धीरे २ साँस छोड़े और साथ ही दाहिने पैर को उतारे। साँस का रेचक होते ही पूर्ववत् हो जाय।

यह आसन दाहिने और बायें दोनों प्रकार से करना चाहिये। बाल्यावस्था से ही अभ्यास करने पर यह ठीक रीति से लगाया जा सकता है, इससे सर्वांग का रक्त-परिक्रमण शुद्ध और पवित्र हो जाता है। शरीर की नस-नाड़ियाँ शिथिल नहीं होने पातीं, बालकों को इसकी शिक्षा अवश्य दी जानी चाहिये, यह हमारा अनुभूत प्रयोग है। इससे आशातीत लाभ होते देखा गया है। इसके सेवन से गृद्धसी आदि भयङ्कर व्याधियाँ भाग जाती हैं। प्राणायामसंयुत इस क्रिया के सेवन करने पर औषधियों की आवश्यकता नहीं होगी।

९-पादहस्तासन

यह आसन भी वीर्य-रक्षा के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसका साधक कभी कब्ज का आखेट नहीं हो सकता। मन्दाग्नि, अजीर्ण, अरुचि, यकृत्, प्लीहा एवं स्वप्नदोषादि भयङ्कर व्याधियाँ उसे निर्बल और निरुपाय नहीं बना सकतीं। हमने इस साधन के द्वारा कालिजों के एक नहीं, सैकड़ों पथ-भ्रष्ट व्याधिग्रस्त नवयुवक विद्यार्थियों को सुधारा है। इसके द्वारा एक विलक्षण जीवनीय शक्ति का प्रादुर्भाव होता है।

साधक सीधा तनकर खड़ा हो जाय, शरीर एक सीध में हो, पीठ की रीढ़ मुड़ने न पावे, पश्चात् दोनों हाथों को ऊपर उठा ले। दृष्टि सामने रक्खे, अब आसन करने के लिये तैयार होवे। साधक साँस लेना आरम्भ करे और धीरे २ हाथों को झुकावे, जब हाथ कन्धों के सीध में आ जायँ तब पीठ को भी धीरे २ उन्हीं के साथ झुकावे और हाथों को पैरों की ओर ले जाय। इस प्रकार कमर से इतना झुकावे कि दोनों हाथ दोनों पैरों को पकड़ लें। परन्तु स्मरण रहे साधक का सिर दोनों हाथों के भीतर आ जाय। आसन हो जाने पर साधक को वायु रोकना चाहिये। इस प्रकार कुम्भक करते हुये रेचन करे। बाल्य-काल से इसका अभ्यास करते रहने पर साधक अपनी नाक को पैर के ठेहुने में सटा सकता है। आसन करते समय हाथ और पैर एक सीध में तने रहें।

बालकों को इसकी शिक्षा देना न भूलना चाहिये। बाल्य-काल का अभ्यास शरीर को वज्र के समान बना देता है। इस आसन को कम से कम ५ मिनट से १० मिनट तक करना चाहिये।

३—मेरुवक्रासन

यह भी एक विकट आसन है, इसके द्वारा निश्चय ही मेरुदण्ड शुद्ध और पवित्र हो जाता है, धमनियाँ तथा केशिकाओं

१ मेरुचक्रासन [दक्षिण]
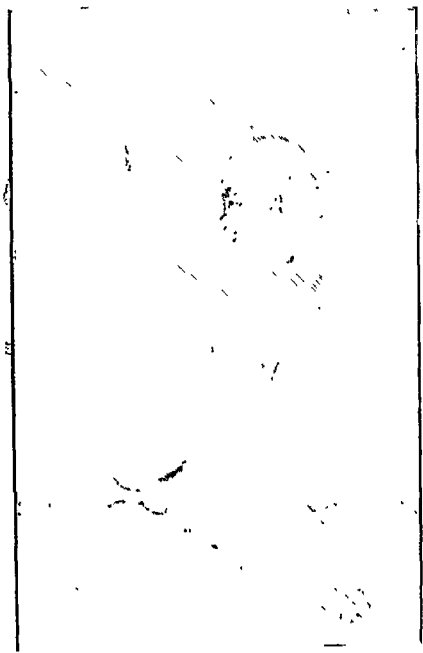
२ मेरु वक्रासन [वाम]

में किसी प्रकार का विकार नहीं रहता। इसके कुछ ही दिन अभ्यास करने पर कठिन से कठिन रोग दूर भाग जाते हैं। वास्तव में काया-शुद्धि के लिये यह सर्वोत्तम प्रयोग है। मन की पवित्रता के लिये यह उत्तम साधन है। निःसन्देह इसके द्वारा धारणा की प्राप्ति हो सकती है।

साधक दोनों पैरों को फैला कर बैठ जाय, बायें पैर की एँड़ी को उठा कर दाहिने कोख में जमावे। एँड़ी पेट में चिपक जाय। अब दाहिने पैर को उठावे और उसकी एँड़ी इस प्रकार दाहिने पैर के घुटने पर जमावे कि पञ्जे पृथ्वी को छूते रहें। इतना हो जाने पर साधक दाहिने हाथ से बायें पैर की एँड़ी पकड़ ले और बायाँ हाथ दाहिने हाथ के पञ्जे पर आरोपित कर दे। इस प्रकार आसन लग जाने पर जितना हो सके अपने शरीर और मुख को दाहिनी ओर मोड़े तथा प्राणायाम करे। इस विधि को दक्षिण मेरुवक्रासन कहते हैं।

इस प्रकार वाम मेरुवक्रासन भी किया जाता है। साधक आसन पर बैठकर बायें पैर की एँड़ी को पेट में दृढ़ कर सटावे और दाहिने पैर की एँड़ी को पूर्ववत् बायें पैर के घुटने पर जमावे। इतना हो जाने पर बायें हाथ को पीठ की ओर घुमाकर बायें पैर की एँड़ी को दृढ़ता से पकड़ ले। पश्चात् दाहिने पैर के बगल से दाहिने हाथ को लाकर दाहिने पैर के पञ्जे

पर स्थिर करे और जितना हो सके अपने शरीर और मुख को बायीं ओर मोड़े । इतना हो जाने पर शान्त हो प्राणायाम करना आरम्भ करे। मेरुवक्रासन दोनों प्रकार से करना चाहिये। तभी लाभ होगा।

४—सर्पासन

सर्पासन मानव-जाति के लिये उत्कृष्ट व्यायाम है। इससे केवल पेट का ही नहीं समस्त शरीर का व्यायाम हो जाता है। यदि ठीक रीति से यह आसन लगाकर प्राणायाम किया जाय तो अत्यन्त लाभ हो। ऋषियों ने इसकी पूरी २ प्रशंसा की है और अब भी यथावत् लाभ उठाया गया है। यह हमारा एक बार का नहीं, सैकड़ों बार का परीक्षित प्रयोग है। क्रिया इस प्रकार है।

साधक पेट के बल पृथ्वी पर सो जाय। पैरों को एक सीध में रक्खे। हाथों के हथेली को दोनों ओर नाभि के निकट जमा दे और क्रमशः सिर को ऊपर उठावे। साथ ही छाती भी पृथ्वी से उठती जाय, केवल पेट और कमर पृथ्वी से स्पर्श करते रहें, साधक का मुँह सर्पाकृति हो जाय, जाँघ के बाद पैर का निम्न भाग भी पृथ्वी से सम्बन्ध न रक्खे। साधक के सिर का ऊपरी भाग पृथ्वी से कम से कम डेढ़ हाथ की ऊँचाई पर रहे। इस प्रकार आसन लग जाने पर साधक प्राणवायु का संयम करे।

सर्पासन

आचार्य विद्यार्थियों की सिद्धि के लिये आसनोपयोगी बातें बतावें। यम-नियम का पालन करावें। यम-नियम के विना आसनों की सिद्धि नहीं हो सकती और आसन के विना प्राणायाम सफल नहीं होता। प्राणायाम से ही धारणादि योग के उत्कृष्ट अंग सफल होते हैं। ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये इन सबों का उपयोग नितान्त आवश्यक है।

भारतीयों! इन सदुपयोगों को न भूलो, स्वयं करो और बालकों को अनुकरण कराओ। तुम्हें ब्रह्मचर्य की सिद्धि करना है, तुम्हें उसे प्राप्त करना है, तुम उसके विवेक की प्राप्ति के लिये अपने को मिटा दो, ओ मानवो! ब्रह्मचर्यरूप हो जाओ।

बोलो भगवान् ब्रह्मचर्य की जै।

परिशिष्ट
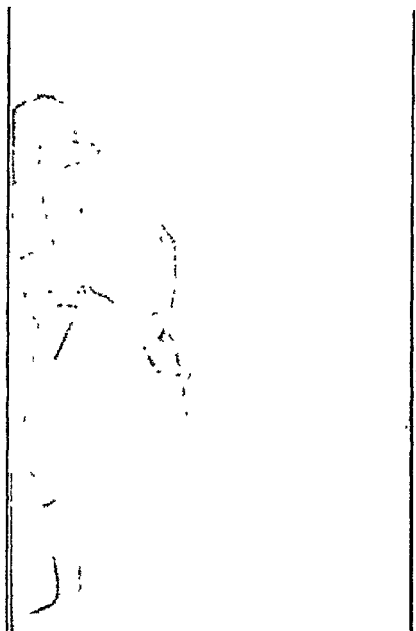
सूर्य नमस्कार अर्थात् पाद-शिरासन

१–ब्रह्मचर्य की युक्ति

सूर्य-नमस्कार

अर्थात्

पाद-शिरासन

प्रिय पाठकों ! ब्रह्मचर्य-विवेक का तृतीय खण्ड समाप्त हो गया। आपलोगों को एक नहीं, ब्रह्मचर्य-प्राप्ति के सैकड़ों साधन बतलाये गये, आशा है, किसी एक का आश्रय ग्रहण कर इस अशान्त व्यभिचार-सागर से पार होंगे। इसके अतिरिक्त एक और ऐसा साधन बतलाता हूँ जिसके द्वारा महाव्यभिचारी भी सदाचारी और ब्रह्मचारी बन सकता है। वास्तव में यह संजीवनी युक्ति है। यदि पतित समाज इस युक्ति का आश्रय ग्रहण कर ले तो निःसंदेह देवसमाज हुये बिना न रहे।

वह अनुपम युक्ति पाद-शिरासन है, इसे महात्माओं ने सूर्य-नमस्कार के नाम से पुकारा है। इसका साधक दीन, दुखी और दुर्बलेन्द्रिय नहीं रहता, कुछ ही दिन के अभ्यास में शरीर वीर्य से ओत-प्रोत हो जाता है। नस और नाड़ियों में पवित्र रक्त प्रवाहित

होने लगता है। चेहरा एक बार ओज से दमक उठता है। बल, तेज, पराक्रम, आयु, ऐश्वर्य और बुद्धि की असीम वृद्धि होती है। वह सञ्जीवनी क्रिया इस प्रकार है।

ब्रह्मचर्य की प्राप्ति की अभिलाषा से साधक ब्राह्ममुहूर्त में उठे और नित्य कर्म से निवृत्त हो सूर्योदय के एक घड़ी पूर्व स्नान कर ले। इस प्रकार बाह्य शुद्धि कर सूर्य की प्रतीक्षा में एक पैर से खड़ा रहे। क्षितिज के रक्त वर्ण होते ही सूर्य-नमस्कार के लिये तैयार हो जाय।

भगवान् सूर्य का लाल चक्का दिखलाई पड़ते ही साधक सूर्य की ओर मुँह करके खड़ा हो जाय, पश्चात् अपने दाहिने पैर को बायें पैर से तीन हाथ आगे बढ़ावे अब धीरे २ झुके और अपने सिर को दाहिने पैर के पञ्जे पर रक्खे। स्मरण रहे बाँया पैर पृथ्वी पर सटने न पावे। इस भाँति आसन लग जाने पर अपने दोनों हाथों को पीठ पर फेंक दे और हाथ जोड़ ले।

इसे अधिक से अधिक १५ मिनट तक करना चाहिये। लोग इसे पैर बदल कर भी किया करते हैं, कभी दाहिने पैर से और कभी बायें पैर से। इसमें अनन्त गुण हैं। यदि यम-नियम का पालन कर, प्राणायाम सहित नित्य प्रातःकाल इसे किया जाय तो अपार लाभ हो। केवल इसी की रक्षा से ब्रह्मचर्य की पूर्ति हो जाय।

भीरुओं। दिन चढ़े तक सोने वाले प्रमादियों। व्याधियों को उपजा कर रोने वाले हतभागियों! क्या इस अमूल्य साधन को अपनाओगे? पुंसत्वहीनों! क्या इतना होने पर भी अपने को आलस्यवश गँवाते ही रहोगे? उठो, अपनी कायरता और क्लीवता को दूर भगाओ और इसे अपना कर विश्व को एक बार चकित कर दो।

तुम कैसे दीर्घजीवी बनोगे

मानव-जीवन का रहस्य बड़ा उत्कृष्ट एवं गम्भीर है। कुछ काल तक अध्ययन करने पर प्राणी इस विषय को ध्यान में ला सकता है। शनैः २ अभ्यास के द्वारा इसकी उत्कृष्टता एवं क्लिष्टता को समझ सकता है। पीछे तो वह इतना सिद्धहस्त हो सकता है कि प्रत्येक क्षेत्र के स्थिति का बोध कर ले।

पञ्चभूतों के कारण प्राणियों ने जीवन को क्षणभंगुर बताया है। शरीर नाशवान है, आज है कल नहीं, मृत्यु का भीषण रूप सन्मुख ही खड़ा है, कब आ पड़े, संसार जगत् है, जन्म लेना और मरना अर्थात् जो आता है वह जाता है।

जन्म और मरण के मध्य काल को जीवन कहते हैं। यही हमारा कार्य-क्षेत्र है, इस अवस्था में मुझे बराबर अपने

शत्रुओं से संग्राम करना पड़ता है, मेरे एक दो नहीं, सहस्रों शत्रु हैं, अन्यत्र छोड़ दो, इसी शरीर के अन्तर्गत अनेकों ऐसे शत्रु हैं, जो अज्ञातावस्था में मेरा नाश कर रहे हैं।

बलवान् शत्रुओं के द्वारा तुम्हारा निर्धारित जीवन अपने समय के पूर्व ही नष्ट हो जाता है। प्रबल पराक्रमी रिपुओं के आघात से तुम्हारा नरतन अकाल में ही काल-कवलित हो जाता है। इन्हीं दुष्ट विपक्षियों के द्वारा तुम अपने इष्ट-पथ पर चलकर अभीष्ट की सिद्धि नहीं कर पाते, जिसके लिये तुमने यह मानव-जीवन धारण किया है।

जीवन को पूर्ण बनाने के लिये शत्रुओं को पराजय करना होगा, शत्रुओं के नाश होने पर तुम इस योग्य हो सकते हो कि जीवन के क्षेत्र को विस्तृत करो। पहले शरीरस्थ वैरियों का नाश करो, पश्चात् बाह्य शत्रुओं का नाश स्वयं ही हो जायगा। घर के सुधर जाने पर, शरीर में एकता का प्रादुर्भाव होने पर बाहरी शक्तियाँ तुझे छिन्न–भिन्न नहीं कर सकतीं। यदि तुम्हारे शरीर में ही परस्पर वैर-विरोध तथा अविवेकिता का प्रचार रहा तो निश्चय है कि बाहरी साधारण शत्रु भी तुम्हारा विना नाश किये न छोड़ेगा।

सब से प्रथम अन्तःकरण के विकार को शान्त करो। काम, क्रोध, मद, लोभादि दुर्द्धर्ष वैरियों पर विजय करो, धर्म

के द्वारा इन्द्रियों को अपने अधीन करो, पश्चात् दुराग्रही मन को एक स्थान में ठहराओ, फिर क्या ? कौन तुम्हें पराजय कर सकेगा ? इतना ही करना तुम्हारे लिये यथेष्ट है।

इतना करने के उपरान्त तुम अपने जीवन को दीर्घ बना सकते हो, इसके प्रतिकूल दीर्घ जीवन का स्वप्न देखना भ्रम है।

हम पूर्व में लिख आये हैं कि स्वाँस ही जीवन है, जितना हम अधिक स्वाँस व्यय करते हैं, समझ लो उतना ही अधिक जीवन नष्ट हो रहा है। जीवन स्वाँसों पर टिका है, गर्भ काल में जितनी पाँच-भौतिक शक्ति स्वाँस रूप में शरीरान्तर्गत प्रविष्ट हुई है। जिस दिन उसका शरीर से निर्वासन होगा, याद रहे जीवन भी उसी दिन शेष हो जायगा, अतः स्वाँस–रक्षा से ही जीवन की रक्षा होती है।

प्राणायाम ही इसके लिये उपयोगी है। अतः नित्य नियम-पूर्वक उसे धारण करो। यदि तुम १०० स्वाँस नित्य बचा लेते हो तो समझ लो एक वर्ष में कितना स्वाँस तुम्हारा स्वरक्षित रहा। अतः ऐसे कर्मों से बचो जिनमें अधिक स्वाँस की क्षति होती है।

मनुष्य बनो।

आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
ज्ञानं नराणामधिको विशेषो ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः॥

—नीति

पशु और मनुष्यों में आहार, निद्रा, भय तथा मैथुन एक समान हैं। मनुष्यों में ज्ञान ही एक पदार्थ अधिक है। ज्ञान से हीन व्यक्ति पशुतुल्य है।

संसार में ज्ञान ही मुख्य वस्तु है। विना ज्ञान के मुक्ति कहाँ, योगियों की सिद्धियों में ज्ञान का ही रहस्य है। समस्त विद्यावैभवादि के उन्नति का कारण ज्ञान ही है। संसार इसी प्रिय वस्तु को धारण कर अपना जीवन पूर्ण बना कर अपने को मनुष्य सिद्ध कर सकता है अन्यथा मनुष्य रूप में रहते हुये भी वह पशु है।

मनुष्य, अर्थात् जिसमें मानवीय शक्ति हो, जो संसार के यथावत् स्वरूप का ज्ञाता हो, जिसका मन चन्द्रमा के समान तथा जिसके वाणी में बन्धन हो, जिसकी धारणा अटल तथा ध्यान दृढ़ हो, जो सद्गुणों का ग्राहक तथा दुर्गुणों का त्यागी हो, जिसकी इन्द्रियाँ गम्भीर तथा मन शान्त हो, मनोबल जिसका बलवान् तथा चित्त पवित्र हो, जो धर्म को जानता तथा पालन

करता हो। बराबर ज्ञान की शिक्षा और दीक्षा में अपना काल-यापन करता हो। निःसन्देह उपरोक्त गुणों से विभूषित व्यक्ति ही मनुष्य कहलाने के योग्य है।

संसार अपने को मनुष्य कहने के लिये तैयार है, पर मनुष्यता कहाँ ? आज विश्व ने जिन गुणों को धारण किया है, आज संसार के प्राणियों ने जिन कर्मों को अपनाया है, जिस मार्ग का अवलम्बन किया है—कहना पड़ेगा कि यह मानव-पन्थ नहीं है। बल्कि इसे हम आसुरी मार्ग कह सकते हैं।

पहले इस भारतवर्ष को ही लो। इसके बच्चे २ के अन्तर्गत मानुषी ज्ञान को ढूँढो। बड़े २ विद्वानों में, धर्मधुरन्धरों में, धर्म-धारियों में मनुष्य के गुणों को ढूँढो। उपदेशकों तथा सुधारकों में अनुसन्धान करो। परन्तु शोक ! आज देवत्वधारी भारत में मनुष्यता के लक्षण नहीं दिखाई देते। कितना हृदयविदारक परिणाम ! कैसा भयङ्कर परिवर्त्तन !

जहाँ विद्या, बल और विभव नहीं, तप नहीं, स्वाध्याय तथा प्रणिधान, परोपकार, सेवा और दान नहीं, जहाँ यज्ञ, धर्म तथा सद्व्रतादि का अनुष्ठान नहीं, जहाँ शील, श्रद्धा, भक्ति और सद्गुण नहीं, जहाँ ज्ञान और विज्ञान नहीं, वहाँ मनुष्यता का निवास नहीं हो सकता। मानव-जीवन पूर्ण करने के लिये प्रचुर सामग्रियों की आवश्यकता है। केवल एक विद्या अथवा तप, दान, व्रत, शील,

गुण, धर्म को ही लेकर कोई मनुष्य नहीं बन सकता। सम्पूर्ण शक्तियों तथा मानवीय गुणों के एकत्र होने पर ही प्राणी मनुष्य बन कर ब्रह्मचर्य धारण कर सकता है।

जीवों! मनुष्य बनो और ब्रह्मचर्य–विवेक को अपनाओ। मानवों! स्वयं विवेकी बनो और इस मृत्यु–लोक को विवेक से आलोकित कर दो।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!